ऋद्धि

श्रीयुक्त बाबू ज्ञानेन्द्रमोहन दास प्रणीत बँगला

"ऋद्धि" का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

पण्डित जनार्दन झा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

१९२१

संशोधित संस्करण] [मूल्य १।)

भूमिका

जिन सुप्रसिद्ध लेखक बाबू ज्ञानेन्द्रमोहन दास की लेखनी से चरित्र-सुधार की शिक्षा के लिए 'चरित्रगठन' ग्रन्थ निकला है, उन्हीं की पवित्र लेखनी से श्रीवृद्धि की शिक्षा के लिए यह अपूर्व "ऋद्धि" निकली है। ग्रन्थकार ने इस पुस्तक को रच कर लोगों का कितना बड़ा उपकार किया है, यह वर्णनातीत है। हिन्दी में इस बँगला पुस्तक का अनुवाद हो जाने से हिन्दी-साहित्य-भाण्डार को इस अंश में विशेष लाभ हुआ। जो हिन्दी-साहित्य का भाण्डार ऋद्धि से खाली था उसे ऋद्धि से भर पूर देख किसे हर्ष न होगा? मैं आशा करता हूँ कि इस ऋद्धि के द्वारा हिन्दी जानने वाले सभी सज्जन कुछ न कुछ अवश्य लाभ उठावेंगे।

संसार से सम्बन्ध रखने वाला प्रायः कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे ऋद्धि की अपेक्षा न हो। दरिद्र से लेकर कोट्य-धीश तक सभी श्रीवृद्धि की इच्छा रखते हैं। किन्तु इच्छा रखते हुए भी, ऋद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण, कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और श्री-वृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी ऋद्धि को प्राप्त करने के लिए कुछ उद्योग नहीं करते उनके लिए यह पुस्तक बड़े

काम की है। वे इस पुस्तक से विशेष शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। जो कोई इस पुस्तक को एक बार आद्योपान्त अच्छी तरह पढ़ जायगा वह, ऋद्धि क्या है यही समझ कर, चुप चाप न बैठ रहेगा किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए उत्साह-पूर्वक तत्पर होगा।

जो लोग धनहीन हैं, ऋण-ग्रस्त हैं, बहु-कुटुम्बी हैं और जिनकी सालाना आय भी बहुत कम है वे लोग इस ऋद्धि के उपदेशानुसार चल कर सुख से जीवन बिता सकते हैं। दो एक आने की पूँजी से व्यवसाय करके लोग कैसे लखपती बन सकते हैं, यह ऋद्धि से भली भाँति सीख सकते हैं।

कितने ही लोग ऐसे हैं जो रुपया कमाना तो जानते हैं पर संचय (जमा) करना नहीं जानते और ऐसे लोग भी बहुत हैं जिनके पास धन है तो बहुत, पर उसके बढ़ाने का उपाय उन्हें मालूम नहीं। उन्हीं लोगों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। इस ऋद्धि की शिक्षा से क्या स्त्री, क्या बालक, क्या युवा सभी अपने को समृद्धिशाली बना सकते हैं। 'ऋद्धि' के पढ़ने से ही कोई ऋद्धिशाली नहीं बन सकता, किन्तु 'ऋद्धि' में जिन नियमों का वर्णन किया गया है उनका उचित रीति से पालन करके अपने उपार्जित धन के सद्व्यवहार द्वारा सुख-पूर्वक जीवन-निर्वाह किया जा सकता है; सामान्य आय से भी आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकता है और भविष्य की दुश्चिन्ता से बचाव हो सकता है।

'ऋद्धि' के पढ़ने वाले अपनी उन्नति कर सकते हैं, अपनी जाति

को सम्पत्ति से अलङ्कृत कर सकते हैं और देश की दुर्दशा को भी बहुत कुछ सुधार सकते हैं। 'ऋद्धि' में ऐसे अनेक उपाय लिखे गये हैं जिनका अवलम्बन करके कुली मज़दूर तक धनवान् हो सकते हैं। फिर जिनके पास पूँजी है वे ऋद्धि की बदौलत समृद्धिमान् हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

इस पुस्तक में उदाहरण के लिए ऐसे अनेक उद्योगशील, निष्ठावान् कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो कि स्वावलम्बन पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता को दूर कर करोड़-पती हो गये हैं। इस पुस्तक में ऐसी बहुत सी बातें लिखी गई हैं जिनके पढ़ने से लोग एक पैसे की शक्ति, उद्योग, पुरुषार्थ, मितव्यय और संचय आदि अनेक सद्गुणों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी उन्नति की बहुत कुछ चेष्टा कर सकते हैं और अपचय, अपरिमित व्यय, अदृष्ट, कृपणता, आत्मप्रतारणा, आलस्य, बहुदान और अनिष्ठा आदि अनेक दोषों के बुरे परिणाम से अपने को बचा सकते हैं।

हिन्दी के रसिक और ऋद्धि के अभिलाषी लोग यदि इसे पढ़ कर कुछ भी लाभ उठावेंगे तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगा।

जनार्दन झा

सूचीपत्र

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

विषय | पृष्ठ

आठवाँ अध्याय

—:o:—

ऋद्धि

पहला अध्याय

ऋद्धि

ऋद्धि किसे कहते हैं, इसकी व्याख्या थोड़े में नहीं हो सकती। केवल द्रव्य-सञ्चय करके ही कोई ऋद्धिशाली नहीं बन सकता और धनहीन व्यक्ति भी ऋद्धिमान् नहीं कहला सकते। जो कृपण पैसा बचाने के लालच से पुष्टिकर भोजन, स्वास्थ्यकारी समयोचित वस्त्र और आरोग्यजनक घर के सुख से वञ्चित हैं उन्हें भी ऋद्धिमान् नहीं कह सकते। कुछ रात रहते ही जो बिछौने से उठकर आधी रात तक केवल द्रव्य के पीछे पड़े रहते हैं, गरम कपड़ा खरीदने का सामर्थ्य रखते हुए भी द्रव्य के मोह से जाड़ा सहते हैं, छतरी न खरीद कर कड़ी धूप और वर्षा का क्लेश अपने माथे चढ़ाते हैं और दीन-दुखियों की

तरह बड़े कष्ट से जीवन व्यतीत करके कुछ द्रव्य सञ्चय कर संसार से चल देते हैं, वस्तुतः उनके इस उपार्जित धन को भी ऋद्धि नहीं कह सकते और न इस धन से उन्हें ऋद्धिमान् कह सकते हैं; बल्कि वे निर्धन की श्रेणी में गिने जाने योग्य हैं। कृपण और अपव्ययी इन दोनों में कोई भी ऋद्धिशाली नहीं। ऋद्धि का इन दोनों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। उसकी स्थिति इन दोनों के बीच के मार्ग में है।

तो फिर ऋद्धि क्या है? इसकी विवेचना करनी चाहिए। ऋद्धि, वृद्धि, श्री और लक्ष्मी सब एक ही अर्थ के बोधक हैं। यदि कोई कहे—"आज कल उनकी अच्छी वृद्धि हो रही है।" "उनकी श्रीवृद्धि दिनों दिन हो रही है।" "वे इन दिनों अच्छे लक्ष्मीवान पुरुष हैं।" तो इन वाक्यों से तुम क्या समझोगे? उनकी लम्बाई चौड़ाई बढ़ रही है? अथवा वे बड़े सुन्दर और सुशील हैं? नहीं, यह बात नहीं है। अँगरेजी में जिसे थ्रिफ्ट (Thrift) कहते हैं, उसी को हम लोग ऋद्धि कहते हैं। किन्तु असल में "थ्रिफ्ट" ऋद्धि का एक प्रधान अङ्ग मात्र है। व्यवहार में इसी ऋद्धि को लोग श्रीवृद्धि, समृद्धि या समुन्नति कहा करते हैं। परिमित व्यय करके सञ्चित धन के द्वारा जो आर्थिक उन्नति होती है और युक्त भोजन, उचित आहार-विहार, उत्साह, परिश्रम, कार्य-तत्परता, शिक्षा, ज्ञान, शिष्टता, सच्चरित्रता और धर्माचरण से जो दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है, संक्षेपतः इन्हीं उन्नतियों का नाम ऋद्धि है। यदि कहा जाय कि—"अमुक

गाँव की श्रीवृद्धि नहीं" तो इससे यह समझना चाहिए कि उस गाँव के रहनेवाले अपव्ययी, अपरिश्रमी, द्रव्यहीन, आलसी, दरिद्र और हीन दशा में हैं। ऐसे अवनतिशील ग्रामवासी, आलस्य और अज्ञान के कारण, प्रायः गाँव के स्वास्थ्य और सफ़ाई पर ध्यान नहीं देते। वे लोग ज्वर, विसूचिका आदि अनेक रोगों से जर्जरित होकर बड़े दुःख से समय बिताते हैं और अच्छी माता, अच्छे पिता, सुसन्तान और उत्तम पड़ोसी का कर्तव्य पालन करने में असमर्थ रहते हैं। कितने ही तो रोगाक्रान्त होकर अल्प अवस्था में ही संसार से चल बसते हैं। वे लोग दैहिक और मानसिक शक्ति से रहित होने के कारण अनेक यातनाएँ सह कर भी अपने दुःख का कारण नहीं सोचते और न उसके प्रतीकार का कोई प्रयत्न ही करते हैं। वे लोग जैसे अपने साहस के द्वारा वर्तमान अवस्था से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं करते वैसे ही भविष्य के लिए, वक़्त बे-वक़्त के लिए, कुछ संचय भी नहीं करते। इसका कारण उनकी अज्ञानता और दरिद्रता है। वे लोग द्रव्य प्राप्त करते भी हैं तो उसे अपव्यय के कारण बचा नहीं सकते। वे बहुधा विलासप्रिय होते हैं और पेटपूजा को ही सर्वोपरि मानते हैं। इसी से जो कुछ धन पैदा करते हैं उसे ख़र्च कर डालते हैं। कभी कभी तो विलास की वस्तुएँ ख़रीद कर अथवा अकारण बन्धुवर्ग को भोज देकर और उत्सव करके आमद की अपेक्षा अधिक ख़र्च कर बैठते हैं। कितने ही लोगों को ऐसा करते देखा है कि वे एक दिन ख़ूब ख़र्च करके

अच्छे अच्छे पकवानों से अपनी रसना को तृप्त करते हैं, किन्तु दूसरे दिन उन्हें आधे पेट खाने के लिए सूखी रोटी भी बड़े कष्ट से मिलती है। एक दिन की फ़िज़ूल-खर्ची से सारा महीना ही कष्ट से कटता है। ऐसे लोग कभी लक्ष्मी प्राप्त नहीं कर सकते, और ऋण के लिए इन लोगों को बहुधा दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है। इसलिए द्रव्य जमा करने का अभ्यास सबको करना चाहिए। इस अभ्यास से ऋद्धि सहज-साध्य हो सकती है। किन्तु उन लोगों को ऋद्धि प्राप्त नहीं हो सकती जो बराबर बीमार रहा करते हैं अथवा जिनका चरित्र ठीक नहीं है। ऋद्धि-प्राप्ति के लिए सच्चरित्र होना नितान्त आवश्यक है। कर्तव्य, ज्ञान, शिक्षा और धर्म ऋद्धि के चिर सहचर हैं। असभ्य समाज की कभी श्रीवृद्धि नहीं होती। अँधेरे में अग्रसर होने के लिए किसी को रास्ता दिखाई नहीं देता। किन्तु ज्ञान, धर्म और सभ्यता के प्रकाश से उन्नति के मार्ग में किंवा ऋद्धि-पथ में लोग सहज ही अग्रसर हो सकते हैं। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि एक साथ सब प्रकार की उन्नतियों का ही नाम ऋद्धि है। दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति; ज्ञान, विज्ञान और सभ्यता की वृद्धि; सामाजिक और जातीय जीवन का परिष्कार ये सभी ऋद्धि के अन्तर्गत हैं। मान लो कि ऋद्धि एक वृक्ष है, जिसका मूल सुचरित्र है; आत्म-निर्भरता तना है; श्रम, धैर्य, संचय-शीलता आदि गुण शाखा-प्रशाखा हैं; अतुल धन, क्षमता और उदारता आदि पत्र हैं; सुयश, सम्मान फूल हैं और शान्ति एवं

सुख फल हैं। जिस अमृतरस के पीने से यह वृक्ष हरा भरा रहता है वह अमृतरस तीन धाराओं में प्रवाहित हो रहा है। जिनका नाम क्रमशः—आशा, विश्वास और उच्च अभिलाष है।

कोई काम शुरू कर दो

उचित कामों को, जहाँ तक हो, शीघ्र कर डालना ही अच्छा है। किसीने कहा भी है "शुभस्याचरणं शीघ्रम्' अर्थात् शुभकर्म में विलम्ब न करना चाहिए। बहुत लोग यह कह कर कि कल करेंगे, दो दिन के बाद करेंगे, अगले महीने में करेंगे आवश्यक कामों को भविष्य पर टाल देते हैं। ऐसे भविष्याभिलाषी लोग प्रायः वे काम फिर नहीं कर सकते। कितने ही लोग यों कहा करते हैं कि यह काम तो ज़रूर करना होगा किन्तु कोई शुभ कार्य शुभ मुहूर्त देख कर ही करना ठीक है; इसके लिए कोई अच्छा दिन निश्चित होना चाहिए। इसी प्रकार दिन का निश्चय करते ही करते समय बीत जाता है, पर कार्य का आरम्भ नहीं होता। कितने ही लोगों को यह विश्वास है कि "जो काम आरम्भ में बिगड़ता है वह फिर नहीं सुधरता।" इसी विश्वास के वशवर्ती होकर वे सहसा किसी काम में हाथ नहीं डालते। वे सोचते हैं "आरम्भ ही में यदि विफलता हुई तो भविष्य में कृतकार्य होने की कोई आशा नहीं।" अतएव वे कार्य के आरम्भिक गठन की प्रतीक्षा में ही सारा जीवन बिता देने पर विपत्ति

की आशङ्का से कार्य करने में प्रवृत्त नहीं होते। ऐसे ही कोई कोई यह कहा करते हैं कि "काम करेंगे तो अच्छी तरह से करेंगे नहीं तो करेंगे ही नहीं।" पर वे यह नहीं सोचते कि कोई काम शुरू शुरू में सर्वांशतः अच्छा नहीं होता। कोई व्यक्ति काम शुरू करने ही के साथ कृतकार्य नहीं होता। काम करने से ज्यों ज्यों तजरिबा हासिल होता है त्यों त्यों सफलता प्राप्त होने की आशा बढ़ती जाती है और एक न एक दिन उसका आयास सफल हो ही जाता है। किसी कवि ने कहा भी है "भवति विज्ञतमः क्रमशो जनः।" जो लोग काम बिगड़ने के भय से कार्यक्षेत्र में पदार्पण नहीं करते उन्हें एक बार सोचना चाहिए कि संसार के जितने काम हैं सभी उत्थानशील हैं और जो उत्थानशील हैं उनका पतन भी अवश्यम्भावी है। जो खड़ा होता है उसीको गिरने का भय रहता है। लड़कों का बार बार का गिरना ही उन्हें दौड़ने में समर्थ बनाता है। गिरने के डर से लड़के यदि खड़े न हों तो अपने पाँव खड़े होने का भी सामर्थ्य उन्हें प्राप्त न होगा-दौड़ना तो उनके लिए दूर की बात है। अधिकांश जगहों में विफलता ही शिक्षा की सीढ़ी और कृतकार्यता का कारण होती है। मिस्टर ग्लैडस्टन ने पार्लामेन्ट महासभा में पहले पहल ऐसी वक्तृता दी थी कि कोई उसे न समझ सका और न किसी को वह पसन्द आई। दूसरी बार फिर उन्हें वक्तृता देने का मौक़ा मिला। सभी लोग उनकी सफलता के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट कर रहे थे। किन्तु अब की बार उनकी वक्तृता से सभी प्रसन्न हुए। कुछ दिनों

में वे वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ गिने जाने लगे और विश्वविख्यात होकर सर्वत्र सम्मानित हुए। कार्लाइल के समान महाविद्वान् का भी यही हाल हुआ। उनकी प्रथम रचना चित्ताकर्षक न होने के कारण विशेष रूप से आदृत न हुई थी।

जब तुम देखो कि यह काम करना है और इस काम का उद्देश्य शुभ है, तब उसका आरम्भ कर ही दो, विलम्ब मत करो। तुम जब कुछ काम कर चुकोगे तब तुम्हारा उत्साह आपही बढ़ेगा। एक लड़के को प्रति दिन प्रातःकाल मिठाई के लिए दादा से एक पैसा मिलता था। एक दिन उसे दो पैसे की मिठाई खाने की इच्छा हुई। परन्तु एक पैसे से अधिक तो वह किसी दिन पाता ही नहीं था जो अपनी तृष्णा का निवारण करता। तृष्णा बहुत बढ़ गई थी, इससे वह रोज़ प्रतिज्ञा करता था कि "कल जलपान न करके पैसा रख छोड़ूँगा और परसों दो पैसे की मिठाई एक ही मरतबा खालूँगा"। किन्तु मिठाई खाने का अभ्यास उसे इतना प्रबल था कि प्रतिज्ञा करने पर भी वह मिठाई खाने के समय पैसा न बचा कर मिठाई खाही लेता था। एक दिन किसी कारण उसे प्रातःकाल मिठाई खाने का सुयोग न मिला, इससे उस दिन का पैसा उसके पास बच गया। दूसरे दिन उसके हाथ में दो पैसे हुए। पर आज उसके मन से पहले की तृष्णा दूर हो गई। उसने देखा कि मिठाई न खाने से भी कुछ कष्ट नहीं हुआ। वह अब बराबर मिठाई का पैसा जमा करने लगा। उसे जमा करने का ऐसा चसका पड़ा कि एकही एक पैसा जमा कर के

दो वर्ष में उसने ग्यारह रुपये से कुछ अधिक जमा कर लिये। उस समय उसकी उम्र दस वर्ष की थी। संचयशीलता के साथ ही साथ मितव्ययिता की ओर भी वह बाल्यकाल से ही ध्यान देने लगा। यह मितव्ययी संचयशील बालक जब युवा हो चला तब उसके हाथ में सौ रुपये थे। उतनी ही पूँजी से व्यापार करते करते लाखों रुपया जमा करके वह महाजनों में बहुत बड़ा गिना जाने लगा। तब वह एक दिन बोला—"यदि मैं और कुछ दिन पहले से मितव्यय के साथ संचय करता तो इससे भी अधिक उन्नति कर सकता।" जिस तरह हो, काम शुरू कर देना चाहिए। प्रत्येक काम का आरम्भ ही उसका असली अंश है। जब तक कोई काम आरम्भ नहीं किया जाता तब तक वह विपन्नदशा में पड़ा रहता है। काम का आरम्भ ही मानो उसके लिए जन्म ग्रहण करना है। भली भाँति काम करने से दिन ब दिन उसका अङ्ग गठित और दृढ़ होता है। प्रौढ़ अवस्था में आकर वही मनोवाञ्छित फल देता है। आरम्भ ही न किया जाय तो कोई काम पूर्ण कैसे होगा। किसी कार्य्य की पूर्णता के लिए प्रथम आरम्भ ही आवश्यक है। कितने ही अच्छे काम, आरम्भ न होने के कारण, नष्ट हो गये और हो रहे हैं। किसी अच्छे काम का आरम्भ करने में लोग पहले ही इतना विलम्ब कर देते हैं कि आखिर वह असम्भव कह कर छोड़ दिया जाता है। तुम कोई काम आरम्भ करदो तो फिर देखोगे कि काम का आधा भार हलका हो गया। किसी कार्य्य के आरम्भ-काल में विशेष समारोह न

होना नैराश्य का कारण नहीं बल्कि प्रारम्भ-काल में बहुत आड-म्बर न करना ही अच्छा है। किसी ने कहा भी है "बह्वारम्भे लघु-क्रिया।" अर्थात् अधिक आडम्बर के साथ जो काम आरम्भ किया जाता है उसका फल अत्यन्त सामान्य होता है। ज़ीना कितना ही ऊँचा क्यों न हो किन्तु उसकी पहली सीढ़ी सबके नीचे—यहाँ तक कि धरती से मिली—रहती है, यह किसी को भूलना न चाहिए। एक ही एक पग आगे बढ़ कर लोग पहाड़ के ऊँचे शिखर पर पहुँच जाते हैं। जो बरगद का पेड़ शाखा-प्रशाखाओं से चारों तरफ़ फैल कर हज़ारों थके बटोहियों को अपनी छाया प्रदान से ठण्डा करता है, सोचो तो उसकी उत्पत्ति कितने छोटे से बीज से होती है। विशालवृक्ष का अङ्कुर देख कर क्या कोई अपनी उन्नति के साधन से निराश हो सकता है?

कितने ही लोग कहते हैं कि "खाना, कपड़ा तो चलता ही नहीं, हम बचावेंगे क्या ख़ाक! यदि किसी तरह कुछ बचावें होंगे तो उससे क्या होगा? महीने में यदि दो एक रुपया बच रहा गया तो क्या उसे बचना कहेंगे? इतना थोड़ा द्रव्य बचा कर जो कष्ट और असुविधा भोगनी पड़ेगी, इससे तो अच्छा यही है कि द्रव्य न बचा कर कष्ट ही को दूर करें" नहीं, उनका यह कथन ठीक नहीं। महीने में जो ही कुछ बच सके उसे ज़रूर बचाना चाहिए। इसमें हानि क्या? जो प्रतिदिन एक आना बचाता है उसके पास महीने में दो रुपये जमा हो जाते हैं। एक वर्ष में

वह चौबीस रुपये जमा कर सकता है। साल में चौबीस रुपये की बचत बहुत हुई। एक पैसा रोज़ जमा करने से सोलह वर्ष में सौ रुपये जमा हो जाते हैं। एक पैसे की महिमा कुछ कम नहीं है। यही एक सौ की पूँजी लेकर कितने महाजन लक्षपति हो गये हैं। एक रुपया हो चाहे एक पैसा, कुछ मासिक बचाने का आरम्भ कर ही देना चाहिए और नियम-भङ्ग न हो, इस पर भी ध्यान रखना चाहिए। कष्ट सह करके, चाहे कुछ कठिनाई झेल कर, संचय का आरम्भ कर ही देना चाहिए। इसलिए किसी को कठिन साहस, असाधारण प्रतिभा या विशेष सामर्थ्य की आवश्यकता नहीं है। केवल स्वाभाविक बुद्धि रहनी चाहिए और आमोद, प्रमोद, भोग, विलास आदि वासनाओं के वशीभूत न होकर उचित और आवश्यक कर्तव्य मात्र का पालन करना चाहिए तथा छोटे छोटे स्वार्थ-सुख की स्पृहा को चित्त से दूर कर देना चाहिए। इसमें पहले पहल कुछ कष्ट अवश्य होता है, किन्तु भविष्य की स्थिति और सुखसाधन के लिए यदि कुछ काल तक थोड़ा कष्ट ही सहना पड़े, तो उसे आनन्द ही माने। थोड़ा कष्ट सह कर विशेष सुख पाने की इच्छा किसे न होगी? पहले कुछ कष्ट सहे बिना किसी को सुख-सम्पत्ति नहीं मिलती। बिना कुछ तकलीफ़ बरदाश्त किये कोई मितव्ययी नहीं हो सकता। कष्टसहिष्णु हुए बिना कोई परिश्रमी भी नहीं हो सकता। बिना परिश्रम किये धन भी नहीं मिलता अतएव कष्ट-सहिष्णुता, श्रमशीलता और मितव्ययिता,

धनोपार्जन और संचय का मूल है। संचित धन विपत्ति के समय काम आता है, निरुपाय अवस्था में जीवन का अवलम्ब होता है और आर्तकाल में सान्त्वना देता है। ऐसे अमृतोपम धन के संचय करने का आजही से उद्योग करो, इसी घड़ी से पैसा बचाने का आरम्भ करदो। जो दिन बीत गये उनका सोच न करो। "बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेहु।" अब भी सावधान होकर अपने कर्तव्य का पालन करोगे तो बहुत कुछ लाभ उठा सकोगे। द्रव्य संचय करना, कोई विशेष शक्ति नहीं, कोई विशेष गुण नहीं, यह मनुष्यमात्र का एक कर्तव्य धर्म है। जो इस कर्तव्य का पालन नहीं करते उन्हें इस पाप का प्रायश्चित्त दारिद्र्य रूपी चान्द्रायण व्रत के द्वारा ज़रूर करना पड़ता है। इसलिए यथासाध्य कुछ संचय करते रहो, जिसमें किसी दिन प्रायश्चित्त करने का अवसर प्राप्त न हो।

सामान्य विषयों का महत्व

तुम लोगों ने "चरित्रगठन" पुस्तक में पढ़ा होगा कि सामान्य से भी सामान्य विषय उपेक्षा करने योग्य नहीं है। सामान्य सामान्य विषय ही मनुष्यों के चरित्रगठन का सामान है। साधारणतया देखने से एक ईंट तुच्छ जान पड़ती है। किन्तु विचार-पूर्वक देखने से मालूम होगा कि उसका मूल्य कितना है। इसी एक एक सामान्य ईंट से बड़ी बड़ी ऊंची अटारियाँ और राजा

के महल तैयार होते हैं। सामान्य सामान्य दोषों का आश्रय करके संसार की कितनी ही जातियाँ नष्ट हो गई हैं और सामान्य सामान्य गुणों को एकत्र करके कितनी ही जातियाँ उन्नति के शिखर तक पहुँच गई हैं। संसार का यही स्वाभाविक नियम है। यह सारा ब्रह्माण्ड, जो इतना बड़ा दिखाई दे रहा है, परमाणुओं की समष्टिमात्र है। वह परमाणु इतना छोटा है कि उसे हम आँखों से देख तक नहीं सकते। जातीय इतिहास अधिक लोगों की जीवनी के अतिरिक्त और क्या है? जो महानुभाव चरित्र-बल से संसार में अपना नाम चिरस्थायी कर गये हैं और अनेक लोकोपकारी काम कर के अपनी अद्भुत शक्ति का परिचय दे गये हैं, उन लोगों ने क्या एक ही दिन में किसी अलौकिक काम से लोगों को चकित कर दिया था? नहीं, वे लोग अपने जीवन में कभी दया का एक सामान्य काम करके, कभी न्याय का सामान्य काम, कभी एक साधारण सत्य का पालन और कभी एक साधारण स्वार्थ का त्याग करके ही विख्यात हुए थे। जिसे तुम बिलकुल तुच्छ समझते हो और उस सामान्य कर्तव्य के पालन से पराङ्मुख होते हो, ऐसे ऐसे कितने ही सामान्य कर्तव्यों का वे धर्म समझ कर प्राणपण से पालन करते थे। इसी से उनका उतना यश फैल गया।

जो काम प्रति दिन करना पड़ता है उसका एक प्रकार से लोगों को अभ्यास हो जाता है। जो काम पहले कठिन और कष्टकर जँचता है वहीं कुछ दिन के बाद, अभ्यस्त हो जाने पर,

सहल और स्वाभाविक हो जाता है। तुम इस बात की सत्यता की परीक्षा करके सहज ही जान सकते हो। तुम अपनी पाठ्य पुस्तक के किसी विषय को एक दिन तीस मरतबा पढ़ जाओ, शायद वह विषय तुम्हें कण्ठस्थ न होगा। जिस विषय को तुम एक दिन में तीस बार पढ़ कर भी कण्ठस्थ नहीं कर सके वही प्रति दिन केवल एक बार पढ़ने ही से तीस दिन में तुम्हें बख़ूबी कण्ठस्थ हो जायगा। अभ्यास की ऐसी अद्भुत शक्ति है। इस शक्ति को सामान्य अच्छे अच्छे कामों में लगाने से तुम भी संसार को चकित कर सकते हो। मान लो, आज सबेरे उठकर तुमने प्रतिज्ञा की—"अनेक कारणों से और बिना कारण भी हम रोज़ ही न मालूम कितना झूठ बोलते हैं. आज एक बात भी मुँह से मिथ्या न निकलने देंगे।" प्रतिज्ञा तो तुमने बड़ी आसानी से करली, किन्तु जितनाही समय बीतने लगा उतनाही प्रतिज्ञा-पालन करना तुम्हारे लिए कठिन होने लगा। तुम अब वीरता धारण कर अपने स्वभाव के साथ, अपनी चित्तवृत्ति के साथ, जूझने लगे। तुम्हारा पहले का अभ्यास ज्योंही तुमसे झूठ बुलवाना चाहता है त्योंही तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा की बात याद आजाती है और तब तुम बड़ी सावधानी से प्रतिज्ञा की रक्षा करने लगते हो। कुछ देर के बाद तुम कोई लेख लिखने बैठे। किसी घटना का उल्लेख करते करते अभ्यासवश तुम सोचने लगे कि इस जगह कुछ मिथ्या वर्णन कर देने से पाठकों का विशेष मनोरञ्जन होगा किन्तु एकाएक तुम्हारी लेखनी रुक

गई, तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद हो आई। तुमने मनही मन कहा— "लोगों का मनोरञ्जन हो या न हो, आज झूठ हर्गिज़ न बोलूँगा।" इस प्रकार तुमने प्रति बार अपने चिरन्तन अभ्यास को दबा कर वीर की तरह अपने सत्य का पालन किया। इसके बाद स्वस्थ मन से यदि तुम अपनी परीक्षा करके देखोगे तो जानोगे कि अनेक चेष्टा करके भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन पूर्णरूप से नहीं कर सके। किस वक्त तुमसे क्या भूल हुई, यह किञ्चित् ध्यानस्थ होने से तुम्हें आपही मालूम हो जायगा तथापि इस बात को कोई नहीं काट सकता कि और दिन जहाँ तुम दस बातें झूठ बोलते थे वहाँ आज तुम दो या तीन ही बोले हो। इस के दूसरे दिन यदि तुम सच बोलने की चेष्टा करोगे तो तीन मिथ्या की जगह दो और उसके अगले दिन कदाचित् एक झूठ बोलोगे। उसके बाद फिर तुम्हारे मुँह से एक भी झूठ बात न निकलेगी। इस प्रकार जब तुम पूर्ण रूप से मिथ्या भाषण पर विजय प्राप्त करके सत्यभाषी बनोगे तब तुम्हें वह आनन्द मिलेगा जो लड़ाई के अन्त में विजयी सेनापति को मिलता है। आनन्द के साथही तुम्हारी मानसिक शक्ति भी दिन दिन बढ़ती जायगी। प्रति दिन यदि तुम योंही सच बोलने का अभ्यास करोगे तो थोड़े ही दिनों में सच बोलने का तुम्हारा स्वभाव हो जायगा और प्रतिदिन की वह सत्य भाषण की सामान्य शक्ति सञ्चित हो कर तुम्हें महाशक्तिशाली बना देगी। तब यह स्वयं सिद्ध है कि तुम्हारी प्रबल शक्ति के सामने हीन शक्ति ज़रूर सिर

झुकावेगी। तुम्हारी सत्यनिष्ठा देखकर वृद्ध लोग भी तुम पर भक्ति, श्रद्धा और विश्वास करेंगे। जिस काम में तुम हाथ डालोगे उसी में सफलता प्राप्त करोगे। सत्य की महिमा ऐसी ही है। जो काम हज़ार झूठ बोलने से सिद्ध नहीं होता वह सत्य भाषण के बल से अनायास सिद्ध हो जाता है।

किसी को छोटा समझ कर कभी उसकी अवहेला न करो। विष का एक छोटा सा कण रुधिर के साथ मिल जाने से सारे शरीर को व्यथित करके मृत्यु का कारण होता है। छोटी सी चींटी के काटने से बड़े बलवान् हाथी भी पीड़ित और पराभूत हो जाते हैं। छोटी सी वस्तुओं में जो सामर्थ्य है सो क्या तुम नहीं जानते? यह जो बड़ी विशाल रेलगाड़ी हज़ारों मन बोझ और हज़ारों मनुष्यों को एक साथ लेकर ऊपर की ओर साँस फेंकती हुई वायु की गति से दौड़ रही है वह क्या इंजन में रहने वाली एक क्षुद्रकणमय वाष्प-शक्ति का काम नहीं है? समय का एक एक पल कैसा अमूल्य है, इस पर प्रायः तुम लोग उतना ध्यान नहीं देते। इसीसे व्यर्थ कामों में समय नष्ट करना बुरा नहीं समझते हो। मानलो कि कोई विद्यार्थी स्कूल में पढ़ रहा है, एकाएक तार के द्वारा घर से ख़बर आई कि उसकी माँ मरणापन्न है, उसे झट पट घर जाना चाहिए। रेलगाड़ी के द्वारा जाने से उसका घर वहाँ से कई घण्टों का रास्ता था। वह छुट्टी लेकर तुरंत घर पर आया और "टाइमटेबल" लेकर देखा, गाड़ी छुटने में सिर्फ़ दस मिनट की देरी थी। वह झट स्टेशन की

श्रोर दौड़ा। उसके घर से स्टेशन भी प्रायः दस मिनट का रास्ता था। स्टेशन पर जाकर टिकट भी लेना होगा, इतने में कहीं गाड़ी छुट गई तो उस दिन फिर दूसरी गाड़ी न मिलेगी। इधर तो उसके मन में यह चिन्ता हो रही है, उधर सन्तानवत्सला माता मृत्युशय्या पर पड़ी हुई अपने पुत्र का एक बार मुख देखने के लिए व्याकुल हो रही है, मानो उसी की आशा में अब भी उसके प्राण रुके हुए हैं। कल्पना की दृष्टि से वह लड़का यह हृदय-विदारक दृश्य देख रहा है। अपनी माता के स्नेह और वात्सल्य का स्मरण कर के वह बड़े व्याकुल चित्त से, उन्मत्त की तरह, स्टेशन की तरफ़ बेतहाशा दौड़ा जा रहा है। किसी न किसी तरह स्टेशन पर पहुँचा, झटपट टिकट लेने लगा, इतने ही में घंटी बजने के साथ ही गाड़ी ने सीटी बजाई। अब देर नहीं है, सिर्फ़ एक पल की देर है। उसके बाद गाड़ी अदृश्य हो जायगी! सोचो तो यह एक पल, यह समय का इतना क्षुद्रतम अंश, इस समय कितना मूल्यवान् हो रहा है।

सामान्य कह कर उपेक्षा करने योग्य कुछ नहीं है। ईश्वर की सृष्टि में कोई भी चीज़ साधारण नहीं है। तुम्हारी दृष्टि में कोई वस्तु भले ही सामान्य जँचे, पर वास्तव में वह सामान्य है नहीं। सामान्य केवल एक मौखिक बात है। "अहा" इतना कहने ही से एक शोकाकुल व्यक्ति को बहुत कुछ सान्त्वना मिल सकती है और एक छोटी सी कठोर बात से उसकी छाती फट जा सकती है। तुम्हारे होठों में मुसकुराहट की झलक देख कर

तुम्हारी छोटी बहन के आनन्द की सीमा नहीं रहती, किन्तु जरा सी भौं टेढ़ी करते ही उसे चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा सूझने लगता है और वह व्याकुल होकर रोने लगती है। अब तुम खुद समझ जाओगे कि उस सामान्य मुसकुराहट में कितनी शक्ति भरी है। इसी प्रकार समझ लो कि संसार में जितने अच्छे-बुरे, सुख-दुःख, और शुभ-अशुभ दृष्टिगोचर होते हैं वे सब सामान्य सामान्य विषयों के ही ऊपर अवलम्बित हैं।

यह जो सुना जाता है कि अमुक व्यक्ति का प्रबन्ध बहुत अच्छा है, वे बड़ी उत्तमता से अपनी गृहस्थी चला रहे हैं, अमुक व्यक्ति खूब पक्का गृहस्थ है, वह स्त्री घर का काम बहुत सुघराई से चला रही है—इन सब बातों से क्या मतलब निकलता है? सारी बातों से हम यही समझते हैं कि उन लोगों के घर में रोज़ाना काम नितान्त सामान्य होने पर भी प्रयोजन के अनुसार ठीक समय पर सम्पादित होता है। जिसका जो कर्तव्य है वह यथाशक्ति उसे निर्विवाद पूरा करता है। जो चीज़ जहाँ रहनी चाहिए वह वहीं रक्खी जाती है। जिस वक्त के लिए जो जो काम नियत है वह काम उसी वक्त किया जाता है। जिस विषय में जो निपुण है वह उसे अपने हाथ में लेता है। जिस घर का काम इन नियमों से होता है, जानना चाहिए कि उस घर में आय के अनुसार उचित खर्च होकर भविष्य के लिए भी कुछ द्रव्य ज़रूर सञ्चित हो जाता है; उस घर में सामान्य अथवा तुच्छ समझ कर अच्छे कामों की अवहेला नहीं की जाती,

यहाँ तक कि मुट्ठी भर चावल भी व्यर्थ कहीं नहीं फेंके जाते। फटे कपड़े का एक टुकड़ा भी नहीं फेंका जाता।

छोटे छोटे विषयों में ध्यान न देने से अथवा सामान्य त्रुटि पर दृक्पात न करने से बड़े बड़े सेठ साहूकारों का दिवाला निकल जाता है। बात की बात में उनकी चिरकालिक प्रतिष्ठा लुप्त हो जाती है। ऐसे ही सामान्य सामान्य विषयों पर विशेष लक्ष्य रखने और एक एक कौड़ी के हिसाब पर दृष्टि डालने से अनेक फेरी वाले दरिद्र व्यक्ति लाखों की दौलत पैदा कर मालामाल हो गये हैं। स्थान, समय और पात्र के भेद से प्रत्येक वस्तु और विषय की उपयोगिता होती है। सोचने से सभी बातें प्रयोजनीय जान पड़ती हैं। यदि तुम ऋद्धिमान् होना चाहो तो सामान्य समझ कर किसी विषय की अवहेला मत करो।

समय का सदुपयोग

संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो परिवर्तनशील न हो। धीरे धीरे सभी का परिवर्तन होता है। ये जो बड़े बड़े द्वीप (टापू) समुद्र के बीच से निकल पड़ते हैं, क्या तुम समझते हो कि वह किसी एक दिन के भूकम्प का फल है? नहीं, कई करोड़ प्रवाल-कीटों (मूँगा बनाने वाले कीड़ों) के द्वारा हज़ारों वर्ष में जाकर कहीं एक प्रवाल-द्वीप की सृष्टि होती है। जहाँ एक दिन अगाध जल था वहाँ सूखी ज़मीन देख कर किसे आश्चर्य

न होगा ? पर यह आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह प्रकृति धीरे धीरे परमाणु को पहाड़ बना डालती है। इस विपुल ब्रह्माण्ड में प्रकृति के द्वारा हम लोगों को दिन ब दिन यही शिक्षा मिलती है कि जितने बड़े बड़े काम हैं, सब का आधार धैर्य्य ही है। संसार के प्राकृतिक पदार्थों के परिवर्तन से जिस नियम का सम्बन्ध है वही नियम हम लोगों के अवस्थापरिवर्तन से भी सम्बन्ध रखता है। हम लोग अपनी आँखों देख रहे हैं कि नित्य नियम-पूर्वक थोड़ी थोड़ी चेष्टा करने से कुछ समय में बहुत बड़े बड़े काम सम्पन्न होजाते हैं। अनियमित रूप से दो एक बार असाधारण चेष्टा करने पर भी अभिमत फल प्राप्त नहीं होता। उद्यम कैसा ही सामान्य क्यों न हो, किन्तु नियम से बहुत दिनों तक बराबर करते रहने पर उसकी शक्ति लोगों को अचम्भे में डाल देती है।

पाँच मिनट बहुत ही कम वक्त है, देखते ही देखते बीत जाता है. किन्तु यह पाँच मिनट समय प्रतिदिन नष्ट करने से एक वर्ष में एक दिन छः घंटे पच्चीस मिनट नष्ट होते हैं। दस वर्ष में बारह दिन से भी अधिक समय, क़रीब आधे महीने के, बरबाद होता है। कोई मनुष्य यदि बीस वर्ष की उम्र से काम करना शुरू करे और साठ वर्ष की उम्र तक करता जाय और प्रति दिन पाँच मिनट वृथा गँवावे तो उस व्यक्ति ने चालीस वर्ष के अन्दर पचास दिन, सोलह घण्टे और चालीस मिनट बरबाद किये अर्थात् तीन वर्ष, चार महीने तक मानों उसने

प्रतिदिन एक घण्टा मुफ़्त खोया। इतने अधिक समय में लोग कोई क्लिष्ट भाषा या कोई प्रयोजनीय शिक्षा अथवा कोई अर्थकरी विद्या सीख सकते हैं। किन्तु खेद का विषय है कि हम लोगों के जीवन में प्रतिदिन ऐसे ऐसे कितने ही पाँच मिनट मुफ़्त बरबाद होते हैं। इसका कोई कहाँ तक हिसाब लगा सकता है? प्यारे युवको, अब भी सावधान होकर अपने अनोखे समय पर ध्यान दो। कैसे अच्छे अच्छे सुयोग तुम्हारे हाथ से निकलते चले जा रहे हैं। यदि तुम अल्प से भी अल्प समय की उपेक्षा न करोगे तो सुयोग स्वयं तुम्हारा हाथ पकड़ेगा।

घड़ी भर भी समय वृथा नष्ट न करके और समय का सदु-पयोग करके कितने ही कर्मवीर विद्वान् अनेकानेक बड़े बड़े ग्रन्थ लिख कर अपने नाम को अमर कर गये हैं।

एक पैसे का महत्व

भारतवर्ष में लगभग तीस करोड़ आदमी हैं। ये तीस कोटि मनुष्य यदि सप्ताह में एक पैसा रख छोड़ें तो एक वर्ष में अठारह अरब चालीस करोड़ पैसे या यह कहो कि साढ़े बाईस करोड़ रुपये, जो एक करोड़ पचास लाख गिनी के बराबर हैं, जमा हो सकते हैं। इन स्वर्णमुद्राओं को एक एक कर पास ही पास बिछाने से ये दो सौ मील तक बिछाई जा सकती हैं। यदि कोई रेलगाड़ी पर सवार हो तो इतना बड़ा रास्ता प्रायः साढ़े नौ

घण्टों में तय कर सकेगा। गिनी-रुपयों की बात जाने दो, अगर उन १८ अरब ४० करोड़ पैसों को परस्पर संलग्न कर पंक्तिबद्ध रक्खें तो वे हमारी इस पृथिवी की चारों ओर घूम कर और ठीक इतनी बड़ी अन्य आठ पृथिवियों की परिक्रमा करके भी भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक बिछाये जा सकते हैं। पृथ्वी से दो लाख अड़तीस हज़ार मील की दूरी पर चन्द्रमा है और चन्द्रमा की परिधि छः हज़ार तीन सौ मील है। इन पैसों की बिछी हुई पंक्ति यदि ऊपर की ओर उठाई जाय तो वह चन्द्र-लोक तक पहुँच कर चन्द्रमण्डल के चारों ओर परिक्रमा कर सकती है। अथवा हिमालय की सबसे बड़ी चोटी जो धरती से पाँच मील आठ सौ छियासठ गज़ ऊँची है, वैसी ऊँची ऊँची २७५८ चोटियाँ एक के ऊपर एक रखने से कदाचित् उन पैसों की उँचाई की तुलना कर सकें।

ऐसा कभी न समझो कि राजा महाराजा, या ऐश्वर्य्यशाली व्यक्ति—जो आईन, क़ानून, न्यायालय, विद्यालय और चिकित्सालय आदि स्थापित करते हैं वे—जभी चाहते तभी संसार का हितसाधन या उन्नति करने में समर्थ होते हैं और तुम नहीं होते हो। जो काम शीघ्रता में एकाएक होता है उसकी चिरस्थायिता में सन्देह है। जो क़ानून एकाएक बन जाता है, उसका बहुत कुछ परिवर्तन थोड़े ही दिनों में होता है। यहाँ तक कि वह जारी होने के साथ ही बन्द कर दिया जाता है। किन्तु जो बहुत सोच समझ कर धीरे धीरे अनेक दिनों में बनता है वह देशा-

चार और समाज के अनुकूल होने से देशमान्य होकर चिरकाल तक स्थिर रहता है। हम लोग यदि अपने जीवन को उन्नत करना चाहें और अपनी अवस्था को सुधारना चाहें तो हम को बड़ी सावधानी से धीरे धीरे उसका प्रयत्न करना चाहिए। उस के लिए किसी विशेष शक्तिशाली व्यक्ति का प्रयोजन न होगा। राजा, महाराजा या शास्त्रकार कभी मनुष्य को साधु, साहसी और प्रेमिक नहीं बना सकते, यहाँ तक कि उन्हें किसी को सुखी करने का भी सामर्थ्य नहीं। अपनी इच्छा करने ही से कोई शिष्ट, साहसी और सुखी हो सकता है। उन्नति की अभिलाषा जब तक मन में अंकुरित न होगी तब तक उन्नति के उपयुक्त कामों में प्रवृत्ति ही न होगी। बिना प्रवृत्ति के कोई उद्योगशील नहीं होता। बिना उद्योग के सफलता ही क्योंकर प्राप्त हो सकती है? अतएव अपने ही उद्योग-बल से लोग अपनी उन्नति कर सकते हैं, लक्ष्मी प्राप्त कर सकते हैं और देश का भी बहुत कुछ उपकार करके सुख-शान्ति स्थापन कर सकते हैं। सभी लोग यदि अपनी उन्नति के लिए सामान्य चेष्टा करके यथासाध्य कर्तव्य की रक्षा करें, सभी लोग यदि सुचरित्र, उद्यमशील, परिश्रमी, आत्मनिर्भर और मितव्ययी होकर ऋद्धिशाली बनें, तो समग्र जाति और देश को उन्नत होते क्या देर लगे?

पुरुषार्थ और अदृष्ट

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्यकुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यतिकोत्रदोषः॥

अहो पथिक क्यों रुकि रहे लखि सुख-पन्थ अछाम।
बिन उद्यम कहु कौन के सफल होत मन काम॥

उन्नति और ऋद्धि का मूल-कारण पुरुषार्थ ही है। बिना उद्योग किये कोई लक्ष्मी प्राप्त नहीं कर सकता। संसार की उन्नत जातियों में जो आज कल सबसे प्रधान हैं, और ज्ञान, धन, सामर्थ्य, कार्य्यकुशलता में जो सब से बढ़े चढ़े हैं, उनका जातीय इतिहास पुरुषार्थ का अच्छा नमूना है।

युरोप किसी समय अज्ञानरूपी अन्धकार में डूबा था। कु-संस्कार ने मनुष्योचित गुणावली से वहाँ के निवासियों को वञ्चित कर रक्खा था। किन्तु जब उन लोगों की मण्डली में ज्ञान का प्रवेश हुआ तब उन लोगों के हृदय से अज्ञानरूपी अन्धकार दूर हो गया, उनकी आँखें खुल गईं। तब बड़ी तत्परता से कोई ज्योतिष, कोई दर्शन, कोई शिल्प, कोई साहित्य, कोई धर्म और कोई समाज को—अपनी अपनी शक्ति के अनुसार—परिष्कृत करने लगा। कुछ ही समय के बाद देखा गया कि जहाँ मूर्खता राज्य कर रही थी वहाँ विद्या की विजय-पताका फहराने लगी; जहाँ दुर्गम वन था वहाँ अच्छी अच्छी सड़कें, अच्छे अच्छे मकान

और बाग़ीचों की शोभा दिखाई देने लगी; जहाँ अराजकता फैली हुई थी वहाँ सुविचार और शासन-प्रणाली की प्रतिष्ठा हुई ; जो कूपमण्डूकवत् अपना देश छोड़ कर कहीं न जाते थे वे बनज-व्यापार करने के लिए देश-देशान्तर को जाने लगे ; जो साधारण भोजन-वस्त्र के लिए तरसते थे उनकी जन्मभूमि संसार की विविध विलास-वस्तुओं से और अन्न-धन से परिपूर्ण होकर लक्ष्मी का आवासस्थान बन गई । किसी समय पाश्चात्य देश-वासियों ने प्राच्य देश-निवासियों का ऐश्वर्य्य देख कर आश्चर्य्य के साथ पूछा था कि—"ये लोग ऐसे धनाढ्य क्योंकर हुए ?" इस प्रश्न का उत्तर देववाणी की तरह उनके हृदय में आपही आप उद्भूत हुआ—"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।"

इस पुण्यभूमि के अधिवासिगण जिस मन्त्र-बल से ज्ञान-समुद्र को मथ कर महालक्ष्मी और अमृत (मोक्ष) के अधिकारी हुए थे वह मन्त्र-बल आज कहाँ गया ? क्या हुआ ? अवश्य ही तुम लोग उस सञ्जीवनी मन्त्र को भूल कर महालक्ष्मी की कृपा से वञ्चित हुए हो ! उस मन्त्र का याद आना तो अब सम्भव नहीं, अतएव इस समय "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः" इस महामन्त्र का साधन करो और फिर लक्ष्मी के कृपापात्र बनो।

जैसे आलस्य का उलटा उद्योग है वैसे ही अदृष्ट का उलटा पुरुषार्थ है। जो लोग आलसी हैं वे अदृष्ट के भरोसे रह कर दुःख पाते हैं। जो उद्योगशील हैं वे पुरुषार्थ करके सुख पाते हैं। आजकल भारतवर्ष में अदृष्टवादियों की संख्या बहुत बढ़ गई है।

अदृष्टवाद की जड़ इतनी मज़बूत हो गई है कि पुरुषार्थवादी उद्यमशील जाति के साथ कई सौ वर्षों से सम्पर्क होने पर भी अब तक ज़रा भी नहीं हिली, बल्कि और दिन दिन मज़बूत ही होती है। निरुद्यमी लोगों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है। जिस समय भारत में अदृष्टवाद का प्रचार हुआ था उस समय भारत की अवस्था कुछ और ही थी। तब लोगों को भोजन, वस्त्र आदि अत्यावश्यक प्रयोजनीय वस्तुओं के लिए कोई चिन्ता न थी। उन दिनों लोग वस्तु से ही अन्य वस्तु ख़रीदते थे। इसी प्रकार सब लोग अपने लिए आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कर लेते थे। देशान्तरीय पदार्थों के बिना किसी को कुछ कष्ट न होता था। रुपये-पैसे-व्यवहार में बहुत कम आते थे। रुपया इतना महँगा था कि कौड़ी को लोग रुपया समझते थे और जब तब कौड़ियों से ही अकसर रुपये-पैसे का काम चला लेते थे। उस समय लोग अर्थ को अनर्थ का मूल समझ कर धन का उतना संग्रह नहीं करते थे। उस समय जो समाज में अत्यन्त दीन हीन था उसे भी रहने के लिए घर और खाने के लिए अन्न की कमी न थी। उस समय भारत में अन्न इस बहुतायत से उपजता था कि लोग थोड़े परिश्रम से भी परिवार-पोषण-योग्य अन्न पैदा कर लेते थे। गाँव के लोग अपने से अधिक सम्पत्ति वालों के साथ प्रतियोगिता करना नहीं जानते थे। जो जिस अवस्था में था वह उसी में सुखी था। प्रतियोगिता करने की बात केवल वाणिज्य-प्रधान शहरों ही के अन्दर थी। इन्हीं कारणों से

भारतवासियों के हृदय में अदृष्टवाद ने सहज ही प्रवेश करके सबको निरुद्यमी बना दिया।

जिसे हम आँख से नहीं देख सकते वही अदृष्ट है। अतएव भवितव्य को ही लोग अदृष्ट मानते हैं। जिस का कोई निर्णय नहीं कर सकता, "क्षणादूर्ध्वं न जानामि विधाता किं विधास्यति" वही अदृष्ट है। पहले से विपत्ति के प्रतिकार का कुछ उपाय तो करते नहीं, जब वह आ पहुँचती है तब उसे अदृष्ट का फल कह कर उसके निवारण की कुछ चेष्टा नहीं करते। जो सर्वदा अदृष्ट ही के ऊपर अपने को निर्भर किये रहता है असल में वही अदृष्टवादी है। उसे पूरा विश्वास है कि अदृष्ट को कोई टाल नहीं सकता। इसी से वह विपद्‌ग्रस्त होने पर भी सहसा व्यग्र न हो कर शान्तभाव से रहता है। किन्तु जो लोग पुरुषार्थशील हैं, जो अदृष्ट के भरोसे न बैठ कर यथाशक्ति उद्योग करते हैं, उन पर यदि एकाएक कोई दैवी दुर्घटना आ पड़ती है तो पूर्व सावधानता का अवसर न पाने पर भी वे न तो घबराते हैं और न भयभीत होते हैं। हाथ-पाँव मोड़ कर चुपचाप बैठ भी नहीं रहते। शीघ्रता से हो चाहे विलम्ब से, वे अदृष्ट की उपेक्षा करके पौरुष को ही प्रधान मान कर विपत्ति को दूर करने का प्रयत्न करते हैं और तब तक उन्हें शान्ति नहीं मिलती जब तक उनका संकट दूर नहीं होता। अदृष्ट को पूरे तौर से दूर करने में समर्थ न होने पर भी वे कुछ न कुछ कृतकार्य अवश्य होते हैं। किन्तु अदृष्टवादी तो बिल्कुल ही निश्चेष्ट बने रहते हैं। सामान्यतः

लाग जिस अर्थ में "अदृष्ट, दैव, भाग्य, क़िस्मत," आदि शब्दों का व्यवहार करते हैं वह उद्यम और अध्यवसाय का विरुद्ध बोधक है। कितने ही लोगों को यह कहते सुना है—"भाग्य में लिखा होगा तो होगा," "भाग्य में न लिखा था न हुआ," "विधाता ने जो भाग्य में लिखा ही नहीं वह कैसे हो! उद्यम करने से क्या होगा? जब विधाता को मंज़ूर नहीं तो हज़ार सिर खपाने पर भी कुछ न होगा," "उसका भाग्य ही खोटा है. उसका क्या दोष?" "यदि तुम्हारे भाग्य में बदा होगा तो तुम्हें ज़रूर मिलेगा" इत्यादि। क़िस्मत, अदृष्ट या भाग्य ये सभी पुरुषार्थ, उद्यम, अध्यवसाय. उत्साह आदि गुणराशियों की जड़ में दिन ब दिन कुल्हाड़ी मार रहे हैं। कितने ही उच्चाभिलाषी युवक दो-एक कामों में अकृतकार्य हो कर तुरन्त अपने भाग्य वा अदृष्ट को कोसने लगते हैं और उन कामों में फिर हाथ डालने का साहस नहीं करते। जो लोग "भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्" कह कर चिल्लाया करते हैं, समझना चाहिए कि उन के हृदय में उच्चाभिलाष की आग बुझ गई है। वे हाथ पर हाथ रख कर ही समय बिताना चाहते हैं। वे भाग्य की इतनी बड़ाई क्यों करते हैं? यदि इसका कारण ढूँढ़ोगे तो तुम्हें प्रत्यक्ष देख पड़ेगा कि इस भाग्य-प्रशंसा के मूल में आलस्य, असमर्थता या अस्वस्थता अथवा दूसरी ही कोई त्रुटि विद्यमान है। किन्तु वे आत्मवञ्चक अभिमानी व्यक्ति अपनी त्रुटि को छिपाने के लिए दूसरों की आँखों में यह कह कर धूल

फेंकते हैं कि "अदृष्ट की गति को कौन रोक सकता है ? अदृष्ट का फल सबको भोगना ही पड़ता है, किसका सामर्थ्य है जो अदृष्ट के फल को खण्डित कर सके ? विधाता को जब जो करना होता है वही होता है" इत्यादि। कितने ही योग्य व्यक्ति थोड़े ही वेतन में चिरकाल तक पड़े रहते हैं और अयोग्य व्यक्ति उन लोगों को अतिक्रम कर अधिक वेतन पाने लगते हैं, इसका कारण क्या है ? जो व्यक्ति कर्मक्षम हैं वे अपने गुण का उचित पुरस्कार न पाकर और गुण का फल विपरीत देखते देखते यही सिद्धान्त कर बैठते हैं कि " हमारा भाग्य ही खोटा है। " किन्तु वे इस बात को एक बार भी नहीं सोचते कि वह अयोग्य व्यक्ति थोड़ी शिक्षा, थोड़ी सी शक्ति और थोड़ा सा मस्तिष्कबल पाकर इस प्रकार उत्तरोत्तर क्यों उन्नति करता जाता है। वह शिक्षा, विज्ञता और हृदय के सद्भाव आदि अनेक गुणों से हीन होने पर भी उस कौशल में अवश्य प्रवीण है जिससे कि उस पर भाग्य-रचयिता सन्तुष्ट और बाध्य हों। वह कलाकौशल क्या है ? अपनी उन्नति की बराबर चेष्टा करते रहना। जो लोग अपनी उन्नति करना चाहते हैं वे कभी निश्चेष्ट हो कर नहीं बैठते। ये उद्यमशील व्यक्ति, अदृष्टवादी योग्य सहयोगियों के उद्योग से विरत होने का सुयोग पाकर, तरह तरह के कौशल-जाल फैला कर अपने उद्देश्य को सिद्ध कर ही लेते हैं। इस चेष्टा, इस उद्योग और इस एकाग्रभावना का क्या कुछ मूल्य नहीं है ? उन अयोग्य व्यक्तियों के ये बलवान् गुण उनकी सारी अयोग्य-

ताओं को ढक लेते हैं। इसी तरह उदासीनता और निश्चेष्टता अच्छे अच्छे गुणवान् योग्य व्यक्तियों के गुण-गौरव को नष्ट करके आर्थिक उन्नति के मूल में कुठाराघात करती है। इन बातों से यही सिद्ध हुआ कि सदुपाय से हो चाहे अयुक्त उपाय से ही, उद्योग या पुरुषार्थ किये बिना कोई काम सिद्ध नहीं होता। जिन लोगों का भाग्य अच्छा है उन्होंने अपने अच्छे भाग्य को पुरुषार्थ के द्वारा ही प्राप्त किया है। जो लोग पुरुषार्थ के साथ उद्योग करते हैं उनका भाग्य आप ही आप अच्छा हो जाता है। जो उद्योग से डरते हैं वही अपने खोटे भाग्य पर पछ-ताया करते हैं। बिना उद्यम किये कभी सफलता प्राप्त नहीं होती। "नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः"—सोये हुए सिंह के मुँह में हिरण स्वयं आकर प्रवेश नहीं करता। संसार में भले-बुरे का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा प्रकाश और छाया का। अदृष्टवाद जिस तरह जातीय दौर्बल्य, निश्चेष्टता और अवनति का कारण हो रहा है उसी तरह अदृष्ट आलसियों के लिए, और उनके लिए, जो उद्यम करके भी किसी गूढ़ कारण के द्वारा या अनभिज्ञता दोष से सफलता को प्राप्त नहीं होते, शान्ति का कारण होता है। अदृष्टवादियों के लिए अदृष्ट से शान्ति और सहिष्णुता मिलती है। अप्रवाहित जलाशय का पानी जैसे क्रम क्रम से दूषित और अहितकर होता है वैसे ही स्वाभाविक शान्तिप्रिय जाति के अंश में अदृष्टवाद बड़ा ही हानिकारक हो रहा है। संसार की सभी उन्नत जातियों ने अदृष्ट को तुच्छ कह

कर पुरुषार्थ को प्रधान माना है। जो नितान्त अदृष्टवादी हैं वे उन पुरुषार्थवादियों के अनुग्रह की छाया में आश्रय ले रहे हैं। दुःख, दारिद्र्य उनके पीछे पीछे घूम रहा है फिर भी अदृष्ट-वाद से पराङ्मुख हो कर वे पुरुषार्थवाद के पक्ष में नहीं आते। एक ओर अदृष्टवादी लोग बैठे बैठे भविष्य की गणना और अदृष्ट के फलाफल का विचार कर रहे हैं और दूसरी ओर उद्योग-शील पुरुषार्थी लोग दिन दिन ऋद्धि वृद्धि करके सुयश फैला रहे हैं। इसी से एडवर्ड डेनिसन ने कहा है" भविष्य को जानना गुणवत्ता नहीं है किन्तु उसके लिए उद्यत होना ही गुणवत्ता है।"

पहले कहा जा चुका है कि कितने ही उद्यमशील युवक दो तीन बार अकृतकार्य होने से अदृष्ट को दोष देकर उद्योग से मुँह फेर लेते हैं। किन्तु जो लोग अदृष्ट के ऊपर अपने को पूरा निर्भर नहीं करते वे विफल-प्रयत्न होने पर भी सहसा उद्योग से विमुख नहीं होते। जो लोग अकृतकार्य होने पर भी उद्योग करना नहीं छोड़ते वे किसी न किसी दिन कृतकार्य हो ही जाते हैं। बार बार अकृतकार्य होने पर भी मिट्टी के बर्तन का आदि-रचयिता प्यालिसी सोलह वर्ष तक साहस-पूर्वक अपने व्यवसाय में लगा रहा तब कहीं उसका अभीष्ट सिद्ध हुआ। जो तुरन्त ही हिम्मत हार देता है उसके हाथ से कभी कोई काम पूरा नहीं हो सकता। बार बार की विफलता से साहसी पुरुष कभी हतोत्साह नहीं होते बल्कि विफलता से उनकी बुद्धि उत्तरोत्तर परिष्कृत होकर सफलता का मार्ग बतलाती है। ज्ञानी लोग अकृतकार्य होने पर काम को

असम्भव कह कर अथवा अपने भाग्य को खोटा कह कर साहसहीन नहीं होते। सफलता न होने पर वे अपनी त्रुटि को ही दोष देते हैं और जिस त्रुटि के कारण उनको सफलता प्राप्त नहीं होती उससे बचकर फिर काम करने लग जाते हैं। प्रत्येक बार की असिद्धि परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के बराबर है। जैसे प्रमाण से अधिक भूल करने से कोई परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होता वैसे ही किसी काम में प्रमाणाधिक भूलें करने से कोई कृतकार्य नहीं हो सकता। जिस तरह परीक्षा में अनुत्तीर्ण छात्र अपनी भूल को ढूँढ़ कर अपना दोष स्वीकार करते हैं और परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए परिश्रम करते हैं, उसी तरह हर एक अकृतकार्य व्यक्ति को अपनी भूल स्वीकार करके कार्य-सफलता के लिए फिर परिश्रम करना चाहिए। जो दत्तचित्त होकर श्रम करते हैं उनका श्रम प्रायः व्यर्थ नहीं होता। खटुरिया (गाँव) के रहने वाले स्वर्गीय हरिश्चन्द्र दत्त एक धनवान् व्यक्ति थे। उन्होंने ग्राम्य पाठशाला में कुछ थोड़ा सा लिखना-पढ़ना सीख कर दस वर्ष की उम्र में अपने पिता के वाणिज्य-कार्यालय में प्रवेश किया। वे पाँच वर्ष कारबार की शिक्षा प्राप्त कर सोलह वर्ष की उम्र में स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवसाय करने लगे और अपना कार्यकौशल दिखा कर पिता के विश्वासपात्र बन गये। थोड़े ही दिनों में उन्होंने पिता के काम को पूर्ण रूप से सँभाल लिया। बारह वर्ष के व्यवसाय में उन्होंने दो लाख रुपयों का मुनाफ़ा कर दिखाया।

एक बार वे पाश्चात्य देश से साठ हज़ार रुपये का सौदा जहाज़ पर लादे लिये आ रहे थे। दैवात् जहाज़ डूब जाने से उनका साठ हज़ार रुपया पानी में मिल गया। इधर तीन चार वर्ष के भीतर और भी अनेक दुर्घटनायें हुईं। उनकी माँ मर गई, भाई मर गया, ज़मींदारी के सम्बन्ध में बहुत दिनों तक मुक़द्दमा लड़ना पड़ा। आख़िर ज़मींदारी भी बिक गई। पिता-माता के श्राद्ध में और बेटे-बेटी के ब्याह में कुछ अधिक खर्च करना पड़ा। इन अनेक कारणों से उनके पास एक पैसा भी न रहा। उनकी अवस्था बिलकुल सामान्य हो गई। ऐसी हालत में कितने ही लोग, विशेषतः अदृष्टवादी, हतोत्साह होकर अपने जीवन में फिर उन्नति का मुँह नहीं देखते। किन्तु उद्यमशील साहसी हरिश्चन्द्र व्यवसाय के द्वारा फिर लक्ष्मी की कृपा प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली बने। उनकी प्रथम अवस्था में कृतकार्यता, जीवन के मध्यकाल में अपरिमित व्यय-जनित दरिद्रता और जीवन के शेष भाग में उद्योग के द्वारा फिर लक्ष्मी की प्राप्ति—यह सब उनके अपने किये का फल था, उनके अदृष्ट का परिणाम न था।

अपने को आप ही ठगना

यह बात सुनकर शायद तुम हँसोगे कि कोई अपने को आपही कैसे ठगेगा? ऐसा कभी हो सकता है? अपनी आँखों में भला कोई आपही कैसे धूल झोंकेगा? किन्तु यदि तुम ध्यान देकर विचारोगे तो प्रत्यक्ष देख पड़ेगा कि हम लोगों ने आपही

अपनी आँखों में कई बार धूलि झोंक करके कष्ट पाये हैं और बार बार अपनी वञ्चना पर अनुताप किया है। ऐसे कितने ही लोग हैं जो अपने को आपही ठग कर पीछे पछताते हैं। उन्हें क्या यह मालूम नहीं होता कि वे अपने को ठग रहे हैं? मालूम क्यों नहीं होता। वे जान बूझ कर ही ऐसा जघन्य काम करते हैं। मान लो. यज्ञदत्त एक नवयुवक आत्मप्रतारक है। उसके मन में कोई एक काम करने की वासना उत्कट रूप से जाग्रत हो उठी है। आज तक बड़े बूढ़ों के मुँह से जो कुछ उपदेश वह सुन चुका है और पुस्तकों में जो बार बार पढ़ चुका है उसके द्वारा तथा अपनी बुद्धि और विवेक के द्वारा भी वह समझ रहा है कि वह काम मेरे लिए हानिकारक है। किन्तु उस काम को वह इतनी लोलुप दृष्टि से देख रहा है और उस काम के करने के लिए उसकी ऐसी प्रबल इच्छा हो रही है कि वह अनेक प्रकार की युक्तियों और तर्क के द्वारा अपने मन को समझा रहा है कि इस काम के करने में कोई पाप या हानि नहीं है। वह अपने मन को यह कह कर सन्तोष देना चाहता है कि ऐसा काम तो समाज के कितने ही बड़े बड़े नामी व्यक्ति किया करते हैं, कितने ही प्रतिभासम्पन्न गण्य मान्य व्यक्ति भी इस काम से बचे हुए नहीं हैं। जो काम अनेक बड़े लोगों के द्वारा किया जा चुका है उसके करने में दोष ही क्या! इस प्रकार वह मन को अनेक युक्तियों से समझाने की चेष्टा करता है कि जो काम मैं करना चाहता हू वह अकर्तव्य नहीं है। इसी को आत्मवञ्चना कहते

हैं। इस प्रकार आत्मप्रतारणा करके कितने ही स्त्री-पुरुष कुपथ-गामी हुए हैं और दिन दिन हो रहे हैं। किन्तु जब उसका दुर्विपाक हाथ आता है तब उनकी आँखें खुलती हैं और अपने ही को अपने पतन का कारण जान कर वे पछताते हैं और जब तब आँसू बहा कर अपने हृदय की ज्वाला को शान्त करते हैं। और बहुत लोग ऐसे भी हैं जो किसी तरह अपनी भूल स्वीकार नहीं करते। मन ही मन वे अपनी भूल समझ कर भी अदृष्ट की दुहाई देते हैं और लोगों के निकट अपने को निरपराध प्रमाणित करना चाहते हैं। ऐसे लोग अपनी ही आँखों में क्या समाज के नेत्रों में भी धूल झोंकते हैं। आत्म-प्रतारकों में इनका नम्बर सब से ऊपर है।

कितने ही व्यवसायी अनेक विघ्न-बाधाओं के कारण उन्नति नहीं कर सकते। कोई ख़राब माल को अधिक दर से बेचने, कोई असत् उपाय से व्यापार चलाने और कोई कठोरभाषी होने के सबब उन्नत दशा में पहुँच नहीं सकते। कोई परिणामदर्शिता और कार्य्यकुशलता के अभाव से और कोई असहिष्णुता के दोष से बनज-व्यापार में घाटा सह कर दिन दिन हीन दशा को प्राप्त होते हैं। यहाँ तक कि वे अन्त में दरिद्रता के ही पात्र बन जाते हैं। इतने पर भी उन्हें अपनी भूल नहीं सूझती और सूझने पर वे उसके संशोधन का प्रयत्न भी नहीं करते। वे केवल ग्राहकों को, देश को और आईन-क़ानून को तथा सर्वोपरि अदृष्ट को दोष देकर धैर्य्य धारण करते हैं। जैसे उन्हें दूसरों के आगे अपना

दोष स्वीकार करने का साहस नहीं होता, उसी तरह अपने विचार के सामने भी अपना दोष स्वीकार करते उन्हें संकोच और भय होता है। जो विद्यार्थी परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते हैं उनके मुँह से अक्सर सुना जाता है कि "इस साल के प्रश्न बड़े ही कठिन थे, मैंने तो प्रश्नों का उत्तर बहुत ठीक लिखा था, तब मैं परीक्षा में उत्तीर्ण क्यों न हुआ–यह ईश्वर जाने। जवाब अच्छा देने ही से क्या होगा! परीक्षक केवल अक्षर देख कर ही नम्बर देते हैं।" इस प्रकार कोई प्रश्न को, कोई परीक्षक को, कोई शिक्षक को और कोई भाग्य को दोष देंगे किन्तु यह कहने का उन्हें साहस न होगा कि "हमारे ही दोष से ऐसा हुआ"। दूसरों के दोष देखने के लिए लोग जिस तरह तत्पर रहा करते हैं, दूसरों के दोषों पर अपना मन्तव्य प्रकाश करने में जिस तरह की पटुता दिखलाते हैं, दूसरों के दोषों की समालोचना में जिस तरह समय बिताते हैं और आनन्द पाते हैं, दूसरों के दोष को फैलाने के लिए जैसा कुछ साहस करते हैं, उस तरह यदि अपने दोषों पर दृष्टि देते, अपनी त्रुटि स्वीकार करके उसके संशोधनार्थ थोड़ी भी तत्परता दिखलाते और अपना दोष प्रकाश करने में संकोच न करते तो समाज आज ऐसी अधोगति में न पहुँचता। जो लोग अपना दोष स्वीकार नहीं करते, अपने दोषों का संशोधन नहीं करते, और अपने को दोषों से बचाने का साहस नहीं करते यथार्थ में वे ही अपनी आत्मा को प्रतारित कर पीछे पछताते हैं। यह आत्मप्रतारणा जैसे अन्यान्य कामों में अधःपात का

कारण होती है वैसे ही यह व्यापारियों की उन्नति के मार्ग में कण्टकस्वरूप बन कर उनके सर्वनाश का कारण बनती है। यह उन सौदागरों को सिर्फ़ निर्धन बना कर ही नहीं छोड़ती बल्कि उनके मन का सम्पूर्ण उत्साह, उनके हृदय का सारा साहस और सद्भाव भी हरण कर लेती है। यहाँ तक कि शरीर को निर्बल और शक्ति-हीन बना डालती है। आत्मप्रतारक व्यक्ति चरित्र-हीन दीन की तरह दूसरों का गलग्रह होकर अर्थात् मुँहताज बन कर बड़े कष्ट से जीवन का भार वहन करते हुए इस संसार से किसी दिन बिदा हो जाते हैं। उनके लिए कोई एक बूँद आँसू तक नहीं गिराता। बल्कि लोग यही कहा करते हैं कि "अमुक व्यक्ति अपनी नासमझी के कारण ही नष्ट हुआ"। कोई कोई गम्भीर भाव से कहते हैं, वह अपनी करनी से आप ही डूबा: आपही क्यों, अपने समस्त परिवार को भी डुबाता गया।

आत्मप्रतारक व्यक्तियों का परिणाम कभी कभी इससे भी अधिक भयङ्कर हो जाता है। इसलिए आत्मप्रतारणा के फन्दे में न फँस कर सर्वदा अपनी रक्षा करते रहना चाहिए।

उद्योग

"उद्योगेन हि सिद्ध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः"

बम्बई के अन्तर्गत नौसारी नगर में सन् १८३९ ईसवी में ताता का जन्म हुआ। ताता जब तेरह वर्ष के हुए तब विद्या पढ़ने के लिए स्कूल में भरती हुए। तदनन्तर १८५७ ईसवी में एलफिन-

स्टन कालिज में उन्होंने नाम लिखाया। इस कालिज में चार वर्ष शिक्षा पाकर उन्नीस वर्ष की उम्र में वे वाणिज्य शिक्षा के लिए अपने पिता की कोठी का काम देखने-भालने लगे और इसी उम्र में उन्होंने तिजारत के लिए चीन की यात्रा की। वे चार वर्ष चीन में रह कर १८६३ ईसवी में बम्बई लौट आये। इन महोत्साही युवक के उद्योग से जापान, हाङ्काङ्, सङ्घाई, पैरिस और न्यूयार्क में कोठियाँ स्थापित हुईं। लन्दन में भारतीय बैंक न रहने के कारण भारतवासियों को वाणिज्य करने में दिक्कतें झेलनी पड़ती थीं और भी कई तरह की असुविधायें होती थीं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए वहाँ "इण्डियन बैंक" स्थापन करने की इच्छा से १८६५ ईसवी में वे लन्दन गये। किन्तु इस साल रुई के कारबार में उनके पिता का सर्वस्वान्त हो गया। इसी से वे बैंक स्थापित न कर सके। इतने बड़े महाजन एकाएक इस प्रकार आपत्ति में फँस जायँ तो फिर उनका कारबार सँभलना असम्भव हो जाता है। किन्तु जो साहसी, उत्साही, सत्यप्रिय, पुरुषार्थशील और व्यवहारकुशल हैं वे विपद् से नहीं डरते। भारी से भारी विपत्ति आ पड़ने पर भी वे धैर्य्यच्युत नहीं होते। वे अदृष्ट की दुहाई देकर अपराधमुक्त होना नहीं चाहते। वे एक सुयोग में कृतकार्य्य न होने पर चुपचाप बैठ नहीं रहते, दूसरा सुयोग ढूँढ़ते हैं। बार बार क्षतिग्रस्त और आपद्ग्रस्त होने पर भी व्यवसाय को नहीं छोड़ते, बल्कि प्रत्येक बार की विफलता से वे शिक्षा ग्रहण करते हैं और

भविष्य के लिए सतर्क हो जाते हैं। सुयोग पाकर ताता और उनके पिता ने अबसीनिया की लड़ाई में कतिपय वस्तुएँ भेजने का ठेका लेकर बहुत लाभ उठाया, जिससे उनकी दीनता जाती रही।

बम्बई शहर के एक तरफ़ की भूमि बहुत नीची थी। उसमें समुद्र का जल आने के कारण वह उपसागर—खाड़ी—सी हो गई थी। उसका नाम "व्याक की खाड़ी" था। मुद्दत से इस खाड़ी को लोग देखते आते थे। किन्तु इस खाड़ी के द्वारा विशेष धन प्राप्त हो सकता है, यह सब के ध्यान में नहीं आता था। दूरदर्शी, बुद्धिमान्, व्यवसाय-कुशल, उद्योगशील ताता ने सोचा कि इस खाड़ी को पाट कर यदि वहाँ मकान बना कर कल-कारखाने स्थापित किये जायँ तो विलक्षण लाभ हो सकता है। किन्तु उन्होंने देखा कि यह काम अकेले हमसे न हो सकेगा। अतएव वह झट पट एक कम्पनी गठित कर थोड़े ही परिश्रम से कृतकार्य्य हुए। उसके द्वारा उन्होंने बहुत धन पैदा किया। इसके पहले कितने ही लोगों ने इस काम में हाथ डाला था, किन्तु उचित उद्योग के अभाव से वे लोग सफलता नहीं प्राप्त कर सके, बल्कि कितने ही तो इस धुन में अपना सर्वस्व तक खो बैठे थे।

ताता विलायत जाकर वहाँ की शिल्पकारी और वैज्ञानिक कारख़ाना देख कर समझ गये कि कल की बराबरी हाथ नहीं कर सकता। जो काम हाथ के द्वारा घण्टों में भी नहीं हो सकता

वह कल के द्वारा बात की बात में हो जाता है। हाथ से काम न लेकर यदि कल से काम लिया जाय तो थोड़ी ही देर में बहुत काम हो जा सकते हैं। कल का कारख़ाना खोलने से सैकड़ों श्रमजीवियों को भर पेट खाने को अन्न मिलेगा। कल से बनी हुई चीज़ों को थोड़े दाम पर बेचने से भी अधिक लाभ होना सम्भव है। इसके अतिरिक्त अपने देश के असंख्य नर-नारियों का दारिद्र्य-मोचन हो सकता है। उन्होंने भारत में कई करोड़ मनुष्यों के परिधेय वस्त्रों का प्रयोजन समझ कपड़े का कारख़ाना खोलने का विचार किया। किन्तु मैशीनें ख़रीद लेने ही से क्या हो सकता था? किस तरह से मैशीन चलाई जाती है, इसका जानना भी बहुत ज़रूरी था। यह सोच कर उन्होंने पहले कल चलाना सीखा और उसके सम्बन्ध की सब बातें भली भाँति समझ लीं। तदनन्तर इस शिक्षा के फलस्वरूप सन् १८७४ ईसवी में नागपुर में एम्प्रेस मिल* नाम से एक कपड़े की मिल स्थापित हुई। भारत में उस समय जितने कल-कारख़ाने थे उन सबों में यह कारख़ाना श्रेष्ठ गिना जाने लगा। देशहितैषी ताता का इसके द्वारा देश का हितसाधन करना ही मुख्य उद्देश्य था।

एक बार एक युरोपियन कम्पनी ने जहाज़ का भाड़ा बहुत ज़्यादा बढ़ा दिया। ताता ने उसका प्रतिवाद किया और जब

---

*एम्प्रेस मिल का संक्षिप्त विवरण "श्रमविभाग और साझे का कारबार" शीर्षक परिच्छेद में लिखा गया है।

देखा कि प्रतिवाद का कुछ फल न हुआ तब उस कम्पनी से सम्बन्ध तोड़ कर दूसरी कम्पनी के जहाज़ पर माल ले जाने का प्रबन्ध किया और उस कम्पनी के साथ वाक्यबद्ध हुए कि हम अब दूसरी किसी कम्पनी को माल न देंगे। इस कारण पहली कम्पनी के साथ ताता का भारी झगड़ा बढ़ा। इस झगड़े में कम्पनी को बदनामी के साथ ही साथ क्षति भी सहनी पड़ी और ताता को भी अधिक रुपया खर्च करना पड़ा। हज़ार कोशिश करने पर भी वह कम्पनी ताता को अपने क़ाबू में न ला सकी और न उन्हें उनकी प्रतिज्ञा से ही विचलित कर सकी। आख़िर तुमुल वाग्युद्ध के बाद कम्पनी को जहाज़ का भाड़ा कम करने और उनके साथ सन्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। ताता का सत्साहस, सत्यनिष्ठा और अविचल उद्यम बड़ा ही प्रशंसनीय था। इन असाधारण गुणों के ही द्वारा वे जगत्प्रसिद्ध हुए। उनका उद्योग केवल बनज-व्यापार बढ़ाने या अधिक धन संचय करने अथवा यथेच्छ सुख प्राप्त करने ही के लिए न था। उन्होंने अपने उद्योग से जो प्रचुर धन प्राप्त किया था वह लोगों के उपकारार्थ बड़ी उदारता के साथ दान कर दिया। देशोपकारार्थ उन्होंने जो बहुत सा दान किया है उसमें वह अनन्य साधारण दान उनकी महानुभावता का विशेष परिचायक है जो वे भारतवर्ष में विशेष रूप से विज्ञान के प्रचारार्थ गवर्नमेंट को सौंप गये हैं। वे कुछ दिन और जीते रहते तो देश का और भी अधिक उपकार कर जाते। वाणिज्य व्यवसाय में

अनेक प्रकार के विघ्न होने पर भी धीर वीर की तरह विपत्ति को पराभूत करके जो उन्होंने गई हुई लक्ष्मी को फिर लौटा लिया था और सिंह की भाँति पराक्रम कर अपने अधिकार को दृढ़ कर रक्खा था, इसका एक मात्र कारण उनका पुरुषार्थ ही था। उन्होंने दैव के भरोसे पर कभी कोई काम निर्भर नहीं किया। ताता एन्ड कम्पनी नाम से कई जगहों में स्थापित उनके कारखाने, अलेकजेन्ड्रा मिल्स, एम्प्रेस मिल्स, स्वदेशी मिल्स, इंडियन स्टीम शिपकम्पनी, मैसूर में रेशम की तिजारत आदि अनेक देशोपकारी कार्य महा उद्यमी ताता के नाम को चिरस्मरणीय रक्खेंगे।

समृद्धिशाली पुरुषों की वीरता

तुम्हें यदि कोई कायर कहे, अथवा डरपोक कहे तो क्या तुम अपना अपमान न समझोगे? ज़रूर तुम अपनी हीनता समझोगे और तुम्हारे सम्मान में इस बात से ज़रूर धक्का लगेगा। कायरपन या भीरुता का तुमने कौन सा काम किया है, यह तुम्हें उस समय शायद ढूँढ़ने से भी न मिलेगा। बल्कि उस समय तुम इन बातों को याद करने लगोगे कि कब हमने किस साहस का काम किया है, किस दिन भूत का भय न करके अँधेरी रात में अकेले किसी श्मशान के पास होकर आये थे, किस दिन हमने अपने प्रतिद्वन्द्वी को हराया था, अथवा किस दिन तैर कर नदी

के पार हो गये थे। कितने ही उजड्ड दुर्बोध विद्यार्थी उस समय अपने उस साहस और वीरता की बात याद करेंगे जो कभी उन्होंने अपने शिक्षक के साथ निडर होकर अशिष्टता का कोई व्यवहार करके की थी। किन्तु इन बातों में वीरता का एक भी लक्षण नहीं पाया जाता। शरीर अधिक बलिष्ठ होने ही से कोई अपने को वीर नहीं कहलवा सकता। युद्ध में तुम असंख्य सेना का शिरश्छेद कर सकते हो, शिकार में बड़े बड़े बाघों को मार सकते हो, दंगल में बड़े से बड़े पहलवान को पछाड़ सकते हो तो भी तुम में जब तक हम सच्चे वीर का लक्षण न देखेंगे तब तक तुम्हें वीर न कहेंगे। यदि तुम अपने चित्त के वेग को रोक नहीं सकते तो हम यही समझेंगे कि तुम तो खुद हारे हुए हो, दूसरे को क्या हराओगे? जब तुम अपने को आप ही नहीं दबा सकते तो दूसरे को क्या दबाओगे? जो शत्रु तुम्हारी आँखों के सामने है, माना कि उसे तुम नाना प्रकार के अस्त्र और तरह तरह के कौशल से अपने क़ब्जे़ में ला सकते हो किन्तु जिस शत्रु को तुम देख नहीं सकते, जिसे छू तक नहीं सकते, जो अदृश्य है और अस्पृश्य है और छिपे छिपे तुम्हारा सर्वनाश कर रहा है, जो शत्रु तुम्हें बहका कर अनेक कुमार्गों में घुमाये फिरता है और जिसने तुम्हें इस तरह अपने क़ब्जे़ में जकड़ रक्खा है कि तुम्हें साँस लेने का अवकाश तक नहीं देता; जो तुम्हारे ज्ञान, बुद्धि, विवेक का द्वार बन्द करके मायावी महिरावण की भाँति तुम्हारा परमहितैषी बन्धु बन कर तुम्हें सर्वदा मोहाच्छन्न करके रखना

चाहता है, उस अत्यन्त प्रबल हृदयमन्दिरस्थ शत्रु को दबाने के लिए तुम क्या उपाय कर रहे हो? उसने सम्पूर्ण रूप से तुम पर प्रभुत्व जमा कर तुम्हें अपना सेवक बना रक्खा है और वह भाँति भाँति के नाच नचा रहा है। क्या तुमने कभी इस बात पर ध्यान दिया है? तुम अच्छी तरह जानते हो कि ख़ूब तड़के उठने से तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, पढ़ने का सुभीता होगा और सभी काम समय पर सम्पन्न होंगे। तुम बड़े सवेरे उठना चाहते भी हो, किन्तु तुम्हारा एक प्रबल शत्रु, आलस्य, बिछौने से उठने नहीं देता मानो उसने चारपाई से तुम्हें बाँध रक्खा है। तुम बार बार उठने की कोशिश भी करते हो पर तुमसे उठा नहीं जाता। जब तक दया करके वह तुम्हें छोड़ न देगा तब तक तुम बराबर पड़े रहोगे। तुम्हारा सामर्थ्य नहीं कि उसे पराभूत कर उठ खड़े होओ। जब तुम एक आलस्यरूपी शत्रु को नहीं जीत सकते तब तुम वीरता का और काम ही क्या करोगे! भारत के परम विख्यात अध्यापक प्रफुल्लचन्द्र राय महाशय शरीर अस्वस्थ रहने पर भी जैसे आलस्यहीन बने रहते थे, क्या तुम स्वस्थ सबल शरीर लेकर भी उनके समान फुर्तीले हो सकोगे? उन्हें अजीर्ण (बदहज़मी) रोग तो था ही उस पर नींद न आने का कष्ट भी उन्होंने बहुत दिन तक सहा। चिकित्सक के बारंबार मना करने पर उन्होंने रात में वैज्ञानिक विषय का अनुशीलन करना छोड़ा। वक़्त की पाबन्दी रहते हुए भी वे अपने कर्तव्य-साधन में कभी आलस्य नहीं करते, कठिन से भी कठिन कामों को करही डालते

हैं। वे आवश्यक उचित कामों से कभी नहीं डरते, क्योंकि वे आलस्यरहित और उद्योगी पुरुष हैं। वे अपने कर्तव्य को नियम-पूर्वक ठीक समय पर किया करते हैं। जो कर्तव्यशील हैं क्या उनके साथ आलस्य कभी शत्रुता कर सकता है? उनके डर से वह कोसों दूर भागता है। प्रफुल्ल बाबू प्रतिदिन प्रातःकाल दो घण्टे नियमित रूप से विद्या-व्यवसाय में बिताते हैं। ग्यारह बजे दिन से चार बजे तक पाँच घण्टे कालिज में वैज्ञानिक नूतन आविष्कार की खोज में व्यतीत करते हैं। पिछले पहर खुली हवा में कुछ देर इधर उधर घूम फिर कर सन्ध्या के बाद डेढ़ घण्टे तक सरल साहित्य का अवलोकन करते हैं। छुट्टी के दिनों में भी वे ठीक इसी नियम के अनुसार अपना काम करते हैं।

कर्मवीर स्वर्गीय आनन्दमोहन वसु ने अपने जीवन में कभी आलस्य को आश्रय नहीं दिया। वे अपने इस मनुष्यजीवन को ईश्वर की दी हुई धरोहर की तरह समझते थे और कहते थे कि "उसका सद्व्यवहार न करने से पाप होता है। जैसे राजदर-बार के दरबान का मन एक घण्टे के आलस्य वा असावधानी के कारण उद्विग्न हो उठता है और मुँह म्लान हो जाता है उसी तरह अपने कामों में आलस्य वा असावधानी पर सबको पछताना चाहिए और सर्वदा आलस्यहीन होकर ठीक समय पर अपने सभी कामों को सम्पन्न करने का ध्यान रखना चाहिए"। आनन्द-मोहन वसु महाशय जीवन को इसी प्रकार बिताना उचित समझते थे। क्या तुम उनके सिद्धान्त पर चल सकोगे?

खूब सवेरे न उठने से कोई अपने कामों के सिलसिले को ठीक नहीं रख सकता। संसार में जितने कर्मवीर हुए हैं और जो अपनी चेष्टा और अध्यवसाय से विख्यात हुए हैं वे सभी कुछ रात रहते ही उठ बैठते थे। उन लोगों के चरित्रबल के सम्मुख आलस्य ठहर ही नहीं सकता था। बेंजमिन फ्रैंक्लिन, फ्रेडरिक दी ग्रेट, सर वाल्टर स्काट आदि जगद्विदित समृद्धिशाली व्यक्ति दो घड़ी रात रहते ही उठते थे। वे लोग प्रातःकाल उठने के अनेक लाभ बतला गये हैं। प्रातःस्मरणीय राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय अपने कर्तव्य-पालन में वीरता का जो परिचय दे गये हैं वह और लोगों के लिए दुर्लभ है। वे केवल आलस्य ही को न जीते हुए थे: प्रत्युत लोभ, विलास-प्रियता, स्वार्थपरता, द्वेष और अहङ्कार आदि जितने अदृष्ट शत्रु हैं, कोई भी उनके सामने ठहरने का साहस नहीं करता था। जो समृद्धिमान् पुरुष हैं उनकी वीरता का यही अतुल प्रताप है। वास्तव में वीर पुरुष वही हैं जो इन अदृश्य शत्रुओं के वशवर्ती नहीं होते। क्या तुम इन आदर्श-पुरुषों की जीवनी को सामने रख कर अपने को परिचालित कर सकोगे ? किन्तु तुम में वह उद्योग, वह कष्टसहिष्णुता और स्वार्थत्याग कहाँ? जब आलस्यरूपी शत्रु तुम्हें घेर लेता है तब कर्तव्य-बुद्धि तुम्हें यह कह कर उत्तेजित करती है कि "क्या तुम मर्द नहीं हो ? क्या तुम वीर कहला कर लोगों में परिचित होने के अभि-लाषी नहीं हो ? क्या आरोग्य लाभ कर प्रसन्न मन से दिन

बिताना तुम्हें पसन्द नहीं? नींद से छुटकारा पाकर क्या आलस्य में पड़े हो? अभी उठ बैठो, जहाँ तुम चारपाई से उठ खड़े हुए कि आलस्य आपही भाग जायगा, उसके भगाने के लिए तुम्हें अस्त्र-शस्त्र का प्रयोजन न पड़ेगा"। इस प्रकार बुद्धि के द्वारा समझाये जाने पर तुम देह की समस्त शक्ति को इकट्ठा कर करवट बदलते हो और मनही मन संकल्प करते हो कि घड़ी भर के भीतर ही उठेंगे। यही एक घड़ी का अवसर पाकर आलस्य अपने प्रबल मोहास्त्र के द्वारा तुम्हें अभिभूत करके, अनुगत सेवक की तरह, तुम्हारे ही मुँह से कहला देता है कि "आज थोड़ी देर और आराम कर लेता हूँ, कल से ज़रूर ही इसके पहले उठूँगा।" आलस्यप्रिय युवकगण! यही तुम्हारी वीरता है। क्या इसी वीरता पर तुम कर्मक्षेत्र में उच्च आसन पाने का अभिलाष रखते हो? एक प्रसिद्ध कर्मवीर की उक्ति पर सबको ध्यान रखना चाहिए। वह कहता है,—मैं जभी समझता हूँ कि मेरे उठने का ठीक समय हो गया तभी झटपट चारपाई पर से उछल कर नीचे खड़ा हो जाता हूँ। आलस्य डर के मारे न मालूम कहाँ भाग जाता है।

कितनी ही जगह ऐसी हैं जहाँ पर जाना मना है। कितने ही ऐसे काम हैं जो करने योग्य नहीं। तुम स्वयम् उन बातों को निषिद्ध कहा करते हो, किन्तु तुम्हारी प्रवृत्ति ऐसी प्रबल है कि तुम्हें उस तरफ़ खींच कर ले जाती है। तुम्हारी क्या मजाल कि उस दुर्दम्य प्रवृत्ति के हाथ से अपने को छुड़ा कर तुम

नीतिपथ पर चल सको ? तुम्हारा सभी साहस, सारी शक्ति इस प्रवृत्ति के आगे बेकार हो जाती है, यही तो तुम्हारी वीरता है। क्या इसी वीरता के बल पर तुम व्यवसायी बनोगे ? क्या इसी बिरते पर तिजारत करके तुम लक्ष्मीवान् बनने की लालसा कर रहे हो ? क्या इसी वीरता के भरोसे तुम ऋद्धि प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हुए हो ? जब तक तुम सच्ची वीरता धारण न करोगे तब तक कृतकार्य्य न हो सकोगे। जिस रीति से जो काम करना चाहिए उसी रीति से करने पर वह सफल हो सकता है। अयुक्त रीति से कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता। बेहद परिश्रम करके भी कोई कामयाबी हासिल नहीं कर सकता। प्रमाण से अधिक श्रम करने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। स्वास्थ्य बिगड़ने पर काम ज्यों का त्यों पड़ा रह जाता है अथवा नष्ट हो जाता है। जो लोग अमानुषिक परिश्रम करते हैं अथवा ख़ूब लम्बे चौड़े डील डौल से विशेष बल का काम कर दिखाते हैं, संसार के लोग प्रायः राक्षस के साथ उनकी तुलना करके कहते हैं—"अमुक व्यक्ति काम करने में राक्षस को भी मात करता है। अमुक व्यक्ति बल में राक्षस को भी जीते हुए है"। किन्तु इस आसुरी साहस या आसुरिक बल से ऋद्धिप्राप्ति-सम्बन्धी कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता। जब तुम देव-बल प्राप्त करोगे, सात्विक वृत्ति का अवलम्बन करोगे, तब तुमको अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होगी। देवता और असुर दोनों मिल कर जब समुद्र मथने लगे तब अनेक दुर्लभ रत्नों के साथ महा-

लक्ष्मी भी निकली थी, किन्तु लक्ष्मी का एक मात्र अधिकार देवाधिदेव महापुरुष विष्णु को ही प्राप्त हुआ।

"वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः" यह एक प्रचलित वाक्य है। पाश्चात्य देश वाले इस समय जिस विज्ञान-बल से समुद्र मथन करके देशदेशान्तर में बनज-व्यापार करते हैं और जिन गुणों के बल पर लक्ष्मी प्राप्त करके घर लौटते हैं उन गुणों को प्राप्त करने के लिए क्या तुम कभी कुछ प्रयत्न करते हो ? वाणिज्य-व्यवसाय के कामों में पूरी सफलता प्राप्त करके जो लोग बड़े बड़े धनाढ्य हो गये हैं उनका स्वभाव कैसा था ? यह उनकी जीवनी पढ़ने से तुम्हें ज्ञात होगा। उन लोगों के स्वभाव में क्या विशेषता थी, इस पर तुमने कभी ध्यान दिया है ? वे लोग कैसे उच्चाभिलाषी, साहसी, परिश्रमी, कष्टसहिष्णु, मितव्ययी, सत्यनिष्ठ, समयनिष्ठ और नियमनिष्ठ थे, इन बातों पर कभी विचार किया है ? उन लोगों के साहस और शक्ति के सामने क्या प्रकट, क्या गुप्त सभी शत्रु मुँह छिपाये रहते थे। वे अपने सङ्कल्प में सर्वदा दृढ़ बने रहते थे। उन लोगों ने उच्च आदर्श को सामने रख कर आलस्य, विलास-प्रियता, ईर्ष्या, द्वेष आदि अन्तःशत्रुओं और प्रतियोगिता, बाधा-विघ्न विपत्ति आदि बाहरी शत्रुओं के साथ निर्भीक भाव से सच्चे वीर की तरह लड़ कर विजय प्राप्त किया था। ऐसे व्यवसायियों को बेशक किसी तरह बाधित नहीं कर सकते। इस युद्ध में विजय प्राप्त कर कितने ही अकिञ्चन व्यक्ति लक्षपति हो गये हैं; समाज के छोटे से भी छोटे व्यक्ति समाजपति

हो गये हैं और कितने ही अगण्य बालकों ने सभ्य समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

स्वास्थ्य और ऋद्धि

" धर्मार्थ काममोक्षाणां शरीरं साधनं परम् "

" एक तन्दुरुस्ती हजार न्यामत "

"धन का मूल श्रम है और श्रम का मूल स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की स्थिति दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति पर अवलम्बित है। सभी उन्नतियों के लिए विघ्नस्वरूप अस्वस्थता ही है। ऋद्धि प्राप्त करने के पहले स्वास्थ्य सम्पन्न होना नितान्त आवश्यक है"।

लोग कहा करते हैं कि आरोग्य ही सच्चा धन है। सो लोगों का यह कहना झूठ नहीं है। मनुष्यों का आरोग्य ही वास्तविक धन है। जो लोग बराबर बीमार रहा करते हैं उनसे परिश्रम का कोई काम नहीं हो सकता। वे इच्छा रखते हुए भी कोई उद्यम नहीं कर सकते। जब उन्हें कोई काम करने का साहस नहीं, पुरुषार्थ नहीं, तब फिर उन्हें लक्ष्मी की प्राप्ति ही क्योंकर हो सकती है ? जो लोग धनवान् के घर में जन्म लेकर बाल्यकाल की कुशिक्षा से और युवावस्था के अत्याचार से अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं वे पूर्वसञ्चित धन को तो नष्ट करते ही हैं, इसके

सिवा धन उपार्जन करने में असमर्थ हो कर बहुत शीघ्र धनहीन भी हो जाते हैं। सुख-सौभाग्य से पले हुए धनी व्यक्ति के सुकुमार कुमार दरिद्रता के कठोर शासन में कब तक जीवित रह सकते हैं? दिन-रात शोच में डूबे रहने के कारण उनका स्वास्थ्य और भी बिगड़ता जाता है और शीघ्र ही उनकी आयु निःशेष हो जाती है। धन की अपेक्षा स्वास्थ्य का मूल्य अधिक है और स्वास्थ्य की अपेक्षा चरित्र मूल्यवान् है।

धन न रहा तो क्या हुआ जो तन रहा निरोग।
दुश्चरित्र तन रोगयुत मिटै सकल सुखभोग॥

स्वास्थ्यहीन मनुष्य इस अनुपम अमूल्य धन रूपी चरित्र को सुरक्षित रखने में भी असमर्थ होता है। कारण यह कि दैहिक दुर्बलता हृदय को कमज़ोर बना डालती है, हृदय की कमज़ोरी से कौन ऐसा बुरा काम है जो लोग नहीं कर सकते? हृदय की दुर्बलता से धार्मिक और सामाजिक नियमों का भी यथावत् पालन नहीं हो सकता। दुर्बल हृदय के मनुष्य, भीरुस्वभाव, स्वार्थ-परायण, पराश्रित, श्रमविमुख, अशिष्ट और छलकौशल से अपना काम चलानेवाले होते हैं। स्वास्थ्यहीन मनुष्य स्वभाव से ही आलसी और दीर्घसूत्री होते हैं। चक्रवर्ती राजा ही क्यों न हों, आलसी और दीर्घसूत्री होने से वे भी श्रीभ्रष्ट हो जाते हैं, दरिद्रों की तो कुछ बात ही नहीं। प्रजा के सबल और स्वस्थ न होने से सारा देश शक्तिहीन हो कर लक्ष्मी से रहित हो जाता है और दिन दिन रोगी, आलसी, दरिद्र, दुर्बल और अल्पायु लोगों

की संख्या बढ़ने लगती है। स्पेन में जो इतनी दरिद्रता फैली हुई है; स्पेन की प्रजा जो दिन दिन अकर्मण्य, आलसी और भिक्षोपजीवी होती जा रही है, उसका प्रधान कारण स्पेनवासियों की श्रमविमुखता ही है। स्पेनवासी परिश्रम करने में लजाते हैं, परन्तु भीख माँगने में उन्हें लज्जा नहीं आती।

मरक्को के सुलतान बड़े ही विलासप्रिय हैं। सुलतान हो कर वे एक घर से दूसरे घर में पैदल कैसे जायँगे, इसमें वे अपनी मानहानि समझते हैं। अतएव, बहुत धन खर्च कर, राजमहल में एक घर से दूसरे घर में जाने के लिए बिजली की गाड़ी और उसके लिए रास्ता बनाया गया है, उसी के द्वारा वे एक घर से दूसरे घर में जाते-आते हैं। उनकी यह सुकुमारता क्या उनके स्वास्थ्य को न बिगाड़ेगी? और उनकी देखादेखी क्या उनकी प्रजा आलसी और अकर्मण्य होना न सीखेगी?—"यथा राजा तथा प्रजा"।

आरोग्य की दृष्टि से धनवानों की अपेक्षा दरिद्रगण प्रायः अधिक सुखी हैं। सिड्नहम साहब ने कहा है—धनवान् लोग प्रमाण से अधिक भोजन करते हैं, प्रमाणाधिक पान करते हैं और बहुधा अपरिश्रमी होते हैं, इसीसे वे अकसर बात रोग से पीड़ित रहा करते हैं। और व्याधियों की अपेक्षा वात-व्याधि की प्रकृति विलक्षण है। यह जितना धनी लोगों को सताती है उतना ग़रीबों को नहीं। इस बीमारी ने कितने ही राजा, महाराजा, बड़े बड़े वीर सेनापति और वैज्ञानिक लोगों के जीवन-प्रदीप को बुझा दिया है।

इसके द्वारा प्रकृति मानो अपनी पक्षपात-शून्यता प्रदर्शित करती है। कारण यह है कि जिस पर वह एक प्रकार से अनुग्रह करती है उस पर दूसरे प्रकार से निग्रह की भी नज़र रखती है। धनी लोग गरिष्ठ भोजन से परितृप्त हो कर मन्दाग्नि रोग से पराभूत होते हैं, किन्तु दरिद्र लोग जो कुछ सूखा रूखा खाते हैं वह उन्हें अच्छी तरह पच जाता है। किसी समय एक भिखारी भूख से अत्यन्त व्याकुल होकर एक धनवान् के यहाँ भीख माँगने गया। उसने हाथ जोड़ कर धनवान् से कहा—"बाबा, मैं बड़ा भूखा हूँ, मुझे कुछ खाने को दो"। धनाढ्य व्यक्ति ने विस्मित होकर उत्तर दिया—"ओ भूखे, तेरी भूख की बात सुन कर हमें तरस आता है।" डाक्टर आवर्नैथी ने एक धनवान् को व्यवस्था दी थी कि "प्रति दिन एक शिलिंग से अधिक अपने खाने-पीने में खर्च न करो और वह शिलिंग मेहनत करके हासिल करो।" प्रकृति के सामञ्जस्य का यह अच्छा दृष्टान्त है कि दरिद्रगण अभाव के कारण जितना क्लेश पाते हैं, उनकी अपेक्षा धनवान् व्यक्ति धन की अधिकता से अधिक क्लेश उठाते हैं। धनी देर से पचनेवाली स्वादिष्ट किन्तु स्वास्थ्य-हानिकारी वस्तुएं खाते हैं। परिश्रम नाम मात्र का करते हैं। भोग-विलास में आसक्त हो कर आलसी बने रहते हैं, इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और कितने ही तो चिररुग्ण हो जाते हैं। धन की रक्षा और उसकी वृद्धि की चिन्ता धनवानों के मन में सर्वदा बनी रहती है। इस चिन्ता के मारे कभी कभी उन्हें रात भर

नींद नहीं आती। कितने ही धनवानों को यह कहते सुना है कि "हमें अच्छी नींद नहीं आती, किसी दिन तो सारी रात जागते बीतती है"। मानो विधाता ने निद्राभङ्ग रोग ख़ास कर धनी लोगों के ही लिए बनाया है। धनवान् की वासना अनायास ही पूर्ण होजाती है, इससे किसी बात में उन्हें विशेष सुख का अनुभव नहीं होता। सुख तो तभी होता है जब किसी अभाव की पूर्ति परिश्रम के द्वारा की जाती है। यह बात धनवानों में नहीं पाई जाती। उन्हें प्रथम तो किसी विषय का अभाव रहता ही नहीं; यदि हुआ तो उसकी पूर्ति के लिए उन्हें परिश्रम नहीं करना पड़ता। धन के द्वारा बात की बात में उनका अभाव-मोचन हो जाता है। अभिलषित वस्तुओं को सुलभतया प्राप्त करने पर जब उनका जी भर जाता है तब उन चीज़ों में उन्हें कुछ नयापन दिखाई नहीं देता। आख़िर वे कृत्रिम उपाय का अवलम्बन कर खेल-तमाशों से अस्वाभाविक आनन्द की नवीनता का आविष्कार करते हैं, किन्तु वह सहज-लभ्य होने पर फिर उसमें भी उनका जी नहीं लगता। मानो संसार में एक भी उपचार अब उनका दिल बहलाने के लिए बाक़ी न रहा। इसीसे क्षणिक उत्तेजना और मनोविनोद के लिए उन्होंने मद्य सेवन आरम्भ कर दिया। धीरे धीरे मद्यपान का प्रमाण बढ़ता गया। साथी लोग भी दिन दिन जुटने लगे। अब वे प्रति दिन सुख का नयापन देखने लगे, किन्तु यह नयापन देखना उनके सर्वनाश का कारण हो रहा है, यह उन्हें नहीं सूझता। किन्तु ये बातें चरित्रवान्

सुशिक्षित धनवानों में नहीं पाई जाती। वे मद्यपान आदि व्यवहार को मनुष्यजीवन के लिए अत्यन्त अनिष्टकारी समझते हैं। जो धनवान् चरित्रवान् हैं, वे ऐसा काम कभी नहीं करते जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़े। कर्मक्षेत्र में अस्वस्थ लोगों की उन्नति नहीं होती। छापेख़ाने के कितने ही कर्मचारी, जिन्हें लोभ की मात्रा अधिक है, दिन भर काम करके बाहरी आय के लिए रात में कई घन्टे तक, यहाँ तक कि कभी कभी सारी रात काम कर के सबेरे अपने घर आते हैं और जहाँ तक जल्द हो सकता है, स्नान-भोजन कर के फिर दफ़्तर में काम करने चले जाते हैं। इस जानलेवा मिहनत के द्वारा वे पहले तो रुपया अच्छा कमाते हैं किन्तु इस विषम परिश्रम के विषमय फल से उनका स्वास्थ्य शीघ्र ही ख़राब हो जाता है। तब उनको पहले का सा उत्साह नहीं रहता और न उनमें परिश्रम करने का सामर्थ्य ही रह जाता है। दैहिक दुरवस्था के साथ ही साथ मानसिक बल का भी दिनों दिन ह्रास होने लगता है। तो भी उनकी रुपया कमाने की लालसा कम नहीं होती। इसलिए मद्यपान के द्वारा शक्ति सञ्चालित करके पूर्ववत् काम किये जाते हैं। आख़िर थोड़े ही दिनों में इस दुःसाध्य साहस का भयङ्कर परिणाम उनके हाथ आता है। वे रोग से अभिभूत हो कर शय्या का सेवन करने लगते हैं। वाराङ्गना जैसे अपनी रक्तिमा दिखला कर सर्वस्व हरण करती है वैसे ही यह सुरा अपनी लाली, दिखा कर लोगों के मुँह की लाली हर लेती है। सुरा धीरे धीरे देह और मन

दोनों को निस्तेज बना डालती है। मद्यपायी लोग नशे में मग्न होकर पहले तो खूब रुपया उड़ाते हैं किन्तु पीछे से ऋणजाल में फँस कर अकाल में ही कालकवलित होते हैं। तब उनके कुटुम्बी लोग असहाय हो कर चारों तरफ़ अन्धकार ही अन्धकार देखने लगते हैं। अतएव अपनी, अपने समाज की, अपनी जाति की और अपने देश की उन्नति तथा श्रीवृद्धि के लिए स्वास्थ्य की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। संसार के सभी अच्छे काम स्वास्थ्य-सम्पन्न बलवान् व्यक्तियों के ही द्वारा सम्पादित होते हैं।

ऐसे अमूल्य धन स्वास्थ्य की रक्षा किस तरह होगी? इसकी विवेचना सबको करनी चाहिए। बहुत लोगों की धारणा यह है कि व्यायाम (कसरत) ही स्वास्थ्य का एक मात्र उपाय है। हाँ, कसरत से स्वास्थ्य की उन्नति ज़रूर होती है; किन्तु कसरत के साथ ही साथ और भी अनेक विषयों पर ध्यान रखना ज़रूरी है। कोई कोई युवक रूखा सूखा अपुष्टिकारक भोजन करके और कोई आधे ही पेट खाना खाकर प्रमाण से अधिक क्लेशकर कठिन व्यायाम करते हैं और स्वास्थ्यसम्पन्न होने के बदले स्वास्थ्यहीन होकर रुग्ण हो जाते हैं। अतएव शरीर-परिचालन इस तरह करना चाहिए जिसमें स्वास्थ्य भङ्ग न हो। स्वास्थ्य की रक्षा ही व्यायाम का मुख्य उद्देश्य है। जिस व्यायाम से स्वास्थ्य में हानि पहुँचे वह व्यायाम किस काम का? सुबह और शाम के वक्त़ खुली हवा में टहलना, नाव खेना, तैरना, लकड़ी काटना, मिट्टी खोदना और गेंद खेलना आदि स्वास्थ्य-रक्षा

के लिए उत्कृष्ट उपाय हैं। खाने और पीने के सम्बन्ध में भी विशेषतः ध्यान रखना चाहिए। नियमित समय पर प्रसन्न मन से परिमित भोजन करना चाहिए। आहार्य्य पदार्थ और पीने का पानी खूब साफ़-सुथरा और पुष्टि-कर न होने से स्वास्थ्य में हानि पहुँचती है। सिर्फ़ कसरत करने ही से क्या हो सकता है? अपुष्टिकर भोजन, दूषित जल, अपरिमित आहार, या अत्यल्प आहार, अधिक पानी पीना या प्यास लगने पर पानी न पीना, अधिक रात तक जागना, दिन निकल आने पर भी चारपाई पर पड़े रहना, मादक पदार्थों का सेवन करना, बँधी हुई या गन्दी हवा में साँस लेना, जिस घर में हवा न आती हो या जो बहुत मैला हो उस में रहना, और मल-मूत्र के वेग को रोकना आदि ये सभी स्वास्थ्य बिगाड़ने वाले हैं। स्वास्थ्य-रक्षा के लिए केवल ग्रन्थ पढ़ने या उपदेश सुनने से कोई फल नहीं होता। स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों को भली भाँति हृदय में धारण कर तदनुसार चलने से ही फल प्राप्त होता है। कितने ही लोग मैले बिछौने पर सोने और मैले कपड़े पहने के कारण खुजली आदि अनेक चर्म-रोग और नेत्र-रोग से पीड़ित रहा करते हैं। मैले कपड़े देख कर लोगों का जी घिनाता है, और साफ़ कपड़ा मन की प्रफुल्लता और पवित्रता का कारण होता है। साफ़ कपड़े वाले दाग़ से डरते हैं और मैले कपड़े वाले दाग़ की कुछ परवा नहीं करते। इस बात से साफ़ कपड़े का महत्त्व और मैले कपड़े की हीनता स्पष्ट जाहिर होती है। पोशाक के

साथ ही साथ चित्त-वृत्ति का परिवर्तन होता है। इस में सन्देह नहीं कि पोशाक अच्छी न रहने से चित्त प्रसन्न नहीं रहता। कुछ लोग समझते हैं कि भूषण-वस्त्र से अपने को सुसज्जित करना या शरीर को ख़ूब साफ़-सुथरा रखना शौकीनी है— दूसरों को अपना सौन्दर्य्य दिखलाने ही के लिए लोग ऐसा करते हैं। वेश-विन्यास के साथ यदि विलासिता का भाव गुप्त रूप से लगा भी हो तो भी सफ़ाई-पसन्द रहना अच्छा है, कारण यह कि रोज़ रोज़ बालों में कंघी करने से माथे में मैल जमने नहीं पाता। बाल साफ़ रहने से दिमाग़ दुरुस्त रहता है और शरीर की कान्ति भी बढ़ती है। इसी तरह देह में तेल मलने, चेहरे को साफ़ रखने, विशुद्ध जल से स्नान करने और साफ़ कपड़े पहनने से स्वास्थ्य ठीक रहता है और चित्त भी प्रसन्न रहता है। इन बातों में कोई विलास-प्रियता की आशङ्का करे तो उस पर ध्यान न देना चाहिए। यह बात नहीं कि सभ्य समाज में सम्मान पाने अथवा अपनी योग्यता दिखलाने किंवा लज्जा निवारण करने के मतलब से ही कपड़ा पहना जाता है। वस्त्र धारण करने का मुख्य उद्देश्य तो देह की रक्षा है। जाड़े और गरमी के क्लेश से आत्म-रक्षा करना नितान्त आवश्यक है, इसी आत्म-रक्षा के लिए वस्त्र पहने जाते हैं। इस कारण बहुमूल्यवान् कपड़े यदि मैले और दुर्गन्धमय हों तो उनकी अपेक्षा फटा हुआ थोड़े दाम का कपड़ा विशेष उपादेय और हितकर है। आयुर्वैदिक विज्ञान से निर्णय किया गया है कि हम लोगों की देह में

सत्तर लाख रोमकूप हैं: इन्हीं रोमकूपों की राह से आक्सिजन नामक प्राण-वायु हम लोगों के शरीर में प्रविष्ट होकर हमें जीवित रखता है। किन्तु मैल से भर कर जब वे छेद बन्द हो जाते हैं तब प्राणवायु की गति रुकने के कारण हम लोगों को अनेक प्रकार के रोग घेर लेते हैं। देह साफ़ रखने से मन प्रसन्न रहता है, शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है, हृदय बलिष्ठ रहता है और काम करने में उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति होती है। सफ़ाई स्वास्थ्य-रक्षा का अव्यर्थ साधन है, अमोघ प्रयत्न है।

कितने ही लोगों को विश्वास है और किसी किसी डाक्टर का भी कथन है कि "नियमपूर्वक थोड़ा सा मद्य पीने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है।" कुछ लोगों को यह कहते सुना है कि "अमुक लेखक मद्यपान किये बिना एक पंक्ति भी नहीं लिख सकता, अमुक वैज्ञानिक या अमुक गणितज्ञ जब मद्य की उपयुक्त मात्रा पी लेते हैं तब कठिन से भी कठिन प्रश्न का उत्तर उनके आगे सहल हो जाता है।" किन्तु वे लोग यदि मादक द्रव्य के द्वारा मस्तिष्क को उत्तेजित न करके स्वाभाविक उत्तेजना के द्वारा उन कामों को करते तो प्रमत्तावस्था की अपेक्षा वे सभी काम कहीं बढ़कर अच्छे होते। जो काम होश-हवास दुरुस्त करके किया जाता है वह बहुधा निर्दोष होता है। बङ्गाल के प्रसिद्ध प्रतिभाशाली कवि मधुसूदन दत्त, सुरारूपिणी असुरा के हाथ में अपने को सौंपने से, बहुत कष्ट पाकर अकाल में ही काल-कवलित हुए थे। उन्होंने अपने मित्र स्वर्गीय राजनारायण बसु को

किसी पत्र में लिखा था—"I never drink when engaged in writing poetry, or, if I do, I can never manage to put two ideas together." "अर्थात् मैं कविता लिखने के समय कभी मद्यपान नहीं करता। यदि मैं शराब पीकर लिखने बैठूँ तो मुझमें यह सामर्थ्य नहीं रहता कि मैं दो विचारों को व्यक्त कर सकूँ।" शारीरिक विज्ञानवेत्ताओं के मतानुसार पहले ही लिखा जा चुका है कि मादक वस्तुओं के सेवन से स्वास्थ्यहानि होती है। संसार और समाज के सर्वनाश के अनेकानेक साधनों में मद्यपान को यदि सर्वप्रधान मान लें तो अत्युक्ति न होगी। कितने ही बड़े बड़े बुद्धि-विद्या-सम्पन्न, कितने हा करोड़पति व्यक्ति मद्य-पान के द्वारा विपद्ग्रस्त हो कर असमय में ही संसार से चल बसे हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है। इसके हजारों उदाहरण ढूँढ़ने से मिल सकते हैं। मद्य पीना निषिद्ध है, इस विषय में कितने ही सिद्धान्त हुए हैं और हो रहे हैं। उन सिद्धान्त-विषयों को पृथक् पृथक् लिखने से लेख बहुत बढ़ जायगा। इसलिए उन सिद्धान्तों का सार यहाँ उद्धृत किया गया है।

डाक्टर कार्पेंटर* का कथन है कि १८८९ ईसवी में गवर्नमेंट

* The Physiology of Temperance and Total Abstinence, by W. B. Carpenter, M.D, F.R.S., G.S., London : Bell and Daldy. "The Relation of Alcohol to Bad Sanitation" by J. J. Ridge, M D, B.S., B.A, B.Sc., London, L.R.C.P, London, M.R C.S. Eng.; &c., &c.

की ओर से जो मद्रास के सैनिकों की मृत्यु-संख्या की सूची निकली थी उस में मात्रा से अधिक मद्य पीनेवालों और मादकासक्त व्यक्तियों की संख्या अधिक थी। प्रमाणाधिक पीनेवाले सैकड़े पीछे ८.८५६, प्रमाण से पीनेवाले सैकड़े पीछे २.३१५ और मद्यमादक से सर्वथा विरत व्यक्ति सैकड़े में १,१११ मरे थे।

लन्दन के "United Kingdom and General Provident Institution" की पन्द्रह वर्ष की परीक्षा से भी यही बात जानी गई कि अधिक मद्य पीनेवालों की अपेक्षा मद्य न पीनेवालों की मृत्यु-संख्या बहुत कम रही।

अनेक प्रकार के युक्तियुक्त प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि थोड़ा भी मद्य वा मादक बहुत दिनों तक सेवन करने पर आयु को क्षीण करता है और शरीर को निर्बल और निस्तेज बना डालता है। "मद्यपान से स्वास्थ्य ठीक रहता है," इस वाक्य पर भूल कर भी विश्वास न करना चाहिए। मद्य धीरे धीरे स्वास्थ्य को बिगाड़ कर शरीर को रोगों का घर बना देता है। संसार में जितने प्राणी हैं उन सबके पीने के लिए ईश्वर ने पानी दिया है। स्वास्थ्य-रक्षा और जीवन धारण के लिए पानी से बढ़कर दूसरा कोई पेय नहीं है। तो भी मनुष्य नाना प्रकार का अपेय पान कर अपनी दैहिक और मानसिक शक्ति को न मालूम क्यों नष्ट करते हैं? और मज़ा यह कि सब प्राणियों में अपने को

विशेष बुद्धिमान् गिनते हैं। किसी किसी जाति में क्या पुरुष और क्या स्त्री कोई भी मद्य या मादक पदार्थ को हाथ से छूते तक नहीं, इससे उनका रत्ती भर भी नुक़सान नहीं होता। जो लोग मादक द्रव्य से सम्बन्ध नहीं रखते वे सबल, स्वास्थ्यसम्पन्न, दीर्घजीवी, उन्नतिशाल और ऋद्धिमान् होते हैं। मादक वस्तुओं से सम्बन्ध छूट जाने के कारण जेलख़ाने में क़ैदियों का स्वास्थ्य ठीक रहता है। कई जगहों के जेलख़ानों के क़ैदियों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी रिपोर्ट देखने से यह बात जानी गई है।

दूसरा अध्याय

आय-व्यय (आमद-ख़र्च)

जिस देश के लोग अधिक दरिद्र हों, समझना चाहिए कि वहाँ शिक्षा, सभ्यता और पुरुषार्थ का अभाव है। किन्तु यदि यह देखने में आवे कि किसी जाति में शिक्षा, सभ्यता और पुरुषार्थ तो यथेष्ट परिमाण में हैं पर उनके घर से दरिद्रता नहीं हटती तो समझना होगा कि उनमें मितव्ययिता का अभाव है। जो लोग बेहिसाब ख़र्च करते हैं उनके घर से दारिद्र्य का हटना कठिन है। कोई कोई कहते हैं कि "जिसे अपव्यय करने की आदत पड़ गई है उसे लोग मितव्ययी कैसे बना सकते हैं?" इसमें सन्देह नहीं कि स्वभाव का बदलना कठिन अवश्य है किन्तु वह असाध्य नहीं है। जो अमितव्ययी हैं वे द्रव्य के बिना कितने ही आवश्यक पदार्थों का अभावजनित कष्ट सहते सहते और ऋण के भार से दब कर दुःख से अपना जीवन बिताते बिताते कितनी ही बार प्रतिज्ञा करते हैं कि "अब ख़ूब समझ बूझ कर ख़र्च करेंगे, एक पैसा भी वृथा ख़र्च न करेंगे।" किन्तु न मालूम दरिद्रता की उन पर कैसी बुरी दृष्टि है कि वे किसी तरह दरिद्रता के पञ्जे से छुटकारा नहीं पाते। उनकी प्रतिज्ञा न मालूम क्या हो जाती है? उनके सिर से ऋण का भार क्यों नहीं

टलता ? वे तो बड़े ही सज्जन हैं, शिक्षित भी हैं, उनका स्वास्थ्य भी अच्छा है, परिश्रमी भी हैं, पुरुषार्थशील भी हैं; और जिन गुणों के रहने से लोग धनोपार्जन कर सकते हैं वे सभी गुण उनमें हैं। कुछ पैदा न करते हों, सो भी नहीं; चार पैसा कमाते भी हैं, तब उन्हें ऐसा अभाव क्यों ? यदि कोई व्यक्ति इनका अभाव या त्रुटि देखना चाहे तो किसी महीने की पहली या दूसरी तारीख़ को उनके घर पर जाय। वहाँ जाकर वह देखेगा कि मोदी अपना वहीखाता लिये ऋण वसूल करने को बैठा है: ग्वाला दूध के दाम माँग रहा है: हलवाई और बजाज़ आदि अपने अपने बाक़ी दामों के लिए बैठे हैं। इन लोगों ने बाबू साहब के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ एक महीने से बराबर उधार दी हैं। किसी ने आटा, चावल, घी आदि उधार दिया है; किसी ने मिठाई, किसी ने कपड़े और किसी ने खेल-तमाशे की चीज़ें दी थीं। वे लोग अपना अपना ऋण वसूल करने आये हैं। गृहपति ने उन लोगों का ऋण चुकाते चुकाते अपनी महीने भर की सारी कमाई दे करके ज़बरदस्त महाजनों के हाथ से छुटकारा पाया। और जो कोमल-स्वभाव के थे उन्हें समझा-बुझा कर अगले महीने चुका देने का वादा करके बिदा किया। थोड़ी देर में कोई व्यौहरा अपना ब्याज लेने के लिए उनके दरवाज़े आ पहुँचा। गृहपति के हाथ में अब एक पैसा भी नहीं, महाजन को देख कर उनका हृदय धड़कने लगा। यद्यपि महाजन को ख़ाली हाथ लौटा कर वे कुछ दिन के लिए उससे अपना पिण्ड छुड़ा

सकते थे तथापि महाजन का क्रोध से भरा हुआ मुँह, लाल आँखें और उसकी कठोर वाणी का स्मरण करके वे चिरक्लिष्ट रोगी की तरह हतप्रभ हो गये। यदि तुम उनकी इस दीनदशा का कारण जानना चाहो तो उनके घरेलू कामों की खबर लो, असल कारण तुम्हें अपने आप मालूम हो जायगा। गृहपति उपार्जन ज़रूर करते हैं किन्तु वे मुन्तज़िम नहीं हैं। गृहिणी सभी गुणों से विभूषिता है पर घर का काम करना नहीं जानती। कौन खर्च आवश्यक है और क्या अनावश्यक है, यह भी नहीं समझती। तुम देखोगे कि इस महीने उनके घर में प्रयोजन से अधिक चीज़ें ख़रीदी गई हैं। कोई ऐसी चीज़ बिकने आई जिसका उन्हें कुछ भी प्रयोजन न था; सौदागर के अनुरोध से अथवा सस्ती समझ कर कुछ ख़रीद कर ली और उसे भविष्य के लिए रख छोड़ा। ऐसे ही कोई खाने की चीज़ अथवा पहनने की कोई पोशाक बिकने आई है। ढूँढ़ने से यह दूसरी जगह थोड़े ही दामों में मिल जाती किन्तु उनके पसन्द की चीज़ सामने आगई। उसे वे कैसे छोड़ सकते थे, इसलिए उचित मूल्य से डेवढ़े दाम देकर उन्होंने ले लिया। ऐसे ही उनके यहाँ अनेक अनावश्यक खर्च तुम्हारे देखने में आवेंगे। जिस खर्च की कोई ज़रूरत नहीं वही किया जाय तो उसी को फ़िज़ूलखर्ची कहते हैं। उसी फ़िज़ूल-खर्ची के कारण ऋण-ग्रस्त होकर लोग चिन्तित रहा करते हैं, और सुख-स्वच्छन्द से अपना जीवन व्यतीत करने में असमर्थ होते हैं। यह फ़िज़ूलखर्ची ही दारिद्य रोग का मुख्य कारण है।

मितव्ययिता का अभ्यास करना उस रोग का महौषध है। मित-व्ययी होने के लिए न कुछ खर्च करना पड़ता है और न कुछ विशेष परिश्रम ही करना पड़ता है। हाँ, कुछ नियमों का पालन अवश्य करना पड़ता है। किसी कठिन रोग से मुक्त होने के लिए जैसे नियमपूर्वक औषध का सेवन करना पड़ता है और कुपथ्य से बचना पड़ता है उसी तरह अपव्ययी को भी, दारिद्र्य रोग से मुक्त होने के लिए, पथ्य-कुपथ्य के ऊपर ध्यान रख कर चलना ज़रूरी है। इसके लिए जिन नियमों पर ध्यान रखना चाहिए एक एक कर उनका नामोल्लेख करना असम्भव है। जो काम उद्देश्यसिद्धि के अनुकूल हों उनका स्वीकार करना और जो प्रतिकूल हों उनका त्याग करना—यही मितव्ययिता के साधारण नियम हैं। मितव्ययिता के सम्बन्ध में यहाँ कितने ही नियमों का उल्लेख किया जाता है जो किसी अवस्था में भी उल्लङ्घन करने योग्य नहीं हैं।

कर्तव्य

आमद से खर्च कम करे, यही प्रथम कर्तव्य है। जो आय की अपेक्षा व्यय अधिक करते हैं वे ऋणग्रस्त, मुँहताज और दुर्दशापन्न होंगे, इसमें सन्देह क्या? अमितव्ययी लोग अधिकांश दुश्चरित्र, निस्तेज और अल्पायु होते हैं। हम ने कितने ही धन-कुबेर ज़मीदारों के उत्तराधिकारियों की बात सुनी है जो अपने पुरखा के अतुल ऐश्वर्य्य को पाकर भी फ़िज़ूलख़र्ची के कारण

थोड़े ही दिनों में सर्वस्वान्त करके पागल हो गये हैं ; अथवा आत्मघात करके अपने कुकर्म का परिचय दे गये हैं। बहुधा देखा जाता है कि कितने ही ज़मीदारों के लड़के आमद की अपेक्षा ख़र्च अधिक करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने अधिकार से हटा दिये जाते हैं, ज़मीदारी का काम उनके हाथ से ले लिया जाता है और गवर्नमेंट " कोर्ट आव वार्ड " को उनकी ज़मीदारी का भार सौंपती है और जहाँ तक हो सके कम ख़र्च करने का उसे आदेश देती है। वे अमितव्ययी धनिक-नवकुमार सभ्य समाज में अयोग्य गिने जाते हैं और गवर्नमेंट-प्रदत्त अल्प वेतन से अपना निर्वाह करते हैं। फ़िज़ूल-ख़र्ची के कारण जब बड़े बड़े धनाढ्य व्यक्तियों की यह दुर्दशा है तब साधारण स्थिति वाले गृहस्थों की तो कोई बात ही नहीं।

ख़र्च का हिसाब अपने ही हाथ में रखना चाहिए और जिस दिन जिस काम में जो ख़र्च हो वह लिख लेना चाहिए। साथ ही साथ यह भी देखना चाहिए कि इन में कहाँ तक ख़र्च घटाया जा सकता है। अपनी अवस्था पर ध्यान देकर जो अपव्यय जान पड़े उस मद को ख़ारिज कर देने से ख़र्च घट सकता है। सद्व्यय और असद्व्यय तथा आवश्यक और अनावश्यक पर बराबर दृष्टि रखने से लोग अपने ख़र्च को बहुत कुछ कम कर सकते हैं। इसका समझना कुछ कठिन नहीं है। ज़रा ध्यान देने ही से लोग समझ सकते हैं। संचय के द्वारा भविष्य के लिए कुछ पूँजी जमा करने का यह एक अच्छा उपाय है।

त्याज्य

" जितनी आमदनी उतना ही खर्च " यह जो एक लोकोक्ति है, इसका मतलब यही है कि आमद को बिलकुल ख़र्च कर डालते हैं, उसमें से एक पैसा भी बचा कर नहीं रखते। जो लोग ऐसा करते हैं वे तत्काल भले ही ऋणग्रस्त न हों किन्तु किसी प्रकार का आवश्यक प्रयोजन पड़ने पर अपने पास द्रव्य न रहने के कारण उन्हें ज़रूर कर्ज़ लेना पड़ता है। वे उस कर्ज़ के चुकाने की फ़िक्र में अपनी सारी ज़िन्दगी के सुख को बरबाद कर डालते हैं। इसलिए सुख-स्वच्छन्द से रहने, परापेक्षी न होने और परोपकार करने के लिए आय की अपेक्षा व्यय कम करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। यदि अधिक न बचा सके तो अपनी आय का दशांश तो ज़रूर ही बचाना चाहिए। वह यों बचाया जा सकता है कि जो दस रुपये पाता है उसे समझना चाहिए कि मुझे नौ मिलते हैं। जिनकी मासिक आय १००) है उन्हें समझना चाहिए कि नब्बे ही मिलते हैं और उतने ही में उन्हें अपने सभी आवश्यक कामों को सँभालना चाहिए। जो लोग थोड़ा बहुत जमा कर सकते हैं वही समय पर द्रव्य का सद्व्यवहार कर सकते हैं और विपत्ति के समय उद्धार पा सकते हैं। किसे कितना बचाना चाहिए, इस विषय में अनेक मुनियों के अनेक मत हैं। उन लोगों ने आमदनी के सोलहवें हिस्से से लेकर आधे तक बचाने की सम्मति दी है। सबके लिए सञ्चय का एक ही नियम नहीं हो

सकता। सब लोग अपनी अवस्था के अनुसार सञ्चय करने का नियम बना सकते हैं। यह बात बहुत ठीक है कि अतिरिक्त खर्च की अपेक्षा अतिरिक्त सञ्चय करना अच्छा है। स्माइल्स साहब ने कहा है—पहली त्रुटि का संशोधन करना कठिन है। पहली त्रुटि का संशोधन होने पर दूसरी त्रुटि का संशोधन सहज ही हो सकता है।

कभी कोई चीज़ उधार न लो

जहाँ तक हो नक़द दाम देकर ही प्रयोजनीय वस्तु ख़रीदो, क्योंकि जो चीज़ तुम उधार लोगे उसका दाम तुम्हें कुछ अधिक देना पड़ेगा। और किसी किसी समय उधार की चीज़ों में ठगे भी जाओगे। जो किसी से कोई चीज़ उधार लेता है या कर्ज़ लेता है तो उसके मन में दिन भर ता चिन्ता लगी रहती है और रात में वह बुरा बुरा सपना देखता है। महाजन के सामने उसे सिर नीचा करना पड़ता है। कितने ही लोग अनिश्चित लाभ की आशा पर कर्ज़ कर बैठते हैं। वे यह नहीं सोचते कि यदि किसी अनिवार्य्य कारण से वह लाभ न होगा तो वह ऋण भूत की तरह उनके सिर पर इस प्रकार सवार हो जायगा जो बहुत प्रयत्न करने पर भी जल्दी न उतरेगा।

रुपये को वृथा न फेंकोगे तो कभी द्रव्य का अभाव न होगा

हानि अनेक प्रकार से होती है : किन्तु दो प्रकार की हानियों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रथम तो यह कि जो चीज़ें घर में आई हैं उनमें से कोई नष्ट न होने पावे और दूसरी यह कि जिन चीज़ों का कोई प्रयोजन नहीं वे किसी तरह घर में न आने पावें। इस विषय में चित्तवृत्ति के रोकने का अभ्यास करना आवश्यक है। "यह चीज़ मुझे बहुत ही पसन्द है। इस चीज़ के न होने से कैसे बनेगा ? यह न होने से मर्यादा न रहेगी। वह न होने से लोगों में मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा। सामर्थ्य हो या न हो अमुक चीज़ ख़रीदनी ही पड़ेगी, अमुक काम में इतना ख़र्च करना ही पड़ेगा"। इस तरह की बातें कितनों ही के मुँह से सुनी जाती हैं। ऐसी बातें प्रायः उन्हीं के मुँह से निकलती हैं जो अपव्ययी अथवा अमितव्ययी हैं। वे अपनी अवस्था के साथ वासना का मेल रखना नहीं जानते और अपनी इच्छा के अनुसार तुरन्त काम न होने पर व्यग्र हो उठते हैं। अपनी अवस्था के साथ वासना का मेल न होने का कारण केवल तृष्णा की अधिकता है। जो लोग तृष्णा को जीते हुए हैं वे सभी काम अपनी योग्यता के अनुसार ही करते हैं। कितने ही लोग अपने से विशेष अवस्थावाले लोगों की देखादेखी

खर्च करके नामवरी हासिल करना चाहते हैं और कर्ज़ लेकर अपना पुरुषार्थ दिखलाते हैं। थोड़ी देर की वाहवाही के लिए वे भविष्य का भयङ्कर परिणाम नहीं सोचते। कर्ज़ न चुका सकने के सबब कुछ दिन में उनका घर-द्वार, जोत-ज़मीन सब कुछ नीलाम हो जाता है, फिर उन्हें ठहरने के लिए कहीं जगह नहीं मिलती। बाल-बच्चों को मुट्ठी भर अन्न तक खाने को नहीं मिलता। तब उनके मन में अपार कष्ट होता है। इसलिए अपव्ययी लोगों को संयमी होना चाहिए। जब तक कोई अपनी अवस्था के अनुसार आवश्यक ख़र्च पर ध्यान न रक्खेगा, संयमी नहीं हो सकेगा। संयमी न होने से जो दुःख रोगियों को भोगना पड़ता है वही आश्रमी मनुष्यों को भी; बल्कि उन रोगियों की अपेक्षा कभी कभी असंयमी गृहस्थ को अधिकतर कष्ट उठाना पड़ता है।

सञ्चय

"कर्तव्यः सञ्चयो नित्यं कर्तव्यो नातिसञ्चयः।"

यदि मनुष्य सारी उम्र परिश्रम करने में समर्थ होता तो हमें अपव्यय आदि हानिकारी विषयों के विरुद्ध कुछ कहने की ज़रूरत न थी और तब आमद-ख़र्च बराबर करने पर भी दुःख से समय बिताने का प्रसङ्ग न आता। क्योंकि रोज़ रोज़ की आय से रोज़ रोज़ का अभाव दूर होता जाता। किन्तु सारी उम्र कोई काम

नहीं कर सकता। युवावस्था की शक्ति आधी उम्र बीतने पर नहीं रहती और अर्धवयस्क की शक्ति बुढ़ापे में नहीं रहती। मतलब यह कि बाल्यावस्था में मनुष्य जैसे जीविका प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं वृद्धावस्था में भी वैसे ही असमर्थ हो जाते हैं। कितने ही तो बुढ़ापे के पहले ही रोग-शोक के द्वारा स्वास्थ्य खो बैठते हैं, और कोई काम करने योग्य नहीं रहते। तब उनकी यह पहली शक्ति, श्रमसहिष्णुता और उद्योगपरता एक भी काम नहीं आती। उस समय उन्हें या तो अपने को दूसरे की शक्ति और कमाई पर निर्भर करना पड़ता है, या अपनी युवावस्था के सञ्चित धन पर। मनुष्य यदि जङ्गली जानवरों की तरह अपने जीवन को व्यतीत कर सकते और फल मूल किंवा जानवरों के मांस से ही अपना पेट भर लेते तो संचय की कुछ अधिक आवश्यकता न थी। किन्तु ईश्वर की नीति और ही तरह की है। ईश्वर ने मनुष्यों को अभाव-ज्ञान, आकांक्षा, आशा, विश्वास, वासना और अनुभव शक्ति देकर अन्यान्य प्राणियों से पृथक् कर रक्खा है। क्रमशः उन्नति करना ही मनुष्यों के जीवन का मूल मन्त्र है। मनुष्यों को यदि ईश्वर यह ज्ञान न देते तो दिन दिन जो नया आविष्कार होता है, कला-कौशल की जो वृद्धि होती है, यह किसी के देखने में न आती। मनुष्य जब बिलकुल जङ्गली की तरह असभ्य अवस्था में रह कर नग्न पशुओं की भाँति जीवन बिताते थे, शिकार के द्वारा जो कुछ मिल जाता था उसी से अपनी क्षुधा का निवारण करते थे, तब भविष्य के लिए उन्हें

कोई चिन्ता न थी। किन्तु जब उन्होंने देखा कि शिकार रोज़ रोज़ नहीं मिलता, किसी किसी दिन उपवास भी करना पड़ता है, तब उन्होंने एक दिन की आहार्य-सामग्री से कुछ कुछ बचा कर दूसरे दिन के लिए रखना सीखा। आख़िर जब प्रतिदिन पशुओं को मारने से वन्य पशुओं का ह्रास होने लगा तब, जङ्गली पशु न मिलने के कारण, कभी कभी कई दिनों तक भूखे रह कर समय बिताने की नौबत आई। उस समय उन्होंने अपने जीवन-निर्वाह के लिए नवीन मार्ग का आश्रय लिया। तब वे कुछ धान जमा कर उसे बोने, खेती करने और उसके लिए उपयुक्त हथियारों के बनाने में लगे। धीरे धीरे उन्हें जाड़े, गरमी और वर्षा का भी बोध होने लगा और वे देह की रक्षा का उपाय ढूँढ़ने लगे। उन्हें बाघ, सिंह, साँप आदि भयङ्कर जीवों से अपनी रक्षा करने की बात भी सूझी। सुख-स्वच्छन्द से रहना पसन्द आया। भोजन, वस्त्र और घर विशेष प्रयोजनीय जान पड़ने लगे। वे खोजने लगे कि आराम कैसे मिलेगा। किन्तु जब उन्होंने देखा कि एक ही व्यक्ति से खाद्य, वस्तुओं का संग्रह, करना, रसोई बनाना, परोसना, बाल-बच्चों की हिफ़ाजत, खेती करना पशुओं का पालन, गाय दुहना, कपड़ा बुनना, घर बनाना, गृहस्थी के लिए आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करना और औज़ार आदि बनाना जितने काम हैं सभी सम्पन्न नहीं हो सकते और इन कामों में कोई ऐसा भी नहीं जो छोड़ दिया जाय, तब उनके हृदय में स्वार्थ-त्याग का भाव जाग्रत हुआ। तब वे परस्पर एक

दूसरे की सहायता करने लगे। आवश्यक कामों को सभी ने आपस में बाँट लिया। सभी अपने अपने बल और बुद्धि के अनुसार काम करने लगे। कोई लोहा ढूँढ़ कर लाने लगा। कोई उसे आग में गला कर और ठोक पीट कर खुरपी, कुदाल और हँसुआ तैयार करने लगा। कोई ज़मीन खोद कर खेत दुरुस्त करने लगा। इसी प्रकार कोई बोने, कोई उसकी हिफ़ाज़त करने, कोई काटने और कोई उसे तैयार करके सुरक्षित स्थान में रखने लगा। धीरे धीरे व्यवसाय बढ़ चला। आवश्यकतानुसार लोग एक चीज़ के बदले में दूसरी चीज़ लेने-देने लगे। इस प्रकार क्रमशः कृषि, शिल्प और बनज-व्यापार आदि की सृष्टि होकर व्यक्तिगत और जातिगत धन की उत्पत्ति हुई। जो मनुष्य असभ्य होकर, जङ्गली जानवरों की तरह जङ्गल में रह कर, जीवन व्यतीत करते थे वे क्रम क्रम से अपनी उस पाशव अवस्था को अतिक्रम कर शिक्षित, शिष्ट और वास्तविक मनुष्य हो चले। इस तरह कितनी ही शताब्दियाँ बीतने पर अब मनुष्य नीति, धर्म, ज्ञान, विज्ञान आदि अनेक गुणों के सहारे सभ्यता के ऊँचे शिखर पर आ पहुँचे हैं। आज कल की जो मनुष्यों की वृद्धिङ्गत अवस्था है उसकी तुलना प्रथम काल की बाल्य अवस्था से किसी प्रकार नहीं हो सकती। यदि कोई पूछे कि अवस्था में इस प्रकार परिवर्तन होने का कारण क्या है? तो हम यही उत्तर देंगे कि एक मात्र स्वार्थत्याग और स्वार्थत्याग-जनित सञ्चय। आज की समस्त आहारसामग्री से यदि कुछ न बचाया जाय तो

कल के लिए कुछ नहीं रह सकता, यह स्वयंसिद्ध है। कल के लिए यदि तुम कुछ रखना चाहो तो आज तुम्हें कुछ ज़रूर त्यागना होगा। मान लो, आज मेरे हाथ दस रुपये आगये हैं; इन रुपयों को ख़र्च करके मैं अच्छे अच्छे फल-मूल और मिठाइयों से अपनी रसना को तृप्त कर सकता हूँ; किराये की गाड़ी या मोटरकार पर चढ़ कर इधर उधर हवाख़ोरी कर सकता हूँ, सुगन्धित तैल और इत्र के द्वारा अपने सारे शरीर को सुवासित कर सकता हूँ, अथवा दस-पाँच मित्रों को निमन्त्रित कर मित्र-सम्मिलन का सुख प्राप्त कर सकता हूँ, किन्तु कल एक रुपया भी कहीं से मिलने की सम्भावना नहीं है तो मुझे इसका आज निश्चय कर लेना चाहिए कि इन रुपयों को किस काम में किस परिमाण से ख़र्च करना होगा। कल मुझे कुछ आमदनी हो या न हो पर भूख लगेगी ही और भोजन भी करना ही पड़ेगा। अतएव या तो आहार्य्य वस्तुओं का कुछ अंश या दस रुपयों में से कुछ रुपया मुझे बचा कर ज़रूर रखना चाहिए। इन रुपयों से आज मैं जितना सुख उठाना चाहता हूँ उसके कितने ही अंशों से मुझे वञ्चित होना पड़ेगा। बहुत बढ़िया आहार करने से गुज़र न होगी। टहलने के लिए किराये की गाड़ी न लेकर पैदल ही घूमना फिरना होगा। भोग-विलास की वस्तुओं से परहेज़ रखना होगा। यदि मैं इतना स्वार्थत्याग कर सकूँ तो इन दस रुपयों में से तीन-चार रुपया ज़रूर ही बचा सकूँगा और वही कठिन समय में काम आवेंगे। यह बात

कुछ एक ही दिन के लिए नहीं कही गई है, बल्कि उम्र भर इस बात का ध्यान रखना चाहिए। भविष्य के लिए, वक्त बे वक्त के लिए और कार्य करने में असमर्थ होने पर जीवन निर्वाह के लिए, वर्तमान-कालिक आय में से कुछ बचा रखना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। तुम अपने लिए जितना स्वार्थत्याग करना चाहते हो उससे कुछ अधिक स्वार्थ त्याग करके सञ्चय की मात्रा बढ़ाओ जिस में तुम्हारे परोक्ष में तुम्हारे प्रिय परिवार पर दुख का पहाड़ न टूट पड़े।

विचार-शक्ति और ज्ञान-प्राप्ति के साथ ही साथ सञ्चयशील होने की शिक्षा भी प्राप्त करनी चाहिए। सञ्चय न करना असभ्यता का चिह्न है। असभ्यगण स्वभाव से ही असञ्चयशील होते हैं, क्योंकि उन्हें भविष्य की कुछ फ़िक्र नहीं रहती। कुछ असञ्चयी लोगों को यह कहते सुना है कि "आज खाय और कल को भक्खे, ताको गोरख सङ्ग न रक्खे।" पर वे यह नहीं सोचते कि यह किसकी कही हुई बात है। गोरखनाथ योगिराज थे, विरक्त थे, उनको यह कहना शोभा देता था, किन्तु हम बालबच्चे वाले गृहस्थ वैसी बात कह कर क्यों असञ्चयशील बनें? जो सञ्चय नहीं करते उन्हें कभी कभी बड़ा ही कष्ट सहना पड़ता है। ऐसे कितने ही असञ्चयी व्यक्ति देखे गये हैं जो जवानी में खूब रुपया कमाते हैं पर कुछ सञ्चय न करने के कारण बुढ़ापे में अकर्मण्य और असहाय होकर कुत्ते की मौत मरते हैं। अतएव जो शिक्षित हैं, और जिन्हें सभ्य कहलाने का गर्व है वे सञ्चयशील होने

का भी अवश्य ध्यान रक्खें। असञ्चयी लोगों की गणना सभ्य-समाज में नहीं हो सकती। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य कुछ सञ्चय करना नहीं जानते थे। वे उस समय ऐसे असभ्य थे कि खेती तक करने का उन्हें ज्ञान न था। ज्यों ज्यों उन्हें अभाव होने लगा त्यों त्यों उनकी आँखें खुलने लगीं और वे सञ्चयशील होने लगे। यह सभ्यता कई युगों के सञ्चय का परिणाम है। यदि मनुष्यों को सञ्चय का ज्ञान न होता तो इतने प्राचीन काल से जो उत्तरोत्तर सभ्यता और कला-कौशल का परिष्कार होता आया है वह कुछ न होता। बिना सञ्चय के कभी उन्नति नहीं हो सकती। अतएव यदि तुम इसी उम्र से रोज़ रोज़ कुछ स्वार्थत्याग करना सीखोगे तो अपने जीवन में तुम्हें कभी अभाव न होगा—कभी किसी से कुछ माँगने का अवसर प्राप्त न होगा। ऋणी होकर चिन्ता के मारे जवानी में ही वृद्ध की तरह जीर्ण शीर्ण न होओगे। वरन् तुम्हारी सारी उम्र बड़े आराम से कटेगी। जब तुम दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए स्वार्थत्याग करना सीखोगे तब स्वयम् सञ्चयशील बनोगे। क्योंकि सञ्चय का प्रथम साधन स्वार्थत्याग ही है। जो लोग अभी तक कुछ सञ्चय नहीं कर सके हैं वे यदि अब से भी कुछ सञ्चय करने का अभ्यास करें तो थोड़े दिनों में कुछ धन जमा हो जाने पर सञ्चय की ओर उनकी प्रवृत्ति अपने आप बढ़ेगी। पहले अपनी अवस्था के अनुसार ज़रूरी कामों में खर्च करके जो कुछ बचे उसका सञ्चय करना बुद्धिमानों का काम है। जो लोग अपनी अवस्था पर ध्यान नहीं रखते, और

यह नहीं समझते कि कौन खर्च आवश्यक है और कौन अनावश्यक, उनसे जहाँ तक होगा क़र्ज़ ही करेंगे पर अपनी आय में से कुछ बचा न सकेंगे। सञ्चय न करना जैसा अनुचितया अधर्म है वैसा ही अपनी आत्मा को तथा अपने परिवार को विशेष कष्ट देकर अति सञ्चय करना भी अकर्तव्य और अधर्म है।

समाज जो आज कल इतनी बड़ी दुर्दशा में पड़ा हुआ है, उसका कारण धन का अभाव नहीं, उसका कारण तो धन का अपव्यय मात्र है। धन का उपार्जन करना उतना कठिन नहीं है जितना कठिन उसका सञ्चय करना है। इसलिए पहले यह सीखो कि धन का सञ्चय किस तरह करना चाहिए, धन सञ्चय करने का क्या उपाय है। धनवत्ता उपार्जन के ऊपर निर्भर नहीं है, कोई कितना ही धन प्राप्त करे उससे उसकी धनिकता व्यक्त नहीं होती। धनिकता खर्च और सञ्चय के द्वारा ही जानी जाती है। खर्च करके जो कुछ सञ्चय किया जाता है यथार्थ में वही धन है। अपने और अपने पोष्य वर्ग के आवश्यक खर्च के लिए जितने धन का प्रयोजन है उतने से अधिक उपार्जन करके जो लोग कुछ सञ्चय करते हैं, वे निःसंदेह समाज की उन्नति के हेतु-स्वरूप हैं। सञ्चय की मात्रा अत्यल्प ही क्यों न हो, किन्तु उनको स्वाधीन-चेता और आत्मनिर्भर बनाने के हेतु वही यथेष्ट है। पहले की अपेक्षा इन दिनों क्रेय वस्तुओं का मूल्य बहुत बढ़ गया है। यह सच है कि जो चीज़ पहले एक रुपये को मिलती थी वह अब दो रुपया देने से भी नहीं मिलती। और आमदनी में तादृश

वृद्धि हुई नहीं है। चीज़ मँहगी होने से रुपये का खर्च बढ़ गया है सही, किन्तु जिनकी जो आय है उसमें से यदि नित्य प्रयोजनीय वस्तुएँ हो खरीदी जायँ और फ़िजूल कामों में एक पैसा भी खर्च न किया जाय तो प्रत्येक गृहस्थ कुछ न कुछ संचय ज़रूर कर सकता है। जो लोग संचय नहीं कर सकते उन्हें समझना चाहिए कि ऐसा कोई कारण ज़रूर है जिससे प्रयोजन के अतिरिक्त भी खर्च हो जाता है। खोज करने से पता लग सकता है कि विलास-प्रियता की, या अपनी अवस्था से बढ़कर आराम की चीज़ें लेने या भोजनादि में नियमाधिक खर्च होने अथवा नामवरी के लिए अधिक खर्च करने के सबब कुछ बचने नहीं पाता। किंवा इस तरह का कोई और ही कारण संचय में व्याघात पहुँचा रहा है। इन असंचयशील अपव्ययी लोगों की संख्या बढ़ने से समाज दिन दिन दुर्बल और दरिद्र होता जाता है। यह सभी लोग चाहते हैं कि हमारी उन्नति हो और हम आराम से रहें किन्तु इसके लिए उन्नति करने का ज्ञान होना चाहिए। जो लोग अपनी अवस्था को उन्नत कर उसका उचित उपयोग करते हैं वे केवल अपना ही नहीं प्रत्युत सारे समाज का सिर उन्नत करते हैं। अतएव हर एक आदमी को मिहनती, अर्जनशील, संचयी और कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए।

अपचय और मितव्यय

बेहिसाब खर्च करने का नाम अपचय है। जिन्हें मितव्यय का ज्ञान नहीं है, जो हिसाब के साथ खर्च करना नहीं जानते, वे जरूर अपचय करते हैं। अपचय न करने से लोग सहज ही मितव्ययी हो सकते हैं। प्रयोजन से कम खर्च करना अथवा प्रयोजन से अधिक खर्च न होने देना ही मितव्ययिता है। अल्प भोजन करने से शरीर दुर्बल होता है, और अधिक आहार करने से रोग उत्पन्न होता है। अतएव जिस परिमाण से भोजन करने पर स्वास्थ्य ठीक बना रहे उसे मिताहार कहते हैं। मितभाषी लोग वृथा वाक्य-व्यय नहीं करते और इतना कम भी नहीं बोलते जो दूसरों को बुरा मालूम हो। जीवन से सम्बन्ध रखने वाले हर एक काम में जो मिताचारी हो सकते हैं वे अपने जीवन की सभी अवस्थाओं में सुखी रह सकते हैं। "मित" शब्द का ध्यान हर एक काम में रखना चाहिए। संसार में मितव्यय का अभाव होने ही से दुःख, दारिद्र्य, रोग, शोक और दुश्चिन्ता की दिन दिन वृद्धि होती है।

प्रकृति के तारतम्य से संसार में अपचय कुछ भी नहीं है। जब किसी द्रव्य से एक न एक का कुछ उपकार होता है तब प्रकृति के राज्य में कोई उसे अपचय कैसे कह सकता है? किन्तु अपने हानि-लाभ की बात सोच कर ही लोग अपचय और संचय की व्यवस्था करते हैं। प्रायः सभी लोग कहा करते हैं कि

"अपचय करना बेजा है" किन्तु कितने ही व्यक्ति अपचय और वदान्यता में कुछ फ़र्क़ नहीं मानते। जो लोग मामूली तौर पर कुछ सावधानी के साथ अन्दाज़ से खर्च करते हैं उन्हें व्यय से थोड़ा बहुत कुण्ठित होना ही पड़ता है। वे सहसा किसी विषय में खर्च न करके आगे-पीछे की बात सोच कर तथा उस विषय की उपयोगिता और प्रयोजन समझ कर खर्च करते हैं। इस तरह से चलने वालों को लोग अकसर कृपण या द्रव्यभक्त कहा करते हैं; और जो अपव्ययी हैं उन्हें दाता और उदार कह कर उनकी प्रशंसा करते हैं। हम लोगों को अपनी अपनी आवश्यकता के अनुसार खर्च करने के लिए ईश्वर ने जो कुछ धन दिया है, उसे हम लोग उपयुक्त कामों में न लगा कर मूर्ख की तरह अयुक्त रीति से उसका व्यवहार करते हैं।

यह तो अपचय का पहला प्रभेद हुआ। दूसरा यह कि जो लोग धन दान करने की प्रणाली से अनभिज्ञ हैं वे सावधान होकर धर्मकार्य में धन का उचित रीति से व्यवहार नहीं कर सकते। वे कभी कभी अकुण्ठित भाव से देवता के नाम पर हज़ारों या लाखों रुपये दे डालते हैं और दानवीर कहला कर अपना यश फैलाते हैं। किन्तु वास्तव में ऐसे लोग प्रशंसा के उपयुक्त पात्र नहीं हैं। हम लोग जो अनेक प्रकार से बात बात के लिए धन का अपचय करते हैं उसकी संख्या नहीं। यदि जीवन के व्यतीत काल के सारे अपचयों को एकत्र करके देखें तो हमारा शेष जीवन अनुताप और विषाद में ही बीतेगा।

बाल्यकाल की शिक्षा-प्राप्ति की अवस्था से लेकर युवावस्था तक हम लोग देवताओं के नाम पर वृथा दान देकर या और तरह से उसका अपव्यवहार करके जब बुढ़ापे में पाँव रखते हैं तब हमें धन की चिन्ता होने लगती है और तभी अपचय की एक एक बात हज़ार हज़ार यन्त्रणाओं को साथ लेकर सामने आ खड़ी होती है। अतएव अभी से ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे हम लोगों का जीवन इस प्रकार बुढ़ापे में अनुताप-दग्ध न हो। अन्यान्य शिक्षाओं के साथ ही साथ मितव्यय की शिक्षा भी अवश्य ग्रहण करनी चाहिए। मितव्ययी होना केवल अभ्यास से सम्बन्ध रखता है। जैसे और और गुण लोग अभ्यास के द्वारा सीखते हैं वैसे ही मितव्ययिता भी सीखनी चाहिए। जो बाल्यकाल से मितव्ययी होने का अभ्यास नहीं करते वे युवा होने पर, मितव्ययी होने की इच्छा रखते हुए भी, प्रायः मितव्ययी नहीं होते। उपदेश सुनने, पुस्तक पढ़ने और प्रमाण संग्रह करने ही से कोई मितव्ययी नहीं हो सकता। जैसे क़लम के बिना कोई लिख नहीं सकता वैसे ही बिना अभ्यास के कोई मितव्ययी नहीं हो सकता। मितव्ययिता के लिए अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। जैसे एक दिन के पढ़ने से कोई पण्डित नहीं हो सकता वैसे ही एक दिन के संचय से कोई मितव्ययी नहीं बन सकता। जैसे विद्या का नित्य अभ्यास करते करते विद्वत्ता प्राप्त होती है उसी तरह नित्य प्रति मितव्यय का अभ्यास करने से मितव्ययिता उपलब्ध होती है। पठनावस्था में बालकों को

लालच बहुत रहता है। लालच के वश होकर कितने ही बालक कुछ प्रयोजन रहने या न रहने पर भी मामूली से कुछ अधिक खर्च किया करते हैं। दो एक पैसे के खर्च को वे कुछ समझते ही नहीं, किन्तु वे यदि उन दो-एक पैसे के साधारण खर्च को जोड़ेंगे तो छः सात वर्ष में प्रायः ४०) या ५०) रुपये से ज़्यादा ही खर्च देखने में आवेगा। ये ५०) तो उनके मुफ़्त खर्च हुए ही, किन्तु इसके साथ ही साथ वे अमितव्ययी होने में भी अभ्यस्त होगये। मान लो, यदि वे प्रति दिन के खेल-तमाशे या अन्य अनावश्यक कामों में खर्च न करके उन पैसों को जमा करते जाते तो छः सात वर्ष के अभ्यास से मितव्ययी बनते और ४०) ५०) रुपये मितव्यय के फल-स्वरूप उनके पास मौजूद होते। बाल्यकाल के उस संचित धन के द्वारा वे यदि, किसी आवश्यक समय पर, अपने माता-पिता को सहायता पहुँचा सकते तो उन्हें कितना आनन्द होता। जो लड़के बचपन से ही इस तरह सञ्चयशील होना सीखते हैं और अपने माता-पिता तथा अन्यान्य गुरुजनों के निकट प्रशंसित हो कर उत्तरोत्तर उत्साह पाते हैं वे अपनी जवानी के दिनों में अवश्य ही सहिष्णु, आत्मसंयमी, दूरदर्शी और धनवान् होते हैं। छात्रावस्था में अनेक प्रकार से अपव्यय होता है—यथा पुस्तकों पर चिपकाने के जलचित्र, चीनी की कड़ी मिठाई, लेमनेड, बर्फ़ और अनेक प्रकार के अस्वास्थ्यकारी मुखरोचक खाद्य तथा नयनों के लिए तृप्तिकारक खिलौने, आदि कितनी ही ऐसी चीज़ें हैं, जिन पर लड़कों का चित्त मचल

जाता है और उन चीज़ों को लेने के लिए वे पैसे फेंकते हैं। इस तरह न मालूम उनके कितने पैसे रोज़ रोज़ बरबाद होते हैं। कितने हो लोग थोड़ी देर के लिए जब रेल की सवारी करते हैं तब सोडा, लेमनेड और चाय आदि में कितने ही पैसे ख़र्च कर डालते हैं। यदि वे कुछ देर के लिए धैर्य धारण कर तृष्णा को रोक रक्खें और जो चीज़ रेलगाड़ी में बैठ कर ख़रीदते हैं वही, जहाँ उन्हें गाड़ी से उतरना है वहाँ, बाज़ार में जाकर ख़रीद करें तो सस्ते दाम पर अच्छी चीज़ मिलेगी और कुछ पैसे भी बच जायँगे। इस प्रकार ख़र्च पर ध्यान रखने से अपचय रुक सकता है।

धन अनेक प्रकार से बरबाद होता है। जिस चीज़ की ज़रूरत नहीं है उसके लिए ख़र्च करना रुपये को वृथा बरबाद करना है। जो चीज़ आवश्यक जान कर ली गई उसका कुछ अंश नष्ट हो गया तो वह भी अपचय हुआ। जिस वस्तु का प्रयोजन तो है नहीं पर सस्ती मिलने के कारण उसे ख़रीद कर घर में रख दिया, तो इस ख़र्च को भी हम फ़िज़ूल ही कहेंगे। जिस चीज़ की बड़ी आवश्यकता है, वह कुछ आयास करने पर जितने को मिलती उससे अधिक दाम देकर लेना अपव्यय करना है। इस तरह के कितने ही अपव्यय गृहस्थों के घरों में अक्सर होते रहते हैं। यही अपव्यय उनकी दरिद्रता के कारण हो कर उन्हें अभावजनित अनेक कष्ट देते हैं। पूँजी न रहने के कारण कुली-मजदूरों को कुछ अधिक ख़र्च करने के लिए बाध्य होना

पड़ता है। मान लो, एक मज़दूर को रोज़ एक सेर चावल की आवश्यकता है। उस एक सेर चावल के लिए शायद उसे दो आना रोज़ ख़र्च करना पड़ता है। मंडी में पौने पाँच रुपये मन चावल बिकता है किन्तु कोई आढ़तिया एक मन से कम नहीं बेचता। उस बेचारे मज़दूर के पास एक साथ ४।।।) नहीं, इससे लाचार होकर उसे छोटे दूकानदारों से ख़राब सौदा लेना पड़ता है और प्रत्येक वस्तु के लिए उसे कुछ न कुछ अधिक दाम ज़रूर देना पड़ता है। इस प्रकार उसका प्रति वर्ष कम से कम दस रुपया अधिक ख़र्च हो जाता है। वह मज़दूरी करके अगर ।) रोज़ कमाता है तो जिस तरह बन पड़े दो पैसे उसे रोज़ बचाने चाहिएँ। यही दो पैसे रोज़ रोज़ जमा हो कर साल में ११।=)॥ ग्यारह रुपये साढ़े छः आने होंगे। एक ही साल में उसके लिए यह अच्छी पूँजी हो गई। अब वह चाहे तो इन रुपयों से आढ़तवाले की दूकान से सौदा लेकर प्रतिवर्ष दस रुपये के अपव्यय से बच सकता है। अपव्यय से जहाँ छुट्टी मिली तहाँ आय का मार्ग और संचय का द्वार खुल जाता है। इस तरह चाहें तो मजदूर भी धीरे धीरे संचय कर सकते हैं। कितने ही सम्भ्रान्त गृहस्थों की अवस्था क्या इन मज़दूरों की सी नहीं है? मज़दूर लोग जो कमाते हैं उसे ख़र्च कर डालते हैं। उनका सारा जीवन मज़दूरी करते ही बीतता है। इसी तरह कितने ही गृहस्थ जितनी आमदनी उतना ही ख़र्च करके चिर-दरिद्र, अभावग्रस्त और ऋणी बने रहते हैं। आमदनी के बराबर ही ख़र्च करने

को मितव्यय नहीं कह सकते, बल्कि आमद और खर्च बराबर होना एक प्रकार का अपव्यय है। जो लोग "बासी बचे न कुत्ता खाय" इस नीति का अनुसरण करके हमेशा तङ्गदस्त बने रहते हैं, उनके सामने दारिद्र्यरूपी राक्षस मानो सर्वदा मुँह फैलाये खड़ा रहता है। अपव्ययी लोगों को समय और अवस्था का दासत्व स्वीकार करना पड़ता है। वे बराबर दुर्बलता और असमर्थता दिखलाया करते हैं। वे अपनी मर्यादा खोने के साथ ही साथ दूसरों की मर्यादा की भी रक्षा नहीं कर सकते। उनके लिए आत्मनिर्भर होना तो बिलकुल असम्भव है। पुरुषोचित गुणों से और धर्म से वञ्चित होने के लिए एक अमितव्ययिता ही यथेष्ट है। अमितव्ययी लोग दरिद्र न हो कर भी अपने को दरिद्र बनाये रहते हैं। सञ्चय और अपव्यय के गुण-दोष जान कर भी जो उन पर ध्यान नहीं देता, वह अपने हाथ से मानो अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारता है। तुम्हारी क्या इच्छा है? क्या तुम दरिद्र हो कर रहना पसन्द करोगे? क्या दूसरे का मुँह देख कर ही जीवन-निर्वाह करोगे? क्या सबके आगे हाथ पसार कर नीचे सिर किये रहने ही में तुम्हें सुख मिलेगा? अथवा स्वाधीन-चेता होकर अन्न धन से भरपूर होकर रहना चाहते हो? दोनों ही बातें तुम्हारी इच्छा के अधीन हैं। दोनों ही तुम्हारे अभ्यास के अधीन हैं। अपव्यय का अभ्यास करके दरिद्र बनो, चाहे सञ्चयशील हो कर लक्ष्मी के कृपापात्र बनो। जब तक तुम मितव्ययी न होओगे तब तक तुम्हें कोई विश्वास के योग्य

न समझेगा। क्योंकि जो आय से अधिक व्यय करके अभावपूर्ति करते हैं उन्हें प्रायः असत् उपाय का अवलम्बन करना पड़ता है।

ऋण

" दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यो गृहे।
अनृणी च प्रवासी च स वारिचर मोदते॥

महाभारत

अर्थात् सुखी वही है जो एक शाम साग खाकर भी अनृणी—किसी का ऋणी नहीं—है और अपने घर में है ।

इस दरिद्राक्रान्त देश में ऋण किसे कहते हैं, यह किसी को बताना न होगा । और ऋण करने से जीवन कैसा भाराक्रान्त हो जाता है, यह भी बहुतों को मालूम है। जिनकी आय बहुत ही कम है, ऐसे लोग यथासाध्य मितव्यय करने पर भी कभी कभी लाचारी से ऋण लेते हैं। कितने ही लोग देशाचार के अनुरोध से, कितने ही लोकलज्जा के भय से, कितने ही अपने भाई-बन्धुओं के बीच प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए और कितने ही केवल "वाहवाही" पाने के लिए ही क़र्ज़ लेकर ख़र्च करते हैं। कोई कोई अनिश्चित आमदनी की आशा पर ऋण लेकर ख़र्च करते हैं। जो लोग इस तरह ऋणजाल में फँस कर अपनी सारी ज़िन्दगी को दुःख में बिताते हैं उनके लिए किसी धर्म का अनुष्ठान या सामाजिक उन्नतिसाधन कठिन हो जाता

है। ऋणी लोगों को आनन्द के समय में भी आनन्द नहीं मिलता। उत्सव उनके निकट विषाद का रूप धारण करता है। ऋण-ग्रस्त लोग कन्या के विवाह और माता-पिता के क्रिया-कर्म को एक प्रकार का संकट मानते हैं। बे हिसाब ख़र्च करना, कुछ जमा न करना, भविष्य के परिणाम पर ध्यान न देना, धन की योग्यता न रहते हुए भी आराम से रहने की लालसा, लोगों के बीच प्रशंसा पाने की उत्कट वासना, असहिष्णुता, सामाजिक कुरीति, शास्त्र की कठोर आज्ञा का पालन, और लोकलज्जा का भय अर्थात् हृदय की दुर्बलता—ये ही सब ऋण के प्रधान कारण हैं। जो लोग ऋण लेते हैं उनका सिर महाजन के निकट झुका ही रहता है और अपने महाजन को ख़ुश रखने के लिए उन्हें बड़ी बड़ी ख़ुशामदें करनी पड़ती हैं और सर्वदा उसके निकट अनुगृहीत की तरह व्यवहार करना पड़ता है। ऋण चुका देने पर भी महाजन के निकट कृतज्ञता के पाश में चिरबद्ध होकर रहना पड़ता है। इसी से विशेष उपकृत मनुष्य भली भाँति अपनी कृतज्ञता दिखाने के लिए उपकारी व्यक्ति से कहा करते हैं "आप के निकट मैं चिरऋणी हूँ"। अव्यवसायी लोगों का जब ऋणी पर इतना बड़ा प्रभाव पड़ता है तब जो लोग केवल व्याज लेने ही के लिए ऋण देते हैं और यही जिनकी जीविका है उन का ऋणी लोगों पर कितना प्रभाव न पड़ता होगा। अपने क़र्ज़दारों पर वे कैसा कठोर बर्ताव करते होंगे, यह अनुभव के द्वारा जाना जा सकता है। व्यौहरे लोग ऋण देने के वक़्त तो

बड़ी मुलायमियत दिखलाते हैं, किन्तु ठीक वक़् पर ब्याज़ वसूल न होने पर जो सख़्ती दिखलाते हैं वह प्रायः किसी से छिपी नहीं है।

कोई एक उद्यमशील युवक अपने पिता का देहान्त होने पर ख़ुद कोशिश करके किसी सरकारी दफ़्र में १५) मासिक वेतन पर नियुक्त हुए। उनका व्याह पहले ही हो चुका था। मालूम होता है, गृहस्थाश्रम के झंझट में पड़कर ही वे उच्चाभिलाषी, उद्योगशील युवक अपनी विशेष उन्नति का सुयोग न पाकर नौकरी करने के लिए वाध्य हुए, या नौकरी करने का कुछ और ही कारण होगा। युवक का कार्य्य-कौशल और परिश्रम देख कर मालिक ने १५) से उनका वेतन २०) कर दिया। छः वर्ष के बाद ५) और बढ़ा दिये। जब उन्हें बीस मिलने लगे तभी वे हर महीने दो रुपये जमा करने लगे, जिससे छः वर्ष में उन्होंने १४४) जमा कर लिये। जब २५) पाने लगे तब ५) प्रतिमास संचय करके चार वर्ष के भीतर २४०) जमा किये। गरज़ यह कि दस वर्ष में उन्होंने ३८४) रुपये एकत्र कर लिये। इसी समय उनकी प्रथम सन्तान कमला के ब्याह की बात स्थिर हुई। उन्होंने चाहा कि लड़की के ब्याह में जहाँ तक हो सके कम ख़र्च किया जाय। कितनों ही ने उन्हें सलाह दी थी कि पहली लड़की की शादी है, इसमें दिल खोल कर ख़र्च करना चाहिए, किन्तु रमेश बाबू ने अपनी अवस्था का स्मरण कर उन लोगों की बात पर ध्यान न दिया। ब्याह में यद्यपि उन्होंने विशेष कुछ आडम्बर न किया

तथापि उचित कर्तव्य की रक्षा में उनका संचित धन ३८४) तो ख़र्च हुआ ही, इसके सिवा दो सौ रुपये महाजन से उन्हें और लेने पड़े। इसके अलावा लगभग सौ रुपये की चीज़ें बाज़ार से उधार लेकर उन्होंने दुलहे को दहेज़ में दीं। रमेश बाबू ने अपने पसीने की कमाई से थोड़ा थोड़ा बचा कर जो दस वर्ष में संचित कर रक्खा था उसे उन्होंने पानी की तरह बहा दिया और तीन सौ रुपये ऋण लेकर ख़र्च किये, तो भी कमला की सास और ननद ने गहनों को दोष दिया और दहेज़ की चीज़ें देख कर नाक-भौं सिकोड़ी। रमेश बाबू को अपनी हैसियत से ज़्यादा ख़र्च करने पर भी जामाता के माता-पिता और किसी किसी आत्मीय व्यक्ति के वाक्यबाण का लक्ष्य होना ही पड़ा। तीन महीने तक वे महाजन को कुछ न दे सके। इतने दिन उन्हें बाज़ार की उधार चीज़ों के दाम चुकाने में लगे। चौथे महीने में बड़ी कठिनता से उन्होंने महाजन को एक महीने का सूद दिया। पाँचवें महीने उन्हें देवीपूजा के उपलक्ष्य में लड़की की ससुराल में सौग़ात भेजनी थी। यह पहला ही अवसर था। सौग़ात भेजनी ही होगी, यह सोच कर रमेश बाबू व्याकुल हुए। आख़िर बड़ी कठिनाई से उन्होंने एक पड़ोसी से कम ब्याज पर ५०) रुपये कर्ज़ लेकर सौग़ात की चीज़ें भेजीं। किन्तु उस पर भी लड़की की ससुराल वालों ने उनकी निन्दा ही की। दो तीन महीने का ब्याज रुक जाने के कारण महाजन का असल और सूद मिला कर २३८) हो गया। ऋण को दिन पर दिन बढ़ते देख

कर रमेश बाबू ने घर का ख़र्च कम करके ऋण चुकाने की व्यवस्था की। उनके दो बेटियाँ और एक बेटा था। इन के लिए जो ख़र्च होता था उसे भी उन्होंने घटाया। इस प्रकार वे साधारण भोजन और वस्त्र से किसी तरह निर्वाह करके हर महीने महाजन का कुछ कुछ क़र्ज़ पटाने लगे किन्तु पुष्ट भोजन के अभाव और दिन-रात की चिन्ता से वे ऋण का कुछ अंश चुकाते न चुकाते ही बीमार हो गये। लड़के जब कभी कभी बीमार हो जाया करते थे तब उसमें कुछ अधिक व्यय न होता था। इस समय ख़ुद रमेश बाबू के रोगाक्रान्त होने के कारण पानी की तरह रुपया ख़र्च होने लगा। बीमार होने पर पहले महीने की तनख़्वाह तो उन्हें पूरी मिली, किन्तु दूसरे महीने से आधी तनख़्वाह मिलने लगी। चार पाँच महीने तक वे बराबर बीमार रहे, उसके बाद पूर्णरूप से बलवान् न होने पर भी काम करने लगे। किन्तु बीमारी की हालत में उन्हें और भी लोगों से कुछ क़र्ज़ तथा उधार लेना पड़ा। उनका वेतन क्रमशः बढ़ने लगा और उन्होंने बड़े हिसाब से घर का ख़र्च चला कर धीरे धीरे महाजन का कुल ऋण चुका दिया। किन्तु दो एक वर्ष में यह ऋण अदा न हुआ। बड़ी सावधानी से गृहस्थी की गुज़र करने पर तब कहीं नौ दस वर्ष में जाकर क़र्ज़ अदा हुआ। किन्तु इस अरसे में उनके और दो तीन बच्चों ने जन्म लेकर घर का ख़र्च बढ़ा दिया। अब उनकी दूसरी लड़की के ब्याहने का समय आया। उस समय वे ७५) पाते थे, पर इस आय-वृद्धि के साथ ही साथ घर का ख़र्च भी बहुत बढ़ गया था।

लड़कों के पढ़ाने-लिखाने में, आहार-व्यवहार में, कपड़े आदि बनवाने में, औषधादि सेवन में और पर्व-उत्सव में पहले की अपेक्षा अब ख़र्च ज़्यादा होने लगा। ऋण परिशोध किये अभी कुछ ही दिन हुए हैं, इससे कुछ जमा भी नहीं हो सका। इसी समय दूसरी कन्या के विवाह का संकट उनके सिर पर आया। "जेठी लड़की का ब्याह तो थोड़े ही ख़र्च में रमेश बाबू ने कर लिया था; किन्तु इस लड़की के ब्याह में वैसा न होने देंगे। विमला का ब्याह बी० ए० पास वर के साथ हो।" रमेश बाबू को आत्मीय तथा अड़ोस पड़ोस के सभी लोगों के मुँह से जब तब यही बात सुनाई देने लगी। रमेश बाबू की हालत कैसी क्या है, उनकी आर्थिक दशा कैसी है, इस पर किसी का ध्यान नहीं। परन्तु रमेश बाबू अपनी वर्तमान अवस्था को अच्छी तरह देख रहे हैं और साथ ही साथ यह भी सोच रहे हैं कि कितना ख़र्च करने से समाज में हँसी न होगी और मान-मर्यादा की रक्षा हो सकेगी। आख़िर उन्होंने कुछ तो रिश्तेदारों और पड़ोसियों को प्रसन्न करने के लिए और कुछ अपने मनोविनोदार्थ भावी आय-वृद्धि के भरोसे ख़ूब सज धज के साथ दूसरी लड़की का ब्याह किया। भविष्य का कुछ सोच न करके रुपया ख़र्च करने में कोई कसर न की। वर भी लड़की के अनुकूल मिला, इससे ख़ुश हो कर रमेश अपनी अवस्था की बात भूल गये। इसीसे उन्होंने ऋण का भारी बोझ अपने सिर चढ़ा लिया। अब की बार ऋण चुकाने में रमेश को बड़ी बड़ी दिक़्क़तें झेलनी पड़ीं। अभी महाजन

का देना कौड़ी पाई से अदा भी न हुआ था कि उनकी माता का देहान्त हो गया। आफ़त पर आफ़त आई। बेचारे रमेश जो माथे पर हाथ रख कर बैठे सो कितनी ही देर तक बैठे ही रहे। अड़ोस पड़ोस के लोगों ने उनको आश्वासन देकर सहानुभूति प्रकट की। सब लोग यही समझते थे कि रमेश बाबू को अपनी माता में बड़ी भक्ति थी इसीसे उनके देहान्त होने का इन्हें इतना सोच हो रहा है, किन्तु रमेश बाबू को जो सोच था सो उनका हृदय ही जानता था। इधर पुरोहित, पण्डित और जो उनके रिश्तेदार थे, सभी ने रमेश को माता के श्राद्ध में अधिक ख़र्च करने की सलाह दी। रमेश बाबू को बतलाया गया कि शास्त्र में श्राद्ध की सबसे उत्कृष्ट विधि अमुक मानी गई है, अमुक विधि से श्राद्ध करने पर पितर विशेष रूप से तृप्त होते हैं और उन्हें अक्षय स्वर्गवास प्राप्त होता है। एक पण्डित ने गरुड़पुराण सुनाना आरम्भ कर दिया। बन्धुवर्ग कुल-मर्यादा की प्रशंसा करके विशेष रीति से श्राद्ध करने के हेतु रमेश को उत्तेजित करने लगे। किसी ने रमेश के उदार हृदय की, किसी ने उनके उच्चपद की, और किसी ने उनकी दान-शक्ति की बारी बारी से प्रशंसा की। किन्तु खेद की बात है कि एक व्यक्ति ने भी उनकी आर्थिक अवस्था या उनके भविष्य परिणाम की बात पर विचार न किया। किसी ने इतना भी न कहा कि "अपनी अवस्था देख कर ख़र्च करो"।

कितने ही लोगों ने तो दानसागर* (कर्म विशेष) श्राद्ध करने की व्यवस्था दी । इस तरह की सलाह देनेवाले यदि दो-चार हज़ार रुपया पहले उनके हाथ पर रख देते, और फिर दान-सागर श्राद्ध करने की व्यवस्था देते तो वे सच्चे मित्र का काम करते । किन्तु ऐसे मित्र तो संसार में आकाशकुसुम हो रहे हैं । ऋण-भार से पीड़ित रमेश ने इच्छा न रहने पर भी कुछ तो समाज के भय से, और कुछ माता के परलोकगत आत्मा की शान्ति एवं तृप्ति की आशा से अपने क़र्ज़ के भार को और भी बढ़ा लिया । दो एक वर्ष के बाद उनकी पेंशन हो गई, जिससे आमदनी आधी रह गई । रमेश बाबू अपनी आय कम और ऋण की वृद्धि दिन पर दिन अधिक होते देख मारे सोच के सूख कर काँटा हो गये । उनका स्वास्थ्य भी धीरे धीरे बिगड़ चला । प्रौढ़ अवस्था में ही बुढ़ापे के सभी लक्षण दिखाई देने लगे । थोड़े ही दिनों में रमेशचन्द्र अपने बालकों के सिर पर ऋण का बोझ रख कर और सम्पत्तिहीन असहाय परिवार को दुःख-सागर में डुबो कर संसार से चल दिये ।

---

* बङ्गाल में श्राद्ध के तीन प्रभेद हैं। सबसे उत्कृष्ट दानसागर है जिस में षोडश दान की प्रत्येक वस्तु सोलह गुना दान की जाती है । इसके नीचे वृषोत्सर्ग की विधि है । और नितान्तीय पक्ष में लोग तिलकाञ्चन श्राद्ध करते हैं । इसे षोडशी भी कहते हैं ।

जो लोग अपनी अवस्था के अनुसार खर्च की व्यवस्था करना नहीं जानते अथवा व्यवस्था करके भी तदनुसार चलने का जिन्हें साहस नहीं है उनकी श्रीवृद्धि कदापि नहीं होती। ऐसा कौन मनुष्य है जो समाज में रह कर अपनी मर्यादा की रक्षा करना नहीं चाहता ? किन्तु किस ढँग से चलने पर मर्यादा की रक्षा हो सकती है, इसे सब नहीं जानते। यदि लोग अपनी अवस्था पर ध्यान रख कर चलना जानते तो भारतवर्ष में दरिद्रों की इतनी संख्या नहीं बढ़ती। कितने सामान्य अवस्था वाले लोग अपने नाम के लिए माँ-बाप के श्राद्ध में, लड़के-लड़कियों की शादी में और सामयिक पर्व के उत्सव में धनाढ्यों की देखादेखी औक़ात से ज़ियादह खर्च कर के कोरे बाबाजी हो जाते हैं। कुछ दिन के लिए उनका यश ख़ूब ही फैल जाता है, महल्ले भर में उन्हीं के नाम की तूती बोलती है, वृद्ध लोग हाथ उठा कर रोज़ उन्हें आशीर्वाद देते हैं; भिक्षुक, फ़कीरों की जयध्वनि से उनका हृदय फूल उठता है और उनका ऐसा अँधाधुन्ध खर्च देख कर हाँ में हाँ मिलाने वाले कितने ही मित्रवर्ग भी इकट्ठा हो जाते हैं। किन्तु जब उनके हाथ से रही सही सारी पूँजी निकल जाती है तब उन्हें भविष्य का भयङ्कर परिणाम सूझने लगता है। जिधर देखते हैं उधर अंधकार ही अंधकार सूझता है। एक भी अवलम्ब नज़र नहीं आता। जो मित्र छाया की तरह बराबर साथी बने रहते थे वे न मालूम कहाँ जा छिपते हैं। एक भी भिखमंगा अब उनके द्वार पर

दिखाई नहीं देता। जो वृद्ध रोज़ आशीर्वाद देने आते थे वे अब उनके दरवाज़े की तरफ़ भूल कर भी नहीं आते। महल्ले वाले जो पहले उनकी तारीफ़ करते थे वे अब एक स्वर से यही कहते हैं कि "अमुक व्यक्ति था तो होनहार, पर बुरे लोगों की संगति में पड़ कर बरबाद हो गया। देखते ही देखते उसकी हालत क्या से क्या हो गई। कौन जानता था कि वह ऐसा आवारा होगा। बाप-दादे की सारी कमाई को फूँक कर वह अब एक एक दाने को तरस रहा है।" अब महल्ले में इस प्रकार उनकी बड़ाई होने लगी। जो लोग पहले उनको बैठाने के लिए अपनी आँखों ही को आसन बनाये रहते थे वे अब उनकी ओर दृक्पात भी नहीं करते। सारांश यह कि ग़रीबी की हालत में किसी को कोई नहीं पूछता, यहाँ तक कि अपना जीवन भी भार सा जान पड़ता है। मान-महत्त्व की सभी बातें सपने की सम्पत्ति हो जाती हैं। क्षुधा देवी जब अपना प्रभाव दिखलाती है तब मान, महत्त्व, मर्यादा सभी अन्तर्धान हो जाते हैं। ख़ाली हाथ कोई अपनी मर्यादा को अधिक दिनों तक क़ायम नहीं रख सकता। कितनी ही बार देखा गया है कि जो लोग अपव्यय के द्वारा अपनी प्रतिष्ठा खो देते हैं वे अनेक चेष्टा करने पर भी फिर प्रतिष्ठित नहीं होते। हालत बदलने के साथ ही साथ उनका मानसिक और दैहिक परिवर्तन भी हो जाता है। जो एक दिन खुले हाथ ख़र्च करके मर्यादासागर बने थे; स्वजन, परिजन और बन्धु-बान्धवों से घिरे रहते थे; ख़ुशामदी लोगों की बातें सुन कर

मारे ख़ुशी के फूले अङ्ग न समाते थे. वही आज द्रव्यहीन होने पर चुपचाप अकेले बैठे हैं; भोजन न मिलने के कारण उनका मुँह सूख गया है। वे ऋण के बोझ से दबते जा रहे हैं। चिन्ता के मारे उनकी आँखों में नींद नहीं है। जो पहले ज़रा सा भी कष्ट नहीं सह सकते थे वे मानो इस समय कष्ट का पहाड़ ही सिर पर रक्खे हुए हैं। सबसे अधिक मर्मान्तिक पीड़ा तो उन्हें तब होती है जब छोटे मिज़ाज का खोटा आदमी उन्हें देख कर हँसता है या दो-एक जली कटी बातें कह कर ताना मारता है। जो लोग पहले इनका आदर देवता की तरह करते थे उनसे अपमानित होने की अपेक्षा धनहीन व्यक्ति मर जाना कहीं बढ़ कर अच्छा समझते हैं। ऐसे कितने ही अदूरदर्शी अपव्ययी व्यक्ति धनहीन होने पर मारे ग्लानि के, कुल-कलङ्किनी अबला की तरह, आत्महत्या के सदृश महापाप करने में भी कुण्ठित नहीं होते। ज़िन्दगी का कुछ भरोसा नहीं, क्या जाने कब कैसा समय आ जाय, इसी लिए थोड़ा बहुत सञ्चय करते जाना चाहिए। जीवन का अन्त एक न एक दिन तो ज़रूर ही होगा, उसके लिए आत्म-घात करना बड़ी मूर्खता है। कितने ही लोग धनहीन होने पर उद्योग और साहस के द्वारा फिर धनवान् हो गये हैं। इसलिए हर हालत में लोगों को चाहिए कि जीवन-यात्रा के लिए कुछ न कुछ धन का संग्रह अवश्य करें। संचय करने के समय जो ला-परवाही से ख़र्च करते हैं और कुछ जमा नहीं करते उन्हें विपत्ति के समय रोने के सिवा और कुछ हाथ नहीं आता। मनुष्यों को

जीवन जैसा प्रिय है वैसे ही जीवन को धन प्रिय है। जो लोग जीवन से प्यार रखते हैं उन्हें धन की रक्षा पर अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। संसार में तो प्रायः ऐसा कोई जीव नहीं है जिसे अपना जी प्यारा न हो, फिर मनुष्य तो सभी जीवों में श्रेष्ठ गिने जाते हैं। ये जीवनाभिलाषी होकर यदि धन की अवहेला करें, तो समझना चाहिए कि ये अपने जीवन के वैरी हो रहे हैं। जो मनुष्य जीवन के प्यारे धन को नष्ट करेगा वह अपने जीवन को कब तक सुखी रख सकेगा? मतलब यह कि जो जीवन से सम्बन्ध रखना चाहे उसके लिए धन के साथ भी सम्बन्ध रखना नितान्त आवश्यक है। मध्यम अवस्था वाले कितने ही धनवान् और वेतनोपजीवी लोग, समाज के प्रधान व्यक्तियों का अनुकरण करके, अपनी हैसियत से ज़्यादा ख़र्च कर डालते हैं और कुछ ही दिनों में ऋणग्रस्त होकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं। जो लोग विशेष धनसम्पन्न व्यक्ति का अनुकरण करते हैं वे जीवन के भविष्य काल को भी अपनी दरिद्रता से वाधित कर ऋद्धि का पथ रोकते हैं। इसी देखादेखी में पड़ कर कितने ही सामान्य अवस्था वाले लोग दरिद्री होकर दुख से समय बिताते हैं।

नक़द और उधार

अपव्यय के जो कारण पहले बतलाये जा चुके हैं उनके सिवा अपव्यय का एक और भी कारण है जो यहाँ लिखा जाता है।

"कोई चीज़ उधार लेना भी अपव्यय है।" उधार लेने से केवल अपव्यय ही नहीं होता बल्कि मान और महत्त्व भी नहीं रहने पाता। किसी दूकान से तुम कोई चीज़ क्यों न उधार लो, कुछ दाम ज़्यादा देना ही पड़ेगा। ऐसे कितने ही दूकानदार हैं जो पहले ही कह देते हैं कि "उधार लोगे तो फ़ी रुपये आध आना या एक आना बट्टा देना होगा" अर्थात् जो चीज़ नक़द सोलह आने को मिलेगी वह उधार लेने से साढ़े सोलह आने को, अथवा सत्रह आने को मिलेगी। बट्टा के अलावा दूकानदार लोग उधारी चीज़ों पर ज़्यादा दाम भी चढ़ा देते हैं अर्थात् जो चीज़ नक़द दामों में वे दस को बेचेंगे उसी के दाम उधार लेने वालों से बारह तेरह रुपये से कम न लिये जायँगे और उस पर भी बट्टा लेंगे। एक रुपये का उधार सौदा लेने में तुम्हें कम से कम दो आना अधिक ज़रूर देना होगा। इस हिसाब से जितने रुपये का तुम उधार सौदा लोगे उसका अष्टमांश तुम्हें अपव्यय करना होगा। दस रुपये के सौदे में एक रुपया चार आना तुम्हें उधार लेने का दण्ड देना पड़ेगा। इसी तरह सौ रुपये के उधार सौदे के लिए तुम्हें एक सौ साढ़े बारह रुपया देना होगा। यदि तुम उधार न लेकर नक़द दाम देकर लेते तो फ़ी रुपये एक आना दस्तूरी मिनहा करके ६३।।।) में तुम्हें सौ रुपये का सौदा मिल जाता। उधार लेने के कारण सौ रुपये का सौदा लेने में १८।।।) दण्ड देना पड़ा। इतने रुपये का चावल दुर्भिक्ष के समय में भी दो मन से कम न मिलेगा। कितने ही क्लर्क जब महीने भर काम

करते हैं तब उन्हें १५) मिलते हैं, उसकी अपेक्षा भी यह अधिक हुआ। जो नौकर तुम से ४॥) मासिक पाता है, उसकी चार महीने की तनख़्वाह हुई। किन्तु जो तुम से डेढ़ रुपया माहवारी पाता है उसके लिए पूरे साल भर की तनख़्वाह हुई। भारतवर्ष के अशिक्षितों की तो कोई बात ही नहीं, कितने ही सुशिक्षित व्यक्ति भी उधार सौदा लेना ही पसन्द करते हैं। कुछ दिन के लिए मानो वह चीज़ उन्हें मुफ़्त ही में मिल जाती है। जब दूकानदार कुछ दिन के बाद एक के दो गिनाता है तब उन्हें अपनी बेवकूफ़ी पर पश्चात्ताप होता है। इतने पर भी उधार लेने की आदत नहीं छूटती। कितने ही लोग नक़द रुपया रहते भी उधार लेते हैं और जान बूझ कर अपव्यय के दोषी बनते हैं। इस प्रकार कितने ही ज़मींदार, कितने ही वेतनोपजीवी और कितने ही कृषिजीवी लोग उधार सौदा लेकर अपना कितना धन नष्ट करते हैं, इसकी संख्या नहीं। ज़िन्दगी के अखीर में यदि मध्य स्थिति वाले लोग हिसाब करके देखें तो सारी ज़िन्दगी में उन्होंने उधार सौदा लेकर जितना अपव्यय किया है उसकी तादाद चार पाँच हज़ार रुपये से कम न होगी। यदि वे उधार न लेकर इतना रुपया जमा करते जाते तो मरणकाल में इतने रुपये अपने परिवार को देकर भविष्य के लिए उनका बहुत कुछ उपकार कर जाते। कितने ही दूकानदार तो दूसरे या तीसरे महीने से ही उधारी चीज़ों के दाम पर बारह रुपये से लेकर बीस रुपये तक सैकड़े पीछे सालाना सूद लगाते हैं। इससे उधारी चीज़ों का दाम साल ही

दो साल में असली क़ीमत से प्रायः दुगुना बढ़ जाता है और यों ही दिन दिन अधिक बढ़ता जाता है।

नक़द दाम देने पर चीज़ अच्छी मिलती है। क्योंकि दस पाँच दूकानों में जहाँ पसन्द के लायक़ ठीक दाम पर चीज़ देख पड़ती है वहीं ख़रीदार ख़रीद सकता है। इसमें किसी दूकानदार के साथ ख़रीदार का बाध्य-बाधकता भाव नहीं रहता। ख़रीदार की ख़ुशी है, नक़द दाम देकर चाहे जिस दूकान से चीज़ ख़रीद ले। जो लोग नक़द सौदा ख़रीदते हैं उनका सम्मान प्रत्येक सौदागर करता है। किन्तु जो लोग उधार सौदा लेते हैं उन्हें सौदा लेने के लिए ख़ास कर एक दूकानदार का पाबन्द होना पड़ता है। यदि वे किसी दूसरी दूकान में उधार लें तो पहला उधार देनेवाला उनसे बिगाड़ कर तुरन्त अपने ऋण के लिए सख़्त तक़ाज़ा करने लग जाता है। दूसरी बात यह कि वे उधारी चीज़ों का बहुत मोल-तोल भी नहीं कर सकते। दूकानदार ने जितना दाम कह दिया उतने ही दाम पर उन्हें हार कर सौदा लेना पड़ता है।

नक़द और उधार सौदा लेने वाले दो व्यक्ति एक ही साथ यदि किसी दूकान में जायँ तो देखोगे कि दूकानदार पहले नक़द सौदा लेनेवाले के साथ प्रसन्नता से बातें करके उसकी पसन्द लायक़ चीज़ दिखलावेगा। दर-दाम भी मुनासिब कहेगा। जब तक नक़द सौदा लेने वाला उसकी दूकान में ठहरेगा तब तक वह उसी के साथ बात चीत करेगा और उसके

प्रश्नों का उत्तर देगा। किन्तु उधार लेने वाले के दस बार पूछने पर किसी प्रश्न का जवाब एक बार अवहेला के साथ देगा। इसका कारण यह है कि उधार लेने वाले अपमानित होने पर भी दूसरी दूकान में सौदा लेने नहीं जा सकते। उस दूकानदार को नक़द सौदा बेच कर जब अवकाश मिलेगा तभी उधार वाले की बात पर ध्यान देगा। तब तक उधार लेने वालों को भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

नक़द ख़रीदने वाले स्वतन्त्र होते हैं। किसी दूकानदार का सामर्थ्य नहीं कि उनकी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप कर सके। नक़द सौदा लेने वाले की स्थिति-सम्पत्ति की बात कोई नहीं पूछता : उन पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं करता। बल्कि वे जिस दूकान में जाते हैं वहीं अपनी सच्चाई दिखा कर दूकानदार उन्हें उलझा रखना चाहते हैं। हर एक दूकानदार उन्हें दूसरी दूकान से कुछ सस्ते दर पर, थोड़ा मुनाफ़ा रख कर, सौदा देना स्वीकार करते हैं और अपनी सुजनता दिखा कर उन्हें हस्तगत करना चाहते हैं। किन्तु उधार सौदा लेनेवाले पर दूकानदार की नज़र घूमती रहती है। वह उसकी वर्तमान अवस्था पर, उसकी आमद-ख़र्च पर, उसकी स्थिति पर और उसके चालचलन पर बराबर दृष्टि रखता है और इस बात का भी छिपे छिपे भेद लगाता रहता है कि उधार लेनेवाला बिना दाम चुकाये कहीं रफ़ूचक्कर न हो जाय। दूकानदार के मन में इस बात की चिन्ता हमेशा बनी रहती है कि—"कहीं ऐसा न हो कि उधारी चीज़ के दाम डूब

जायँ"। जो दूकानदार अधिक मूल्य पर सौदा बेच कर विशेष लाभ उठाना चाहते हैं, अथवा अपना कपट-कौशल दिखला कर ख़रीदारों का धन हड़पना चाहते हैं, वे अपने इस मनोरथ को उन्हीं के द्वारा पूर्ण करते हैं जो उनसे उधार सौदा लेकर उनके निकट ऋणी और बाध्य होते हैं। नक़द सौदा लेनेवाले के साथ अधिक दिनों तक कपट-कौशल नहीं चल सकता। वे जब देखते हैं कि मुफ़्त में हम ठगे जा रहे हैं तब वे उसके यहाँ सौदा नहीं लेते। वजह यह कि नक़द सौदा लेनेवाले स्वाधीन होते हैं, उन पर दूकानदार का कोई दबाव नहीं रहता। जो उधार सौदा लेनेवाले हैं वे बारंबार ठगे जाने पर भी कुछ दृष्टि-लज्जा से और कुछ उसके देनदार होने के भय से चुपचाप अपना नुक़सान सह लेते हैं। कितने ही उधार लेनेवाले तो यह समझ कर सन्तोष करते हैं कि "अभी दाम थोड़े ही देते हैं, जब कभी सुभीता होगा तब देंगे। दो पैसे अधिक ले ही गा तो क्या। नक़द सौदा लेने में तुरन्त दाम देने पड़ते हैं, दस दूकानें देखनी पड़तीं—दस दूकानदारों से भाव ताव करना पड़ता, उससे तो यही अच्छा कि दो पैसे ज़्यादा देकर एक ही जगह जो अच्छी-बुरी चीजें मिलीं सो ले लीं"। ऐसा वही लोग कहा करते हैं जो आलसी, अपरिश्रमी और अपव्ययी होते हैं। उन्हें अपनी अवस्था का ज्ञान नहीं होता। उधारी चीज़ों के दाम चुकाते समय उन्हें कितना अधिक दण्ड देना पड़ेगा और उससे उनकी कितनी हानियाँ होंगी, इस पर वे ध्यान नहीं देते। इससे उनकी आर्थिक अवस्था

दिन दिन क्षीण होती जाती है। आखिर उनके पास इतनी भी पूँजी नहीं बचती जिससे किसी प्रकार की विपत्ति आने पर वे अपनी रक्षा कर सकें। निष्कर्ष यह कि एक पैसा भी व्यर्थ न जाने देना चाहिए। हम लोग व्यर्थ के कामों में जितना रुपया उड़ाते हैं उतना ही यदि संचय करें तो सुख से ज़िन्दगी कट सकती है। जो लोग मितव्ययी होते हैं वे कदापि कोई चीज़ उधार नहीं लेते। जो नक़द दाम देकर अपनी आवश्यक वस्तु ख़रीदते हैं उनकी अवस्था उधार चीज़ लेनेवालों की अपेक्षा कहीं अच्छी रहती है। ख़र्च के समय इन बातों पर ध्यान रखने से सभी अपनी अवस्था को सुधार सकते हैं, और जो हर एक काम में अपनी अवस्था देख कर ख़र्च करते हैं उन्हें ऋद्धि प्राप्त होना कठिन नहीं है। ऋद्धि प्राप्त होने पर ऋणमात्र का परिहार हो सकता है।

तीसरा अध्याय

दरिद्रता

"दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं सर्वापदामास्पदम् ।"

"जिन्हें जितनी अधिक वस्तुओं का अभाव है वे उतने ही अधिक दरिद्र हैं ।"

"प्रत्येक व्यक्ति के पास धन संचित होने से जातीय धन की वृद्धि होती है और देश की दशा सुधरती है, किन्तु व्यक्तिगत धन के ह्रास होने से देश दारिद्र्यग्रस्त हो जाता है ।"

"जो अपना ज़रूरी खर्च करके कुछ जमा करते हैं, उन्हें कोई दरिद्र नहीं कह सकता ।"

दरिद्रता का प्रधान कारण मूर्खता या शिक्षा का अभाव है। हम लोगों का यह भारत देश कृषि-प्रधान है । यहाँ सैकड़े पीछे ७० मनुष्य खेती के द्वारा जीवन-निर्वाह करते हैं । जीविका का प्रधान साधन और उसके सम्पादन की रीति जो हज़ार वर्ष पहले थी वही अब भी है । संसार की उन्नतिशील जातियाँ विज्ञान और रासायनिक प्रक्रिया की सहायता से दिनों दिन खेती की उपज को विचित्र रूप से बढ़ाती चली जा रही हैं । भारत के कई युग बीत गये किन्तु सत्ययुग का वही हल और कुदाल यहाँ

अभी तक मौजूद है। प्रकृति में बहुत कुछ हेर फेर होने पर भी भारत की पुरानी रीति ज्यों की त्यों बनी है।

भारत की कितनी ही जगहों में कितने ही प्रकार के पेड़ उपजते हैं। भारत के भूगर्भ में कितनी ही जगह कितने ही रत्न भरे हैं। भारत के स्थल-भाग और जल-भाग दोनों ही में कितना ही धन भरा पड़ा है। यह बात भारतवासियों को मालूम है और उन्हें धन की विशेष आवश्यकता भी है फिर भी शिक्षा और ज्ञान के अभाव से वे धन का संग्रह करना नहीं जानते। बिना धन के प्रयोजन भी सिद्ध नहीं हो सकता। भारत में खजूर के पेड़ बहुतायत से हैं, ये आपही आप जहाँ तहाँ उग आते हैं, इनके उपजाने के लिए कुछ मिहनत या खर्च करने की ज़रूरत नहीं। जो कुछ परिश्रम है सो सिर्फ़ उसका रस निकालने में है। खजूर लगाने के लिए हम लोगों को खेतों की कमी नहीं है बल्कि जिनके खेत में खजूर के कितने ही पेड़ मौजूद हैं उन पेड़ों को वे नित्य अपनी आँखों देख रहे हैं, और वे यह भी जानते हैं कि उसके रस से गुड़ तथा चीनी बनती है किन्तु गुड़ बनाने की रीति न जानने के कारण वे कुछ नहीं कर सकते। किस खेत में कौन सी फ़सिल अच्छी उपज सकती है, इसका ज्ञान प्रायः भारतवासियों को नहीं है। इसीसे कितने ही किसान जिस मिट्टी में जो बीज बोना चाहिए वह नहीं बोते, बल्कि जिसे वे आवश्यक समझते हैं वही बो देते हैं। इस कारण उन्हें आशानुरूप फल नहीं मिलता। कभी कभी तो उनका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। तब वे ज़मीन

को दोष देकर सन्तोष कर लेते हैं। किन्तु खेत की मिट्टी की उन्हें पहचान नहीं है, इस बात पर ध्यान नहीं देते। वे यह नहीं जानते कि सब मिट्टियों में सब चीज़ें उपजाने की शक्ति नहीं होती। जिस देश में, जिस मौसम में, जिस ज़मीन में जो बीज बोना चाहिए वह न बोकर जिस बीज के योग्य वह भूमि नहीं है वही बीज बोया जाय तो आशा कभी फलवती नहीं हो सकती। खेतों की उपज मारी जाने से गृहस्थों को बड़ा क्लेश उठाना पड़ता है। यथेष्ट उपज न होने के कारण दरिद्रता उनके घर से दूर नहीं होती। खेद का विषय है कि हर साल खेत की उपज कम होते देख कर भी कितने ही गृहस्थ कृषिशिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते। भारतवासी गृहस्थ जब तक खेती के सम्बन्ध की सब बातों का ज्ञान प्राप्त न करेंगे तब तक न तो यथेष्ट उपज अपनी आँखों देख सकते हैं और न अपनी अवस्था का ही सुधार कर सकते हैं। जिनकी जीविका खेती ही से चलती है उन्हें तो इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। भारतवर्ष में यदि खेतों की उपज अच्छी हो तो दारिद्र्य नाम मात्र को भी न रहे। देश के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास की आलोचना करने से यह बात जानी जा सकती है कि दारिद्र्य की मात्रा जितनी ही बढ़ती है, लोग उतने ही बनज-व्यापार और कारीगरी आदि व्यवसायों को छोड़ कर खेती की ओर झुकते हैं। उनके पास उतनी पूँजी तो रहती नहीं जिससे कुछ तिजारत कर सकें इस लिए थोड़ी पूँजी से खेती का काम चलना साध्य समझ कर उसी

का अवलम्बन करते हैं। बंगाल के प्रथम लाट लार्ड क्लाइव ने वहाँ की प्राचीन राजधानी में प्रवेश करके और वहाँ के धनवानों की संख्या देख कर कहा था कि "लन्दन की अपेक्षा यहाँ के लोग अधिक सम्पत्तिशाली हैं।" आज कल भारत में मनुष्य-संख्या तीस करोड़ से भी कुछ अधिक है जिन में सैकड़े पीछे सात आदमी भी शहरों में नहीं रहते। किन्तु इँगलैंड में सैकड़े पीछे ६७ आदमी शहरों में रहते हैं। भारतवासियों के चौदह हिस्सों में तेरह हिस्से देहात में ही रह कर अपना निर्वाह करते हैं। विलायत की समस्त जन-संख्या में सैकड़े पीछे ८० आदमी शिल्पकार हैं किन्तु भारत में सैकड़े पीछे केवल १५ मनुष्य शिल्पी (कारीगर) हैं।

भारतवर्ष के बड़े बड़े शहरों में यद्यपि सम्पत्ति का प्राचुर्य्य दिखाई देता है तथापि कितने ही भारतवासी स्त्री-पुरुष अन्न-वस्त्र के लिए जो चारों ओर हाहाकार मचा रहे हैं उसका कारण देश-व्यापी दारिद्र्य ही है। १९०१ ईसवी की मनुष्य-गणना से प्रकट हुआ था कि भारत में भीख माँगने वालों की संख्या ५२ लाख है। वे लोग भीख माँगने के सिवा और कोई रोज़गार नहीं करते। कोई काम करके दो पैसा कमाना मानो उनके लिए महापाप है। वे लोग परिश्रम से कोसों भागते हैं, वे भूखों मरेंगे पर भीख माँगना न छोड़ेंगे। वे लोग यदि कुछ काम करके अपनी गुज़र-बसर करते तो देश का बहुत कुछ उपकार होता। उन लोगों से देश का कुछ उपकार होना तो सम्भव नहीं, प्रत्युत अपकार

ही होता है। वे लोग व्यवसायशील प्रजा के उपार्जित धन का अंश ग्रहण कर अपना पेट पालते हैं। हिसाब करके देखा गया है कि प्रत्येक भिक्षुक के भरण-पोषण के लिए कम से कम तीन रुपये मासिक खर्च बैठता है। इस कारण भारतवर्ष के उपार्जनशील परिश्रमी व्यक्ति प्रतिवर्ष १८ करोड़ रुपया खर्च कर के ५२ लाख भारतीय भिक्षोपजीवियों का भरण-पोषण कर रहे हैं। इन आलसी निरुद्यमी लोगों का पालन करने में, प्रतिवर्ष अठारह करोड़ रुपये के हिसाब से पच्चीस वर्ष में देश का चार अरब पचास करोड़ रुपया खर्च होता है। सर अर्नेस्ट केब्ल ने हिसाब करके कहा है कि "आज कल भारतवर्ष में सञ्चित धन की संख्या चार अरब पचास करोड़ रुपये के लगभग है*"। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रति पच्चीस वर्ष में भारत का समस्त संचित धन ५२ लाख भिक्षुकरूपी डकैतों के द्वारा अपहृत होता है। यह धन बीस करोड़ अशर्फ़ियों (गिनी) के बराबर है। ये गिनी पास ही पास बिछाई जायँ तो चार हज़ार मील तक बिछाई जा सकती हैं।

स्पेन-देशवाले इतने दरिद्र क्यों हैं? जो दशा भारत की है वही स्पेन की है। वहाँ भी भीख माँगने का रिवाज है। भीख माँगने में वहाँ के लोगों को लज्जा नहीं आती किन्तु कमा कर

---

* "The hoarded wealth of India," Sir Ernest says, "has been estimated at three hundred millions sterling..." The *Pioneer*, 2nd July, 1908.

खाने में बड़ी लज्जा आती है। कोई काम करना उनके लिए लज्जा का विषय है। इसी लज्जा और आलस्य का फलस्वरूप भारत में ५२ लाख भिखारी वर्तमान हैं। और स्पेन में ? वहाँ गोयाडल-क्वीवर नदी के किनारे वाले प्रदेश में किसी समय बारह हज़ार गाँव थे। अब वहाँ आठ सौ भी नहीं हैं और जो हैं भी वे भिखारियों से भरे हैं। जो लोग आलसी हैं, जो किसी रोज़गार से सम्बन्ध नहीं रखते वे सहसा बुरे कामों में प्रवृत्त हो जाते हैं। निर्व्यवसायियों की दृष्टि अक्सर बुरे काम की ओर दौड़ती है। इससे वे लोग ऐसे काम भी कर बैठते हैं जो करने लायक़ नहीं। दरिद्र व्यक्ति भिक्षावृत्ति से दूसरों का धन लूट कर दिन दिन देश का दारिद्र्य बढ़ाते हैं। वे लोग देश का केवल दारिद्र्य ही नहीं बढ़ाते बल्कि साथ ही साथ वे आलसी, अदृष्टवादी और नीचाशय बन कर प्रजा के सामने अत्यन्त घृणित आदर्श भी स्थापन करते हैं। उन भिक्षुकों के सहवास से कितने ही नवयुवकों को,—जो अपने उद्योग और अध्यवसाय से स्वर्ग, मर्त्य और पाताल को एक कर सकते हैं,—यह कहते सुना है कि "न होगा तो भीख माँग कर ही खायँगे। इसमें तो कोई बाधा नहीं डाल सकता"। युवकों के मुँह से ऐसा नैराश्यपूर्ण वाक्य सुन कर और उन्हें इस घृणित वृत्ति से जीवन व्यतीत करने के हेतु उत्सुक होते देख कर मर्माहत होना पड़ता है।

पूर्व काल में जप-तप, पूजा-पाठ, योग-यज्ञ में समय बिताने वाले ब्रह्मपरायण धर्मात्माओं ने जो भिक्षान्न को श्रेष्ठ मान

कर उसके द्वारा जीवन -धारण की व्यवस्था की थी उसकी समालोचना करना या उसके विरुद्ध कोई मत प्रकाश करना हमारा उद्देश्य नहीं। उन लोगों ने जिस उद्देश्य से उक्त वृत्ति का अवलम्ब किया था उसके महत्त्व-सम्बन्ध में सन्देह करना भी अयुक्त है। उन लोगों ने माया-मोह से रहित ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणों के लिए जो भिक्षान्न से जीवन-निर्वाह करना अच्छा माना था वह उस समय के लिए अवश्य ही अच्छा था। वे लोग आलसी किंवा अकर्मण्य होकर भिक्षाटन नहीं करते थे, बल्कि केवल प्राण-रक्षा के लिए भिक्षोपजीवी होकर ज्ञानोपदेश के द्वारा प्रजा का कल्याण करते फिरते थे। अतएव उस समय भिक्षान्न से निर्वाह करना महत्त्व का विषय समझा जाता था और, लोग भिक्षुकों का सत्कार देवता से भी बढ़ कर करते थे। उस समय भारत की नीति-रीति और ही तरह की थी। शासनप्रणाली भी विलक्षण थी। किन्तु वर्तमान भारत में जो भिक्षावृत्ति की रीति जारी है उसके परिणाम की आलोचना हम अवश्य करेंगे। पहले लोग क्या करते थे, क्या समझ कर उन लोगों ने किस मार्ग का अवलम्बन किया था, इसकी विवेचना करने का न समय है और न उसकी कोई आवश्यकता। क्या था, इसको जाने दो; क्या हो रहा है और क्या होगा, इस पर ध्यान दो। हम लोगों को इस समय वर्तमान और भविष्य की ही चिन्ता करनी चाहिए। इस देश में क्या अमीर और क्या ग़रीब सभी, विपत्ति पड़ने पर, भिक्षा की झोली कन्धे पर लटकावेंगे, इसमें उन्हें लज्जा न

होगी, किन्तु मज़दूरी का काम वे जीते-जी न करेंगे। भीख माँगने में लज्जा न होने और मज़दूरी करने में प्रवृत्त न होने का कारण कुछ ज़रूर है। बङ्गाल के धनकुबेर लाला बाबू ने भिक्षावृत्ति का अवलम्ब किया था, बुद्धदेव और चैतन्यदेव आदि महापुरुषों ने भी भिक्षा का आश्रय लिया था। किन्तु आज तक इस देश के राजा, महाराजा या साधारण धनवान् अथवा किसी सामाजिक प्रधान व्यक्ति ने विपत्ति के समय मज़दूरी करके या और ही किसी तरह का दैहिक परिश्रम करके, जीवनोपाय का पथ-प्रदर्शन नहीं किया। यद्यपि भारतवासी "गतानुगतिको लोकः" इस वाक्य को विशेष रूप से चरितार्थ करते हैं तथापि आज कल के कितने ही नवयुवक उन्हीं आदर्शों का अनुकरण करेंगे जो उनके मतलब के होंगे। जिस आदर्श-पुरुष के प्रदर्शित नीतिपथ पर चलने से उनका और देश का मङ्गल होगा उस पर वे दृक्पात भी न करेंगे। आज तक किसी ने "पीटर दी ग्रेट" की तरह मिस्त्री की चिलम भर कर कारीगरी नहीं सीखी। अब भी ग्लैडस्टन की तरह किसी ने बुढ़ापे में भी अपने हाथ से नित्य लकड़ी काटने और कुदाल से मिट्टी खोदने के द्वारा शरीर को परिश्रमी बना रखने का मार्ग नहीं दिखलाया। बेञ्जमिन फ्रैङ्कलिन की तरह कोई भारत का लाल अपने छापेखाने के लिए काग़ज़ ख़रीद कर और उसे ठेले पर रख कर अपने हाथ से खींच कर नहीं लाया। किन्तु पहले किसी चक्रवर्ती राजा ने सत्य पालन के लिए जीवन का प्रशस्त भाग अत्यन्त कष्ट के साथ जङ्गल में

रह कर बिताया, किसी राजकुमार ने युवावस्था में ही सांसारिक सुखों पर पदाघात करके और राजप्रासाद का परित्याग करके संन्यासवृत्ति धारण कर ली, और कोई धन-कुवेर अपना सर्वस्व दान करके रास्ते का भिखारी बन गया;—इसी तरह के अनेक स्वर्गीय विचित्र चरितों से भारत का इतिहास भरा हुआ है। भारत के ये आदर्श-चरित्र अन्यान्य देशों के इतिहास में बहुत कम पाये जाते हैं और अन्य देशवासी इन चरित्रों को यथार्थ ही स्वर्गीय मानते हैं। किन्तु संसारी लोगों के लिए यही एक मात्र स्थिर आदर्श नहीं। त्याग के साथ ही साथ भोग का भी आसन उच्च होना चाहिए। अनुराग के साथ विराग का और कर्म के साथ विश्राम का जैसा सम्बन्ध है उसी तरह भोग के साथ त्याग का भी है। त्याग जैसा ज़रूरी है वैसा ही भोग की सामग्री प्राप्त करना भी ज़रूरी है इन दोनों की उपयोगिता आवश्यक है। हम लोगों को उपयोगिता के साधन-ज्ञान का अभाव नहीं है। पौराणिक आदर्श-पुरुषों को अनुकरणीय न समझने पर भी, और इस देश में बेञ्जमिन फ्रैङ्कलिन आदि उद्योगी पुरुषों के जन्म ग्रहण न करने पर भी हम लोग एक-दम अपने उपयुक्त आदर्श-व्यक्तियों से विहीन नहीं हैं। हमारे यहाँ आदर्श-पुरुषों का अभाव नहीं है, किन्तु हम लोगों ने आज तक उनके अनुसार जीवन-गठन करने का कभी कुछ उद्योग भी किया है? लोगों में किसने राजा राममोहन राय, महामान्य देवेन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा ईश्वर-चन्द्र विद्यासागर के बताये पथ का अवलम्बन किया है? कितने

व्यक्तियों ने रामदुलाल सरकार या ताता का अनुकरण किया है ? किन्तु द्रव्य न रहने पर भी गौरी सेन * का अनुकरण करते हुए, भोजन-वस्त्र का उपाय न रहने पर भी उच्चवंशीय धनी लोगों की देखादेखी ख़र्च करने में अग्रसर होते हुए, यश फैलाने की इच्छा से माँ-बाप के श्राद्ध में, लड़के-लड़कियों के विवाह में या और ही तरह के किसी उत्सव में ऋण लेकर रुपया उड़ाते हुए कितने ही व्यक्ति देखे जाते हैं ; धनकुबेर कार्नेगी, राकफ़ेलर या ताता के अध्यवसाय, उद्योग, मितव्ययिता और संचयशीलता का अनुकरण प्रायः कोई नहीं करता; किन्तु रथ्सचाइल्ड जिस बड़ी जोड़ी की गाड़ी पर चढ़ कर घूमते हैं और बिजली की रोशनी से जो उनका घर प्रकाशमान होता है, उसे और उनके घर की सजावट को देख कर किसके नयन नहीं लुभाते ? कितने ही ज़मीदारों की दृष्टि इन चीज़ों की ओर आकृष्ट होती है। जो निर्धन व्यक्ति केवल मनोरथ करके ही धनी होना चाहता है और जो अपने से विशेष धनवानों का ख़र्च करने में अनुकरण करता है वही वास्तव में दरिद्र है। किसी पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—"मनुष्यों के सुख का शत्रु दारिद्र्य है।" यह स्वाधीनता का तो ज़रूर ही हरण करता है।

---

* बङ्गाल में अब भी यह कहावत प्रचलित है कि "लागे टाका देवे गौरी सेन।" बङ्गाल में गौरी सेन बड़े भारी दानी हो गये हैं। उनके पास जो याचना करने जाता था वह निष्फल होकर न लौटता था।

कितने ही धर्म-सम्बन्धी अनुष्ठानों और उचित कर्तव्यों को असम्भव कर देता है और कितने ही ज़रूरी कामों के सम्पन्न होने में बाधा डालता है। बिना मितव्ययी हुए कोई धनी नहीं हो सकता और जो मितव्ययी है वह कभी दरिद्र नहीं हो सकता। व्यक्तिगत मन्दता ही देश को दरिद्र बना डालती है। जो लोग अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न नहीं करते वे देश के सच्चे शत्रु हैं। संसार में जो जाति (देशवासी) संचय करना नहीं जानती, अपव्यय से हाथ नहीं खींचती, और भविष्य के परिणाम पर ध्यान नहीं रखती उस जाति के द्वारा कभी कोई बड़ा काम नहीं हो सकता। जिनके पास धन नहीं है वे स्वभाव से ही शक्तिहीन बने रहते हैं अर्थात् उनका शक्तिहीन होना स्वाभाविक है। अपनी मर्यादा को तो वे खोते ही हैं, इसके सिवा दूसरे की मर्यादा का भी ज्ञान नहीं रखते। जो अपने महत्त्व की रक्षा नहीं कर सकते वे दूसरों के महत्त्व को क्या समझेंगे? शक्तिहीन व्यक्तियों के लिए स्वतन्त्रता आकाश-कुसुम ही है। जो दरिद्र हैं, जो शक्तिहीन हैं, उनके लिए स्वतन्त्र होकर रहने की इच्छा केवल मनोराज्य मात्र है। जब तक कोई दारिद्र्य के पंजे से अपने को न छुड़ावेगा तब तक वह शक्तिहीन ही बना रहेगा। लोगों को पुरुषोचित शक्ति और धर्म से वञ्चित करने के लिए दारिद्र्य ही का प्रभाव सबसे बढ़कर है। दारिद्र्य ही देश की अवनति का प्रधान कारण है। दूसरे के बाहु-बल का भरोसा न करके अपने पुरुषार्थ और उद्योग से अपना और अपने परिवार का भरण-

पोषण करना उन्हीं योग्य व्यक्तियों का काम है जिन्हें आत्मसम्मान का ज्ञान है। अपनी मर्यादा का ज्ञान उन्हीं को होता है जो स्वावलम्बी, आलस्यहीन और उद्योगी होते हैं। जो अपनी उन्नति करता है वह अपने देश को उन्नत करता है। यदि सभी व्यक्ति अपनी अपनी उन्नति की चेष्टा करें तो बहुत शीघ्र समाज की दीनता दूर हो सकती है। सामाजिक उन्नति व्यक्तिगत उन्नति ही पर अवलम्बित है। सौ व्यक्तियों में यदि एक ने कुछ अपनी उन्नति की हो तो उससे क्या हो सकता है? जहाँ सौ में निन्नानबे व्यक्ति अभाव-ग्रस्त हैं वहाँ समाज की क्या उन्नति हो सकती है? जो अपनी ही ज़रूरत को रफ़ा नहीं कर सकते वे दूसरों के अभाव को कहाँ तक दूर करेंगे? जो दूसरों का कुछ उपकार करना चाहो तो पहले अपने अभावों को दूर कर शक्तिमान् बनो। शक्तिहीन व्यक्ति से कभी किसी का कुछ उपकार नहीं हो सकता।

पुरुषार्थ के द्वारा दारिद्र्य को दूर करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। पुरुषार्थ करने से सभी करोड़पति बन जायँगे, यह कोई बात नहीं। किसी देश में या किसी जाति में सबके सब करोड़पति ही नहीं हैं और न ऐसा होने की सम्भावना ही है। पुरुषार्थ से अवस्था का सुधार अवश्य होता है। जो जिस अवस्था में है उससे अच्छी अवस्था में वे तभी प्राप्त होंगे जब वे उन्नति की चेष्टा करेंगे। अपनी अवस्था के अनुसार सुख से रहना क्या सामान्य लाभ है? उद्योगी मनुष्य बिना कुछ पूँजी

के भोजन और वस्त्र आदि आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध कर लेते हैं और उतने ही में संतुष्ट होकर सुख से समय बिताते हैं। जो लोग जन्म के ही दरिद्री हैं अर्थात् जिनका जन्म ग़रीबों के घर में हुआ है उनके लिए दरिद्र होना कलङ्क की बात नहीं किन्तु अनुद्यमी होना अवश्य लाञ्छन है। दरिद्र लोग भी साधुता, सत्य-भाषण, सुजनता और श्रमशीलता आदि सद्गुणों से सम्मान-भाजन हो सकते हैं। सभ्य समाज में सर्वत्र उनका आदर हो सकता है। सामान्य अवस्थावालों को लोग दरिद्र कहा करते हैं किन्तु यथार्थ में वे दरिद्र नहीं हैं। असल में दरिद्र व्यक्ति तो वे हैं जो एक पैसा भी जमा नहीं करते और ऋण लेकर घर का ख़र्च चलाते हैं। जो लोग ऐसे अमितव्ययी और ऋण-लोलुप हैं वे अपने चरित्र को भी ठीक नहीं रख सकते। अतएव इस श्रेणी के जो दरिद्र हैं वे अवश्य निन्दास्पद हैं। क्योंकि धन का अभाव केवल मनुष्यता का अपहरण करता है किन्तु दारिद्र्य मनुष्य-समाज में अनेकानेक दोषों को उत्पन्न करता है। दुश्चरित्र ज़मीदारों की अपेक्षा वे सामान्य अवस्थावाले गृहस्थ हज़ार दर्जे अच्छे, श्रद्धास्पद और प्रशंसा के पात्र हैं जो सच्चरित्र और आत्मनिर्भर-शील हैं। ब्रह्मनिष्ठ सच्चरित्र गृहस्थ का कुशासन राज-सिंहासन से पवित्र है। सिंहासन पर बैठ कर सम्भव है राजा कुछ अन्याय भी कर बैठे किन्तु उस कुशासन के बैठनेवाले से प्रायः कोई अन्याय नहीं हो सकता। जिन के पास धन नहीं है वे प्रायः हृदय के उदार और उच्चाशय होते हैं, किन्तु जिन के

पास धन है वे अधिकतया कर्तव्य-विमुख होते हैं और साधारण स्वार्थत्याग करने में असमर्थता दिखलाते हैं। धन के साथ यदि स्वार्थत्याग और कर्तव्य-बुद्धि का योग होता तो देश का बहुत कुछ दारिद्र्य दूर हो जाता। धनाढ्य व्यक्तियों के महलों की अपेक्षा प्रायः ग़रीब गृहस्थों के घरों में ही प्रतिभाशाली महात्माओं का जन्म होता है। ईसा, नानक, गोसाईं तुलसीदास और चैतन्यदेव इसके दृष्टान्त हैं। ग़रीबों के घर में ऐसे ऐसे कितने ही महात्मा जन्म लेकर अपने उदार चरित्र से लोगों को शिक्षा दे गये हैं। विद्यासागर, भूदेव बाबू, द्वारकानाथ, कृष्णदास, अक्षयकुमार— इनमें से एक भी धनवान् के घर में पैदा नहीं हुआ। वेञ्जमिन फ़ैङ्कलिन ने साधारण गृहस्थ के ही घर में जन्म लिया था। प्रसिद्ध ज्योतिर्वेत्ता फ़र्ग्युसन भी दरिद्र के बेटे थे। वे पहले चित्र-कारी करके अपना निर्वाह करते थे। विङ्कलमैन के बाप जूता बना कर बेचते थे, और रात में बाप-बेटे दोनों मिल कर गलियों में गीत गाते फिरते थे और इस वृत्ति से जो कुछ मिल जाता था उसी द्रव्य से वह दरिद्र बालक विङ्कलमैन कालिज में पढ़ता था। आगे जाकर यही लड़का प्राचीन साहित्य और सूक्ष्म शिल्पकला का प्रख्यात लेखक हुआ। ऐन्ड्रू कारनेगी, राकफ़ेलर आदि वाणिज्य-वीर दरिद्र के घर में उत्पन्न हुए थे। मार्किन के प्रजा-तन्त्र के सभापति लिङ्कन दरिद्र के बेटे थे। जगद्विख्यात विज्ञानवीर फ़ैराडे सड़क पर पड़े हुए पाये गये थे। शायद किसी ने उन्हें पैदा होते ही रास्ते में डाल दिया था।

गत अर्ध-शताब्दी (५० वर्ष) के भीतर जो लोग उच्चपदाधिकारी हुए हैं उनमें अधिकांश दरिद्र के ही सन्तान थे। इन बातों से यह सिद्ध हुआ कि सामान्य अवस्था के मनुष्य भी श्रेष्ठ होने की आशा कर सकते हैं और चेष्टा करने से हो भी सकते हैं। उच्च अभिलाषा, उद्यम और अध्यवसाय से सभी यथासाध्य अपनी उन्नति कर सकते हैं। जिन प्रतिभावान् महोदय व्यक्तियों के नाम ऊपर उद्धृत हुए हैं उन लोगों ने दरिद्र के घर में जन्म लिया था इसमें सन्देह नहीं, किन्तु उन लोगों ने पुरुषार्थ के द्वारा दारिद्र्य को दूर कर समाज में प्रधानता प्राप्त की थी, और समस्त मानव-जाति को सम्मानित कर बड़े बड़े करोड़पतियों से सम्मान पाया था।

कृपणता

कृपण उसको कहना चाहिए जो धन रहते आवश्यक खर्च नहीं करता और कष्ट सहता है; जो केवल धन बढ़ाने की इच्छा से दिन-रात हाय हाय करता फिरता है और उसी के पीछे सारा जीवन बिता डालता है। पैसा ही जिसका आराध्यदेव है, सञ्चित धन देख कर ही जो आत्मा को तृप्त मानता है, धन के उचित व्यवहार करने में जो सर्वदा विमुख रहा करता है; और धन के ममत्व से जिसके दया, धर्म, परोपकार आदि कोमल गुण लुप्त हो कर हृदय कठोर हो गया है उसी को कृपण कहना

चाहिए। कृपण में और दरिद्र में कुछ अधिक भेद नहीं है। कृपण व्यक्ति जी तोड़ मिहनत करके धन प्राप्त करता है, भर पेट अन्न न खा कर और उपयुक्त कपड़े न पहन कर वह एक एक कौड़ी जमा करके बहुत धन इकट्ठा करता है किन्तु तो भी उसे धन से तृप्ति नहीं होती, धनसञ्चय करने की इच्छा किसी तरह निवृत्त नहीं होती। लक्षपति या करोड़पति होने ही से क्या होता है, यदि उसे उस धन के भोग करने का सामर्थ्य नहीं। यदि हर एक वस्तु का अभाव बना ही रहा तो आवश्यकता से अधिक धन रहने ही से क्या फ़ायदा है? सोने, चाँदी और जवाहिरात से भण्डार भरा ही रहा तो क्या, यदि उसके स्पर्श तक करने का अधिकार नहीं। कृपण लोग केवल उसे देख कर ही तृप्त होते हैं। उसका उपयोग करने की उनमें शक्ति नहीं। वे भोग करने के लिए संसार में नहीं आये हैं, वे तो केवल धन इकट्ठा करने ही के लिए आये हैं। उन्होंने धनागार के पहरेदार होकर सञ्चित धन की रक्षा करने ही के लिए जन्म लिया है। वह धन जीते जी उनके कोई काम न आवेगा। मानो वह धन उनका नहीं, यक्ष का है। जैसे धरती में जहाँ तहाँ कितना ही धन गड़ा पड़ा है, कितने ही सोने चाँदी की खानें पृथ्वी के गर्भ में छिपी हैं उसी तरह मान लो कृपण का धन भी किसी जगह छिपा पड़ा है। कृपण के घर में भोजन, वस्त्र आदि नित्य प्रयोजनीय वस्तुओं में विशेषतः उन्हीं का व्यवहार होता है जो बिलकुल सस्ती मिलती हैं। अर्थात् कृपण उन्हीं चीज़ों से घर का काम

चलावेंगे जो उन्हें ख़ूब सस्ती मिलेंगी। चाहे वह चीज़ ख़राब से ख़राब क्यों न हो पर कृपण उसी को पसन्द करेंगे। यह एक साधारण बात है। सभी लोग जानते हैं कि जो चीज़ जितनी ही सस्ती मिलती है वह उतनी ही घटिया होती है। कृपण लोग अपने परिवार के साथ कदन्न भोजन कर और फटे पुराने वस्त्र से किसी तरह देह ढक कर बड़े मलिन वेश से, दीन हीन की तरह, रह कर जीवन बिताते हैं। क्योंकि सबको सुख-स्वच्छन्द से रहने के लिए जितने धन की आवश्यकता है उतना ख़र्च कृपण लोग नहीं करते। कपड़ा बिलकुल पुराना हो गया है, धोबी के घर जाने लायक़ नहीं रहा, सैकड़ों पैवन्द लगाने पर भी चिथड़ा सा हो रहा है, धुलाये न जाने के कारण इतना मैला हो गया है कि जिसे देख लोगों का जी घिनाता है पर कृपणराज तब भी उसका परित्याग नहीं करते। बिछौने के कपड़ों का भी यही हाल है। घर की दशा भी वैसी ही शोचनीय है। कई साल से मरम्मत न होने के कारण दीवाल की हालत ख़राब हो रही है, छत का पानी आधा बाहर और आधा घर के भीतर गिरता है, इस कारण घर के भीतर रहने वाली स्त्रियों के कष्ट का ठिकाना नहीं, परन्तु ख़र्च के डर से कृपण इन सब बातों पर ध्यान नहीं देते। पुराने घर की मरम्मत में जो ख़र्च करना पड़ेगा उसे बचा कर जमा करने से उनके सञ्चित धन—लाखों की संख्या—में सौ की और वृद्धि हो जायगी।

कृपण लोग निन्दा, कटु भाषण और परिहास की परवा नहीं करते। वे मानसिक और दैहिक सभी प्रकार के कष्ट और

भाँति भाँति की असुविधायें सहने के लिए सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं किन्तु प्राण से भी अधिक प्रिय धन को ख़र्च करना नहीं चाहते। ख़र्च का नाम सुनते ही मानो उनकी जान निकल जाती है। ये कृपण क्या दरिद्र नहीं हैं? कृपण व्यक्ति को नहीं सूझता कि मेरी धनराशि के पीछे दारिद्र्य रूपी शनिग्रह छिप कर मेरी भावी सन्तान को अभिभूत करने के लिए छिद्र ढूंढ़ रहा है। शनि-महाराज उसके पीछे पीछे घूम रहे हैं, यह भी उसे मालूम नहीं। जिस समय वह भर पेट भोजन नहीं करता, कपड़े नहीं पहनता, पड़ोसियों के सुख-दुख का साथी नहीं होता, और देशोपकारी कामों में शामिल नहीं होता; और जिस समय वह उचित आहार, व्यवहार और लौकिकता के अभाव से समाज का अप्रीतिभाजन बनकर और भूत, भविष्य का कुछ भी विचार न करके केवल कौड़ी कौड़ी जोड़ करके पैसा, पैसे जमा करके आने, आने से रुपये और एक ही एक रुपया जमा करते करते सौ; सौ से हज़ार, हज़ार से लाख और लाख से करोड़ रुपया जमा होते देख मारे ख़ुशी के फूले अंग नहीं समाता; जिस समय वह तन-मन से केवल धन-संग्रह करने की ओर लगा रहता है उस समय उसकी सन्तान कदन्न खाने से दुर्बल, उपयुक्त शिक्षा के अभाव से मूर्ख और उन्नत आदर्श के अभाव से चरित्रहीन हो कर कष्ट से समय बिताती है। कृपण के दबाव में रहने से उसकी सन्तान की साधारण लालसायें पूरी न होने के कारण दिन दिन बढ़ती ही जाती हैं। दैवयोग से इसी अवसर में यदि कृपण की मृत्यु हो

गई तो उसका वह अतुल ऐश्वर्य्य उन अशिक्षित, अदूरदर्शी, पशुओं के हाथ लगता है। जो एक दिन अपने बाप की कृपणता के कारण सभी सुख और भोग-विलास की वस्तुओं से रहित थे, जिन्हें किसी समय स्वादिष्ट भोजन भी दुर्लभ था, वे एकाएक प्रचुर धन पाकर और स्वतन्त्र हो कर निरङ्कुश मदमत्त हाथी की तरह उद्दण्ड हो उठें तो इसमें आश्चर्य ही क्या? उन्होंने पिता की तरह एक एक कौड़ी से करोड़ रुपया जमा करने की शिक्षा तो पाई नहीं, वे युवावस्था की अपूर्ण वासनाओं के साथ एकाएक प्रचुर धन के अधिकारी बन बैठे हैं। वे अब दरिद्र की तरह रहना कब पसन्द करेंगे? वे अब अमीरी करने में न चूकेंगे। वे अमीरों का अनुकरण करेंहीगे। बल्कि वे अमीरों से भी अधिक खर्च करके अपनी अमीरी से उन्हें नीचा दिखलाने का प्रयत्न करेंगे। बाप की जीवित दशा में वे किस कष्ट से समय बिताते थे, यह अब उन्हें स्मरण भी नहीं। उस पर भी कितने ही महामूर्ख दुराचारी व्यक्तियों का सङ्ग पाकर वे और भी अपव्यय की ओर झुक पड़ते हैं। जो अपने पसीने की कमाई नहीं है उसे खुले हाथ खर्च करने में कोई कुण्ठित क्यों होगा—"माले मुफ़ दिले बेरहम।" खेद की बात है कि कृपण का सञ्चित धन अच्छे कामों में न लग कर अक्सर बुरे कामों में ही नष्ट हो जाता है। शिक्षा के अभाव से कृपण की सन्तान, अत्यन्त कष्ट से उपार्जित, धन को थोड़े ही दिनों में नष्ट करके दरिद्र बन जाती है। करोड़-पति की सन्तान हो कर भी कृपण के लड़के देखते ही देखते

धनहीन होकर भिखारी बन जाते हैं। कृपण धनवान् की सन्तान बहुधा ऋणग्रस्त होकर अन्त में मुफ़लिसी का जामा पहनती है। इसलिए कृपण होना बड़े ही पाप का फल है। कृपण को जीते जी सुख नहीं, और मृत्यु के बाद उसके धन से उसकी सन्तान को भी सुख नहीं। कारण यह है कि अयोग्य होने के कारण उसकी सन्तान धन से उपयुक्त सुख भोगना नहीं जानती। इस कारण वह यथार्थ सुख से वञ्चित हो कर अपव्यय के द्वारा सर्वस्वान्त कर डालती है।

अतिदान

"अतिदानैर्बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत्।"

स्काटलैंड में एक कहावत है कि "पितामह प्राणपण से परिश्रम कर के धन जमा कर जाता है, बाप अच्छी अच्छी इमारतें बनाता है; बेटा सारी सम्पत्ति को नष्ट कर चोरी कर के पेट भरता है।"

"जो लोग दिन में कपूर की बत्ती जला कर आनन्द मनाते हैं, उनके घर किसी दिन अँधेरी रात में एक चिराग़ भी नहीं जलता।" (सद्भावशतक।)

"बाप दाता कर्ण, बेटा कङ्गाल।"

कर्ण के समान अतिदानी और कौन हुआ? संसार में कितने ही दानवीर हो गये हैं और अब भी कितने ही हैं जिनकी कृपा से आज ठौर ठौर में देवालय, विद्यालय, औषधालय, अनाथाश्रम,

धर्मशाला (अतिथिशाला) और पुस्तकालय आदि स्थापित हैं। गौरी सेन के सदृश कितने ही दाता हो गये हैं जिनके नाम की कहावत अब तक लोगों में चली जा रही है। कितने ही राजा महाराजा विरक्त हो कर अपना राजभण्डार लुटा गये हैं। कोई कोई राजा तो किसी किसी दिन कल्पतरु बन बैठे हैं और जिसने जो माँगा है उसे वही देकर उन्होंने उसे कृतार्थ कर दिया है। अति-दान करके राजा बलि भी दुर्दशाग्रस्त हो चुके हैं। किन्तु आज तक किस दाता ने याचक की प्रार्थना पूरी करने के लिए अपना रक्षा-कवच और कुण्डल दान करके अपने को शत्रु के हाथ सौंप कर अपनी मृत्यु का रास्ता खोल दिया है? किस दाता ने अज्ञात-कुल-शील अतिथि की इच्छा पूर्ण करने के लिए स्नेह के एक मात्र आधार आँखों के तारे नन्हे से पुत्र का शिरश्छेदन किया है? ढूँढ़ने से पुराणोल्लिखित दाता कर्ण ही एक मात्र इसके आदर्श मिलेंगे। दाता कर्ण की उदारता की ऐसी ऐसी न मालूम कितनी बातें पुराणों में लिखी हैं। इसी कारण जो लोग मुक्तहस्त होकर दान करते हैं अथवा अपनी उदारता दिखला कर कीर्ति प्राप्त करते हैं उन्हें लोग दाता कर्ण कहते हैं। किन्तु जो लोग अयुक्त दान करते हैं उनके लिए भी उपहास के बहाने लोग इसी नाम का व्यवहार करते हैं। यदि कोई कहे कि अमुक व्यक्ति दाता कर्ण है तो समझना चाहिए कि वह व्यक्ति धन को लुटा रहा है। आज कल के दाता कर्णों में प्रायः कोई ऐसा न मिलेगा जिसके धन, जन, मान, महत्त्व और प्राणों पर संकट न आ पड़ा हो।

अक्सर यह सुना जाता है कि "अमुक व्यक्ति साल में हज़ारों रुपया दान करता था, वैसा दयालु और दानी अब कोई दिखाई नहीं देता। वह आदमी क्या था साक्षात् दाता कर्ण था। रास्ते से लोगों को बुला बुला कर अन्न, वस्त्र देता था। लड़की की शादी में उसने जो कुछ ख़र्च किया वह अब दूसरा कोई क्या करेगा ? मा-बाप के श्राद्ध में तो उसने कुछ उठा न रक्खा था। नाच-तमाशे में उसने जितना लुटाया उतना अब कोई जमा भी तो कर ले।" किन्तु विधाता की गति बड़ी विचित्र है। उसकी माया को कोई क्या समझेगा! उसी दाता कर्ण की स्त्री और बेटे आज भूखों मर रहे हैं। जो किसी समय सदावर्त देता था उसका परिवार आज एक एक दाने को तरस रहा है। जो एक दिन रुपया को रुपया नहीं समझते थे, दोनों हाथों से रुपया लुटाते थे, उनकी जब मृत्यु हुई तब देखा गया कि उनके घर में एक फूटी कौड़ी भी नहीं निकली। यहाँ तक कि वे अपने क्रिया-कर्म के लिए भी कुछ न छोड़ गये। किसी न किसी तरह उनका श्राद्ध-कर्म हुआ। स्त्रियों के जितने भूषण थे, थोड़े ही दिनों में सब बिक गये। जो कुछ माल-असबाब था वह भी समाप्त हो गया। ऐसा क्यों हुआ ? पहले जो यह कहा गया है कि वे जीवित समय में दोनों हाथों से रुपया लुटाते थे उसी का यह परिणाम है! उन्होंने जीवित अवस्था में जो धन कमाया था वह भविष्य का कुछ सोच न कर, परिवार के लिए कुछ धरोहर न रख कर, सब ख़र्च कर डाला। उनकी इस अपरिणाम-दर्शिता

के कारण और "जितनी आमदनी उतना ख़र्च" वाली अनीति पर चलने और ऋण लेकर अपव्यय करने के कारण उन दाता कर्ण के स्त्री, पुत्र, परिवार वाले आज भिखारी बने फिरते हैं। यदि वे खुले हाथ ख़र्च न करते और दाता कर्ण न बनते, ख़र्च से हाथ खींच कर कुछ जमा भी करते, मितव्ययी होकर कृपण कहलाये जाने का भय न रखते तो आज उनकी विधवा स्त्री, बूढ़ी माँ और मक्खन के पुतले से छोटे छोटे बालक दीन भिखारी क्यों बनते? आज उनका प्रिय परिवार अन्न-वस्त्र के कष्ट से व्याकुल हो कर यमयातना क्यों सहता? अधिक ख़र्च करने का अन्त में यही परिणाम होता है। जो लोग एक दिन आमदनी से अधिक ख़र्च करके या अपनी आय से कुछ संचय न करके मौज उड़ाते हैं उनके परिवार की अन्त में यही दशा होती है। लोगों का यह कहना बहुत ठीक है कि जो एक दिन क़र्ज़ करके मिठाई खाते हैं उन्हें किसी दिन भर पेट खाने के सत्तू तक नहीं मिलता।

सन् १८७० ईसवी में, इँगलैंड के चतुर्थ एडवर्ड के राजत्व-काल में, जार्ज नेविल ने प्रधान धर्माध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित होने के समय एक भोज दिया था। इस महोत्सव में उन्होंने प्रधान प्रधान धर्मयाजकों (पादरियों) और देश के प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों को निमन्त्रित किया था। इस भोज में इतना अधिक ख़र्च हुआ था कि आज भी इँगलैंड में लोगों को उपमा के लिए इसका स्मरण हो जाता है। भोज का चिट्ठा जब दाख़िल हुआ तब देखा गया कि १०५ मन मैदा, ६४५० मन मद्य (एल),२८०८

मन मदिरा, एक पीपा (६॥ मन) मसालेदार मदिरा, ८० बैल, ६ जंगली साँड़, ३०० बछड़े, ३०० सुअर, १००८ भेड़ें, ३०० सुअर के बच्चे, ४०० हिरन, ३ हज़ार राजहंस, ३ हज़ार मोटे ताज़े मुरग़े, २ हज़ार मुरग़ियाँ, १०० मोर, २०० चकवा, ४ हज़ार कबूतर, ४ हज़ार खरहे, दो सौ बकरी के बच्चे, ५०० तीतर, २ हज़ार कठफोड़ा पक्षी, चार सौ प्लोवर पक्षी, दो सौ चार विटर्ण पक्षी, एक हज़ार बक, चार हज़ार हंस, १०० क्रौञ्च, १०० बटेर, २०० फेजंट पक्षी, २०० रीस (रीभ ?) पक्षी, १५०० सूखे मृग-मांस के पकौड़े, चार हज़ार ठंडे पकौड़े, ११ हज़ार भिन्न भिन्न प्रकार के पक्वान्न, एक हज़ार से कुछ अधिक मछलियाँ, और भी कितने ही प्रकार के मुरब्बे-बिसकुट आदि की व्यवस्था हुई थी। इस भोज में जार्ज नेविल के भाई अर्ल आव वारविक भंडारी थे, अर्ल आव बेडफ़ोर्ड कोषाध्यक्ष थे और लार्ड हेस्टिंग्स हिसाब जाँचने वालों के प्रधान थे। और कितने ही प्रतिष्ठित कर्मचारियों के अतिरिक्त एक हज़ार परोसनेवाले, ६२ पकानेवाले (बावर्ची) और ५१५ आदमी रसोई घर के अन्यान्य कामों पर नियुक्त थे। किन्तु इस अमित व्यय का परिणाम क्या हुआ था ? उस पर भी एक बार ध्यान देना चाहिए। अमित व्यय का परिणाम यही हुआ कि अतुल ऐश्वर्य्य के अधिप नेविल साहब दीन हीन भिखारी की तरह कष्ट से समय बिता कर शीघ्र ही संसार से चल बसे ‡। जिन लोगों को ख़ुश करने के लिए कई लाख रुपये ख़र्च कर

‡ A new Dictionary of the belles letters. Page 35.

डाले गये उन लोगों ने उनकी इस असमय-मृत्यु पर एक बूँद आँसू गिराने की कौन बात, एक बार "आह" तक न की; वरन कितनों ही ने तो उनकी अदूरदर्शिता और अतिव्ययिता के लिए उपहास ही किया था। इस देश में न जाने कितने ज़मीदारों के सुकुमार कुमार अधिक ख़र्च और अयुक्त दान के कारण दरिद्र बन कर दुःख झेल रहे हैं। बङ्गाल के असाधारण प्रतिभाशाली कवि माइकेल मधुसूदन दत्त सम्पत्तिमान् की सन्तान होकर भी अपनी अपरिणामदर्शिता और फ़िज़ूल-ख़र्ची के कारण ऋणग्रस्त होकर स्त्री-पुत्रों के साथ सर्वदा दुःखी और चिन्ताकुल रहा करते थे। धीरे धीरे उन पर ऐसा संकट आ पड़ा कि उन्होंने अपने परिवार को नितान्त असहाय अवस्था में छोड़ कर ख़ैराती दवाख़ाने में प्राण छोड़े। उनकी शोचनीय अवस्था पर किसी कवि ने कारुण्य-पूर्ण कविता लिखी थी। उस कविता का भाव यही था कि बङ्गाल के गौरवस्वरूप अद्वितीय कवि मधुसूदन दत्त ने भिखारी के भेष में स्वर्गयात्रा की!

रूस के धनकुबेर डारविक्स के बाद उनके उत्तराधिकारी पलडारविक्स को १८८७ ईसवी में पिता के सुरक्षित १२ करोड़ रुबल (रुपयों) का आधिपत्य मिला। किन्तु अपनी फ़िज़ूलख़र्ची और विलास-परायणता के कारण वे थोड़े ही दिनों में सारे धन को उड़ा कर छोटे भाइयों और माता से सहायता माँगने को बाध्य हुए। पैरिस के एक धनकुबेर अपने बेटे को चार करोड़ फ्रैङ्क (रुपया) दे गये। बेटा ऐसा अपव्ययी था कि उस धन को मकान

बनवाने में और भोग-विलास में ख़र्च करके वह दो ही वर्ष में धन-हीन होगया। जब उसके पास कुछ न रहा तब वह राजमार्ग में झाड़ूबरदार का काम करके जीवन बिताने लगा। जो व्यक्ति मितव्ययरूपी कवच को नहीं पहनता उसकी रक्षा धन, वंश-गौरव, स्वरूप, विद्या, विनय आदि गुण किसी तरह नहीं कर सकते। अमितव्ययिता एक ऐसा दोष है जो समस्त गुणों को नाश कर के बड़े से बड़े चक्रवर्ती महाराजा को भी दरिद्र बना डालता है। ऋद्धि का गुप्त मंत्र मितव्यय है। ऋद्धि की सिद्धि के लिए इस गुप्त मन्त्र की उपासना करनी चाहिए।

अधिक दान या बेहिसाब ख़र्च करना जैसा अनुचित है वैसा ही एकदम कुछ न देना भी अकर्तव्य है। यदि मनुष्य समझ कर चले तो उसके हृदय में कर्तव्य का भाव दिन पर दिन प्रबल होता जायगा, किन्तु उदारता के अभाव से अनेक मानसिक कोमल वृत्तियों का अभाव होना सम्भव है। विद्वानों का सिद्धान्त है कि "दया ही धर्म्म का मूल है"। उस धर्म-मूल दया का प्रकाश दान से होता है। दान ही उसका एक मात्र प्रकाशक है। जिसके हृदय में दया है वह धन, मान, महत्व यहाँ तक कि प्राण तक दे डालने में कुण्ठित नहीं होता। विपत्ति के समय में सहायता करना दया का कार्य है। अज्ञानी को ज्ञान, अशिक्षितों को शिक्षा, दरिद्रों को धन, अनाथों को आश्रय, रोगियों को औषध और पथ्यादि, भूखे को अन्न, प्यासे को पानी, अनुतप्त जनों को क्षमा, कुपथगामी और कुबुद्धियों को अच्छी सलाह

देना दया का कार्य है। धर्मशास्त्र में भी यह बात कही गई है कि "दानमेकं कलौ युगे" अर्थात् कलियुग में उद्धार पाने का रास्ता एक मात्र दान है। दान ही मुख्य धर्म है। दान-धर्म के पालन से बहुत से विधिनिषेध की रक्षा होती है और अनेक नियमों पर ध्यान रखकर चलना पड़ता है। अपनी शक्ति से अधिक दान करना, अपात्रों को धन देना, ख़ुशामदियों को या अपने अपेक्षितों ही को दान देना, आवश्यकता न रहते भी किसी को कुछ दे डालना, यश लूटने के लिए दान करना, अनिच्छा से या क्रोधपूर्वक दान करना, अथवा डर से दान करना धर्ममूलक नहीं है। जिस दान में स्वार्थ का भाग है वह दान निष्कलङ्क नहीं कहला सकता। जिस दान से आल-सियों को सहारा मिले, जिस दान के द्वारा अकर्मण्य लोगों को देश की दरिद्रता बढ़ाने का अवसर मिले, उस दान का न करना ही अच्छा है। संसार में कितने ही दानवीर हो गये हैं और अब भी हैं। वे दो श्रेणियों में विभक्त हैं। गौरी सेन प्रभृति एक श्रेणी में, और दूसरी श्रेणी में दयावतार विद्यासागर आदि महापुरुष हैं। "कोई करै देन, चुकावै गौरी सेन †" यह लोकोक्ति बहुत दिनों से बङ्गाल में प्रचलित है। इसका अर्थ यही है कि गौरी सेन ऐसे धनाढ्य और दानी थे कि जो उनके यहाँ याचना करने जाता था उसके लिए वे अपने भाण्डार का द्वार खोल देते थे।

---

† बँगला में इस प्रकार कहते हैं "लागे टाका दीबे गौरी सेन"

उनके यहाँ से कोई याचक खाली हाथ नहीं जाने पाता था। इस का फल क्या हुआ ? जो लोग आलसी, अपरिश्रमी और कृपण थे वही लोग अधिकतया उनकी वदान्यता से लाभ उठाने लगे। यह कहावत "कोई करे देन, देंगे गौरी सेन" उन्हीं निकम्मे लोगों की बनाई हुई है। गौरी सेन का यह दान अविचार का ही दान कहा जायगा। उनके इस प्रकार के अतिदान से देश का विशेष उपकार तो हुआ नहीं, कुछ अपकार अवश्य होगया। जहाँ बिना सोचे समझे दान करने का प्रसङ्ग आता है वहाँ उनके नाम का स्मरण पहले ही लोगों को हो आता है। गौरी सेन बड़े दानी थे, यह प्रायः सभी जानते हैं, किन्तु उनका घर कहाँ था, किस वंश में उन्होंने जन्म लिया था, यह सब को मालूम नहीं। जो लोग योग्य पात्र को दान करके अपनी मर्यादा की रक्षा नहीं करते उनका नाम संसार में प्रतिष्ठापूर्वक चिरस्थायी नहीं होता। अब दूसरी श्रेणी के दाता की ओर देखो। विद्यासागर महाशय दया के अवतार कहलाते हैं। उन्हें सभी लोग प्रातःस्मरणीय समझते हैं। उन्होंने कितने करोड़ का दान किया था ? उन्होंने कौन सा अपना राज-भण्डार लुटाया था ? उन्होंने न तो करोड़ों का ही दान किया था और न राज्य ही उत्सर्ग करके किसी को दे दिया था। तो तुम्हीं कहो, वे दया के अवतार कैसे हुए ? कारण यह है कि उन्होंने ऐसे अमूल्य पदार्थ दान किये जिनका फल देश के सभी स्त्री-पुरुष भोग रहे हैं और भोगेंगे। कदाचित् दो एक धूर्तों ने उनके उदार हृदय और दया का सुयोग पाकर भले ही उन्हें

ठग लिया हो किन्तु उन्होंने जब दान दिया तब उपयुक्त पात्रों को ही दिया। अनाथ, असहाय व्यक्तियों को आश्रय, रोगियों को औषध और अज्ञानियों को ज्ञानोपदेश दिया। उन्होंने सबके लिए शिक्षा का द्वार खोल दिया। जो लोग यथार्थ में अन्न-वस्त्र के अभाव से कष्ट पाते थे उनका कष्ट निवारण किया और जो लोग समाज से बहिष्कृत थे उन के साथ सहानुभूति प्रकट की। इस प्रकार वे दानधर्म की सार्थकता करके दया के अवतार के नाम से प्रसिद्ध होकर आबालवृद्ध-वनिताओं के हृदय में आज भी सम्मान-भाजन बन कर पूजित हो रहे हैं।

दयावतार विद्यासागर के सैकड़ों प्रकार के दान और दया की बातें प्रसिद्ध हैं। उपयुक्त पात्र पाने पर उनकी दया जाति, मज़हब या वर्ण विशेष की तरफ़ नहीं उलझती थी। वे जिसे उपकार का पात्र समझते थे उसका यथासाध्य अवश्य ही उपकार करते थे। मैं उनके उपकार का एक उदाहरण † यहाँ उद्धृत करना आवश्यक समझता हूँ। विद्यासागर महाशय ने एक दिन अपने एक विश्वासपात्र कर्मचारी से कहा—"देखो बाबू, कोलूटोला स्ट्रीट के अमुक नम्बर के मकान में अमुक नाम के एक व्यक्ति रहते हैं। वे मद्रास के रहनेवाले हैं। मुझे मालूम हुआ है कि वे द्रव्य के अभाव से अत्यन्त कष्ट पा रहे हैं, इसलिए तुम वहाँ जाकर उनकी सच्ची ख़बर ले आओ।" विद्यासागर महा-

† स्वर्गीय रजनीकान्त गुप्त महाशय-प्रणीत "प्रतिमा" से उद्धृत और "दैनिक" पत्र में प्रकाशित आख्यान से गृहीत।

शय की आज्ञा से उस कर्मचारी ने वहाँ जाकर पहले उस मकान के मालिक से भेंट की। उनसे उसने उक्त मद्रासी का हाल पूछा। उन्होंने कहा—हाँ, वे मेरे इस मकान के नीचे के खण्ड में अपने स्त्री-पुत्र के साथ हैं। छः महीने का भाड़ा ३०) उन पर चढ़ा है। द्रव्य के अभाव से लाचार होकर अब तक वे मकान का किराया नहीं चुका सके। मैं भाड़े के लिए बार बार तक़ाज़ा करता हूँ और चाहता हूँ कि भाड़ा मिल जाने पर उन्हें यहाँ से हटा दूँ, पर क्या करूँ उनकी हालत देख कर दया आती है। दो तीन दिन से वे बेचारे बाल-बच्चों समेत भूखे हैं।

घर के मालिक के मुँह से यह बात सुन कर वह उस मद्रासी के पास गया। वहाँ देखा कि वे एक छोटी सी कोठरी में पाँच लड़कियों और दो अल्पवयस्क पुत्रों के साथ चटाई पर बैठे हैं। पुत्रों और कन्याओं का चेहरा अनाहार के कारण रोगी की तरह दुर्बल और उदास दीखता था। वह कर्मचारी इस दुर्दशापन्न मद्रासी के साथ बात चीत करने लगा। मद्रासी ने कहा—"मैंने इस कलकत्ते सदृश प्रधान शहर में कितने ही बड़े लोगों के पास जाकर अपनी विपत्ति की बातें कहीं, पर किसी माई के लाल ने मेरी दुरवस्था पर दया करके एक कानी कौड़ी देकर भी मेरी सहायता नहीं की। यों ही घूमता फिरता मैं एक बाबू के पास याचना करने गया। उन्होंने कुछ भिक्षा तो न दी, पर एक पोस्टकार्ड पर कुछ लिख कर मेरे हाथ में दिया और कहा कि इस शहर में एक परम दयालु विद्यासागर महाशय हैं,

इस कार्ड पर हमने तुम्हारे ही नाम से तुम्हारी सारी दुरवस्था का वर्णन लिख दिया है, इस कार्ड को डाक में छोड़ दो। उन की आज्ञा के अनुसार मैं उस कार्ड को डाकघर में छोड़ आया। देखें, अब मेरे भाग्य में क्या बदा है।" कर्मचारी ने विद्यासागर महाशय के पास लौट कर उन मद्रासी का सब समाचार कह सुनाया। उसकी दुरवस्था का हाल सुनकर उनकी आँखों से आँसू बह चले। उन्होंने उसी वक्त उस कर्मचारी के हाथ ३०) मकान का भाड़ा, १०) भोजन-सामग्री के निमित्त और कपड़े के दो थान भेजे और कहा कि "वे लोग यदि घर जाना चाहें तो मार्गव्यय के लिए उन्हें कितना खर्च दरकार होगा" यह उनसे पूछते आना। वे जब तक यहाँ रहेंगे मैं १५) रुपया मासिक उन्हें दिया करूँगा।" कर्मचारी ने वहाँ जाकर वह रुपया और कपड़ा उस मद्रासी को देकर विद्यासागर महाशय का सँदेशा कह सुनाया। दया के समुद्र विद्यासागर की यह अतुल दयालुता देख कर वह मद्रासी और उसके बाल-बच्चे रोने लगे। कुछ देर के बाद उसने कहा—"सौ रुपये हों तो हम लोग अपने देश पहुँच सकते हैं।" यह सुनकर विद्यासागर महाशय ने उसी कर्मचारी के द्वारा उनके पास सौ रुपये भेज दिये। कर्मचारी उन लोगों को जहाज पर चढ़ा कर लौट आया। धन लुटा देने ही से कोई दाता नहीं होता। केवल आँख मूँद कर दान करने से उचित उपकार नहीं होता। अपात्रों को दान देना अधर्म है। जो दान के उपयुक्त पात्र हैं उन्हीं को दान देना चाहिए। श्री

कृष्ण भगवान् ने अर्जुन से क्या ही अच्छा कहा है—"दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम् । व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ।" जो अल्प उपार्जन से अपने समस्त पोष्यवर्ग की रक्षा करने में अक्षम हैं, अथवा जो उपार्जन करने में असमर्थ हैं (यथा, अति वृद्ध, अन्धे, लूले, लँगड़े और चिररुग्ण मनुष्य, जिन्हें भोजन वस्त्र का कोई उपाय नहीं) ऐसे ही व्यक्ति दान के पात्र हैं। हमारे देश में ऐसे कितने ही महात्मा हैं जो केवल यश के लिए दानसागर श्राद्ध करते हैं। कितनी ही जगह उन दानी महात्माओं की ओर से अन्न का सदावर्त दिया जाता है। इन कामों की सहसा कोई बुराई नहीं कर सकता, क्योंकि इसके द्वारा अनेक दान-पात्रों को सहायता मिलती है किन्तु इसके साथ ही साथ काम कर सकने वाले कितने ही आदमी आलसी बनकर केवल दान द्रव्य के भरोसे रहने लगते हैं, कितने ही धूर्त-वञ्चक बाबाजी बन कर पैसा बटोरते हैं, और कितने ही अपात्र प्रतिपालित होते हैं। जो धनी दातृत्व गुण से विभूषित हैं वे यदि रोगग्रस्त, निराश्रय, निःसहाय, विधवा और अनाथ बालक-बालिकाओं की रक्षा का पूरा प्रबन्ध करदें; पढ़ने के लिए जिन बालकों के पास खर्च नहीं है उन्हें खर्च देकर यदि पढ़ने का सुभीता करदें तो वे सात्विक दान के फल-भागी हों और देश की श्रीवृद्धि के साधक बन कर अवश्य धन्यवाद के पात्र बनें। यहाँ एक सत्य घटना की बात लिखी जाती है—युक्तप्रदेश में रहने वाली एक वङ्गमहिला अपने लड़के को ताड़ना

करने लगी। वह पढ़ने लिखने में मन न लगाता था। तब उसकी बूढ़ी सास ने झट आकर उसका हाथ पकड़ लिया और गरज कर बोली—"तू इस लड़के को आज चीर फाड़ कर मार ही डालेगी। खबरदार जो आज से इस लड़के को कुछ कहा-सुना। मेरे रहते तू इसको सज़ा देने वाली कौन? भाग्य से मेरा बच्चा जिये। न कुछ लिखे-पढ़ेगा तो न सही, काशी का क्षेत्र बना है।" न मालूम आगे जाकर उस बालक की क्या दशा हुई। किसी किसी के मुँह से यह भी कहते सुना है कि "संसार में बड़े बड़े दानी हैं, लड़का मूर्ख होकर भी जी जाय, न होगा माँग कर ही खायगा।" अविचारी दाता के भरोसे और जहाँ तहाँ के अन्नसत्र के भरोसे लोगों की इस तरह की धारणा बड़ी ही शोकजनक और भय उपजाने वाली है।

देवभाषा और उसका साहित्य ज्ञान-गर्भ है, सौन्दर्य और अपूर्वता में वह अतुलनीय है एवं आर्य जाति का गौरव-धन है। उस अमृतमयी देव-भाषा की चर्चा और शिक्षा की अवनति होते देख कर विद्वद्वर भूदेवचन्द्र मुखोपाध्याय मर्माहत हुए थे। वे एक दरिद्र विद्वान् के पुत्र थे। उन्होंने बड़े बड़े कष्ट सहकर लिखना-पढ़ना सीखा था। वे दारिद्र्य-यातना से अभिभूत होने पर भी निरुत्साह न होकर अध्यवसाय और सहिष्णुता के साथ विद्याध्ययन करके अँगरेज़ी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् हो गये। वे ब्राह्मणत्व, हिन्दूधर्म, आयुर्वेदीय चिकित्सा, ज्ञान, नीति और धर्मशास्त्र के पक्षपाती तथा प्रचारक थे। वे इन सब विषयों के

पुनरुद्धार और प्रचार के लिए अपने उपार्जित धन से एक लाख साठ हज़ार रुपया दान देगये हैं। एक दरिद्र-सन्तान राजकर्मचारी भारतवासी के हाथ से देश-सेवा के लिए इतना धन-दान होना क्या सामान्य बात है? भारत के लिए इस दान को अतुलनीय कहें तो अत्युक्ति न होगी।

स्वर्गीय मोहनोमोहन राय हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध वकील थे। उन्होंने वकालत करके कई लाख रुपये कमाये थे। संसार में ऐसे कितने ही कृपण हैं जिनके पास असंख्य धन है, किन्तु वह मिट्टी के भीतर ही छिपा रहता है, किसी के उपकार में नहीं आता। विचारवान् पुरुषों के हाथ में द्रव्य आने पर उसका उचित उपयोग होता है। वे उसे अच्छे कामों में खर्च कर देश का उपकार करते हैं। मोहिनी बाबू सत्पात्र को दान देकर अपने उपार्जित धन को सार्थक कर गये हैं। उन्होंने साउथ सुबर्बन स्कूल की इमारत बनवाने के लिए तथा ढाके के सारस्वत-समाज को, डाक्टर 'सरकार' की वैज्ञानिक सभा को और अलीपुर की पशुशाला आदि अनेक देशोपकारी संस्थाओं को कई हज़ार रुपये दे डाले। वे छोटे लाट और बड़े लाट साहब की सभा के मेम्बर थे। ६३ वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हुआ। जब तक वे जीते रहे तब तक उनका ध्यान बराबर देशोपकारी कामों की ओर बना रहा। उन्होंने मृत्यु के पहले आखिरी दान में एक लाख रुपया गवर्नमेंट को इस लिए सौंप दिया कि "इस रुपये के ब्याज से एक रुपया माहवारी उन दरिद्रों को दिया जाय जो उपार्जन

करने में असमर्थ हों। दरिद्र किसी भी जाति के क्यों न हों।" इस प्रकार अनेक उचित दान देकर भी वे अपनी सन्तान के लिए एक लाख बीस हज़ार रुपया सालाना आमदनी की ज़मींदारी और दस लाख रुपये नक़द छोड़ गये हैं*।

सिंहलद्वीप निवासी महता शैसा एक दरिद्र के घर में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपनी सच्चरित्रता, अध्यवसाय और उद्योग के बल से अतुल ऐश्वर्य का आधिपत्य प्राप्त किया था किन्तु उनका वह अपने पसीने का कमाया हुआ सारा धन न परिवार के सुख-सम्भोग में खर्च हुआ और न उन लोगों के लिए सञ्चित रूप में ही रक्खा गया। वे अपने धन का अधिकांश दान कर गये हैं, किन्तु उन्होंने दोनों हाथों से सर्वस्व लुटा कर दाता कर्ण का यश लूटने की कभी चेष्टा नहीं की। उनके सम्पूर्ण दानों की तालिका देना तो असम्भव है तो भी उनके कई दानों का उल्लेख यहाँ किया जाता है। नीचे की सूची में जो रक़म है वह उक्त संस्थाओं को हर साल मिलती है।

मरुतोया शैसा कालिज के लिए	२००००)
निगम्बो धीवर विद्यालय " "	२०००)
परादेनिया कृषिकालिज और कृषि-क्षेत्र के लिए...	१०००००)
कोलम्बो के तीन बालिका-विद्यालयों " "...	६०००)
कोलम्बो शैसा कालिज के लिए	२४०००)

* "हितवादी" १३०५ साल, पहला आश्विन।

मरुत्तोया खिष्ट गिर्जा और खिष्टसभा के लिए ...	१३०००)
कोलम्बो खिष्टसमाज के लिए	१००००)
कोलम्बो, कागडी, अनन्तपुर और गलबन्दर की सड़कों के लिए	३५००)
कागडी कालिज के लिए	१२००)
त्रिनूकोमाली बन्दर की सभा को दीनों के सहायतार्थ	२५००)
गलबन्दर की सभा में दीन-हीन यात्रियों के सहायतार्थ	२५००)
बौद्ध कङ्गाली सभा के लिए	१२०००)
खिष्ट कङ्गाली " "	१२०००)
सिंहलद्वीप की समस्त दरिद्र खिष्टीय-अतिथिशाला के लिए	८०००)
सिंहली भाषा की उन्नति के लिए ...	६०००)
ईसाई मत की पुस्तकों के प्रचारार्थ ...	६०००)
कई एक औषधालयों के लिए	१०००००)
सङ्गीत कालिज के लिए	१२०००)
देशीय वैद्यक विद्यालय के लिए	२०००)
अनाथाश्रम के लिए	१००००)
वार्षिक व्यय का जोड़	३५२७००)

उन्होंने इस दान के अतिरिक्त और भी अनेक दान करने पर अपने पुत्र और कन्या के ब्याह में एक करोड़ रुपया खर्च किया था और जब वे मरने लगे तब अपने जेठे पुत्र को दो करोड़

रुपया और ज़मींदारी, कोठी, कारखाने, माल-असबाब आदि अतुल ऐश्वर्य देकर निश्चिन्त हुए। राजराजेश्वरी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक आव् एडिनबरा ने शैसा की स्त्री को एक करोड़ रुपये का ज़ेवर पहने देख कर कहा था—"वह विलायत के एक प्रतिष्ठित ज़मींदार की सम्पत्ति से भी अधिक मूल्यवान् है"। महता शैसा की जब मृत्यु हुई तब उनके श्राद्ध में तीन लाख रुपये तो केवल भिखारियों को बाँटे गये थे। भिखारियों ने एक स्वर से जयजयकार मनाई। महता शैसा की जयध्वनि से आकाश गूँज उठा था।

नार्वे-निवासी इमानुवल नोब्ल के पुत्र अलफ्रेड नोब्ल ने बारूद, गनकाटन्, नाइट्रोग्लिसरिन डिनामाइट आदि दाहक और विदारक पदार्थों का आविष्कार किया था और इन रासायनिक पदार्थों तथा नकली गटापार्चा के व्यवसाय के द्वारा प्रचुर धन पैदा किया था। उन्होंने मरते समय अपने बन्धु-बान्धवों से कहा था—"मैं देख रहा हूँ कि उत्तराधिकार के सम्बन्ध से जो अधिक धन का अधिकारी होता है वह सुख से समय नहीं बिता सकता। वह बुद्धि की तीक्ष्णता और मनुष्यता से रहित हो जाता है। वह ईश्वर की दी हुई शक्ति का सदुपयोग अथवा अपने बाहुबल से अपनी उन्नति की चेष्टा करना नहीं जानता। उसे आलसी हो कर पड़ा रहना ही अच्छा जान पड़ता है। अतएव सन्तान को उतना ही धन देना चाहिए जितना उनकी पूँजी के लिए उपयुक्त हो, जिसके

द्वारा वे अपनी जीविका प्राप्त करने में उद्यत हो सकें। इसके सिवा जो धन बचे उसे देश के सर्व साधारण के उपकार में लगा देना चाहिए।" नोब्ल के जितने आत्मीय लोग थे सभी सम्पन्न थे अतएव उन्होंने किसी को कुछ न देकर अपना समस्त धन देशोन्नति के लिए दे डाला। उनकी सम्पत्ति से सालाना छः लाख आय होती है। उससे प्रतिवर्ष पाँच व्यक्तियों को एक लाख बीस हज़ार रुपया का एक एक पुरस्कार देने की व्यवस्था की गई। तदनुसार (१) पदार्थ-विज्ञान, (२) रसायन-विज्ञान और (३) चिकित्सा-विज्ञान में साल भर के दर्मियान जिस जिसने श्रेष्ठ आविष्कार किया हो उसे और (४) साहित्य के लिए उन्नतिकारक उच्चकोटि के काव्य-रचयिता को, और (५) विभिन्न जातियों में भ्रातृ-भाव और शान्ति-रक्षा स्थापित करनेवालों में सबकी अपेक्षा जो विशेष काम कर दिखावे उसको यह पुरस्कार दिया जाता है। नोब्ल ने जो कहा उसे कर दिखाया। इसी तरह जमशेदजी नसरबानजी ताता, एन्ड्रू कार्नेगी आदि महापुरुषों ने जो अतुल दान किया है वह सात्त्विक दान का आदर्श है, इसमें सन्देह नहीं। सन् १८९९ ईसवी में कार्नेगी ने ७५ लाख रुपया मार्किन देश के अवैतनिक पुस्तकालयों के लिए और दस लाख अन्यान्य देशोपकारी कामों के लिए दान कर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दस वर्ष के बीच उन्होंने १८ करोड़ रुपये दान कर दिये।

ऐसे ही और भी अनेक दानशील व्यक्तियों ने विचारपूर्वक

दान करके देशोपकार किया है। जिस दान से देश का या समाज का कुछ उपकार न हुआ वह दान किस काम का? भारत के धनाढ्य लोग यदि दाता कर्ण न बन कर विचार-पूर्वक दान करते तो बहुत कुछ देश की उन्नति होती।

चौथा अध्याय

परिश्रम

"देहरूपी औज़ार के लिए आलस्य ज़ङ्ग है। शरीर से बराबर काम लेते रहना चाहिए, नहीं तो आलस्यरूपी ज़ङ्ग लग कर ख़राब हो जाता है"।

जड़ और चेतन में जितना भेद है उतना ही भेद प्रायः आलसी और परिश्रमियों में भी है। बिना परिश्रम किये जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता। संसार के जितने काम हैं सबका मूल परिश्रम है। परिश्रम पर काम और काम पर जीवन अवलम्बित है। ईश्वर की सृष्टि में कोई काम से ख़ाली नहीं है। क्या नभचर, क्या जलचर, क्या थलचर सभी अपने अपने निर्दिष्ट कामों में लगे हैं। ऐसी अवस्था में काम न करना मानो ईश्वर की आज्ञा का उल्लङ्घन करना है। काम के साथ मिहनत लगी है। बिना मिहनत किये एक भी काम नहीं हो सकता। जीवन-धारण के लिए, स्वास्थ्य-रक्षा के लिए, पैसा कमाने के लिए तथा अपनी और अपने देश की उन्नति के लिए परिश्रम करना आवश्यक है। ऋद्धि प्राप्त करने की पहली सीढ़ी परिश्रम है। अतएव जो परिश्रमी होगा वही ऋद्धि प्राप्त करने में कृतकार्य्य होगा। परिश्रम से जी चुरानेवाले आलसी लोगों के लिए सारे ब्रह्माण्ड में कहीं भी

जगह नहीं। संसार में यदि कुछ बेकार है तो वह आलसी लोगों का जीवन है। कर्महीन आलसी मनुष्यों को, चिरगाढ़ निद्रित की तरह, जड़ (अचेतन) पदार्थ की तरह और जीवनहीन प्राणियों की तरह समझना चाहिए। केवल साँस लेने ही से कोई जीवन धारण करने का गर्व नहीं कर सकता। जीवन की सार्थकता तभी है जब परिश्रम के द्वारा उसका उपयोग हो। कर्म के मैदान में चक्रवर्ती महाराज से लेकर झाड़ूबरदार तक, प्रतिभावान् विद्वान् से लेकर महामूर्ख तक, सभी को परिश्रम करने का अनिवार्य्य अधिकार है। इस गुण (परिश्रम) का भाग जो जितना अधिक प्राप्त कर सकता है उतना ही वह अपनी योग्यता और यश को अधिक बढ़ा सकता है। जो प्रतिभावान् हैं वे साधारण व्यक्ति की अपेक्षा अधिक काम कर सकते हैं और वे जिस काम में हाथ डालते हैं उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। प्रतिभाशाली पुरुष स्थिरचित्त होकर किसी विषय में देर तक परिश्रम कर सकते हैं। शिक्षकों के आदर्श-स्वरूप रुगबी विद्यालय के प्रसिद्ध अध्यापक अर्नेल्ड का कथन है कि मनुष्यों में बुद्धि के सम्बन्ध में उतनी विभिन्नता नहीं पाई जाती जितनी कर्म और श्रमशक्ति के सम्बन्ध में पाई जाती है। आशा भी उसी की की जाती है जो कठिन परिश्रमी और कर्मशील होता है। आलसी की कभी कोई आशा नहीं करता।

परिश्रम दैहिक हो चाहे मानसिक, दोनों ही प्रशंसनीय हैं। सब देशों के विद्वानों ने एक स्वर से परिश्रम की महिमा गाई है।

भारत जब उन्नति पर था तब यहाँ किसी भी श्रेणी का मनुष्य परिश्रम करने में संकोच नहीं करता था। रोम का राज्य जिस समय प्रजातन्त्र था उस समय समाज के प्रधान प्रधान व्यक्ति अपने हाथ से हल जोतते थे और ख़ुद खेती-बारी करते थे। भारत का एक वह शुभ समय था जब राजर्षि जनकजी ने अपने हाथ में हल लेना बुरा नहीं समझा था। महारानी विक्टोरिया के जामाता सम्राट् फ्रेडरिक ने छपाई का काम सीखा था। उनके प्रथम पुत्र युवराज हेनरी ने जिल्द बाँधने का काम सीखा था। रूस के सम्राट् महाप्राज्ञ पिटर ने वेष बदल कर बढ़ई और लुहार के रूप में देशान्तर में जाकर परिश्रम के साथ कारीगरी का काम सीख कर अपनी प्रजा को सिखलाया था। इँगलैंड में समाज के ऐसे कितने ही प्रधान हैं जो काम सीखने के लिए किसी समय लुहार के कारख़ाने का धुवाँ पीते पीते काले हो जाते थे। इस देश के धनी, मानी और अभिज्ञ लोग यदि सम्मान और संकोच की ऊँची अटारी से नीचे उतर कर खेती और शिल्पकारी के कामों में यथाशक्ति योग दें तो थोड़े ही दिनों में भारत का सुदिन लौट आवे।

नार्वे और स्वीडन के राजकुमार अस्कर बार्नाडोट ने एक शिक्षालय स्थापित किया है जिसमें रविवार को ही पढ़ाई होती है। राजकुमार स्वयं बालक-बालिकाओं को नीति और धर्म का उपदेश देते हैं। राजकुमार जिस समय प्रजा की सन्तान को अपनी सन्तति की तरह मान कर यत्नपूर्वक शिक्षा देते हैं उस

समय का दृश्य क्या ही मनोहर होता है। न मालूम भारत के राजा महाराजा अपने देश के बालकों की नीति-शिक्षा के लिए कब महामति अस्कर के प्रदर्शित पथ का अनुसरण करेंगे? क्या वे दुग्धफेननिभ कोमल विलास-शय्या को त्याग कर कठोर नीति-विद्यालय में पैर रखने और उस राजसी लिबास में शिक्षक का आसन ग्रहण कर उपदेश देने का परिश्रम स्वीकार करेंगे?

संसार में कोई एकाएक उन्नत और श्रीसम्पन्न नहीं होजाता। यह असम्भव है कि एक ही दिन के परिश्रम से कोई व्यक्ति ज्ञान, यश और सम्पत्ति के द्वार तक पहुँच जाय। ज्ञान, विद्या, धन और यश ये सभी श्रम-साध्य हैं। बालक यदि परिश्रम कर विद्या न पढ़े, गृहस्थ यदि परिश्रम कर खेती न करे तो वे विद्या और अन्नजनित सुख क्योंकर प्राप्त कर सकेंगे। ऐसे ही कार्य्य मात्र का कारण परिश्रम है। राजभवन, दुर्ग, बड़े बड़े पुल, जहाज़ और यन्त्र (कल) आदि जितने मनुष्य-निर्मित असंख्य सुखद पदार्थ दिखाई देते हैं सब परिश्रम के ही फल हैं। जिस देश के लोग जितने अधिक परिश्रमी हैं वहाँ के मनुष्य उतने ही अधिक सुखी हैं। अतएव यदि तुम ऋद्धिमान् होना चाहो, सुख से समय बिताना चाहो, तो परिश्रमी बनो।

श्रमविभाग और साझे का कारबार

"धन-कुबेर से लेकर साधारण गृहस्थ तक के स्वार्थ को एक सूत्र में बाँधने और बहुत लोगों की शक्ति को किसी एक विषय में नियोजित करने का उत्कृष्ट क्षेत्र है—यौथ-व्यवसाय।"

किसी एक काम को अनेक व्यक्तियों में बाँटने का नाम श्रम-विभाग है। श्रमविभाग-नीति के अनुसार कोई एक काम पूरा करने के लिए उस काम के भिन्न भिन्न अंश भिन्न भिन्न पुरुषों के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। और उन भिन्न भिन्न व्यक्तियों के परिश्रम के द्वारा वह काम पूर्ण होता है। यह श्रमविभाग-नीति पहले पहल प्राचीन भारत में आविष्कृत हुई थी। हिन्दू-समाज इसी नीति पर प्रतिष्ठित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में समाज का भिन्न भिन्न काम बाँट दिया गया था और प्रत्येक वर्ण अपने कर्तव्य का उचित रीति से सम्पादन कर हिन्दू-समाज का काम अच्छी तरह चला रहा था। संसार में जितने समाज हैं सभी श्रमविभाग-नीति के अनुसार परिचालित होते हैं। घर के सभी आवश्यक काम यदि एक ही आदमी के हाथ में दिये जायँ तो उनका सम्पन्न होना कदापि सम्भव नहीं, इसलिए श्रमविभाग-नीति का अवलम्बन कर घर के लोग जब आपस में थोड़ा थोड़ा काम बाँट लेते हैं तब बड़ी सफ़ाई से काम पूरा हो जाता है। इस तरह आपस में थोड़ा थोड़ा श्रम स्वीकार करके काम करने से थोड़े से समय में बड़े से बड़ा काम अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है। जो काम एक आदमी के लिए तीस दिन में परिश्रमसाध्य है वह तीस व्यक्तियों में विभक्त होने पर एक ही दिन में हो जा सकता है। ये जो बड़े बड़े कारख़ाने और तिजारत की कोठियाँ दिखाई देती हैं, जिनसे साल में करोड़ों का नफ़ा होता है, वे दस मनुष्यों के एकत्र धन और परिश्रम

के ही फल हैं। दस मनुष्यों का कुछ कुछ धन और परिश्रम एकत्र होकर विशेष धन-प्राप्ति का द्वार बन जाता है। इसी कारण सम्भूयसमुत्थान की सृष्टि हुई है। डाक-विभाग के द्वारा लोगों का काम जो बड़ी सुलभता से चल रहा है यह श्रमविभाग ही का फल है। श्रमविभाग से विशेष लाभ पहुँचने का अच्छा उदाहरण डाक-प्रबन्ध है। यदि डाक का प्रबन्ध न होता तो किसी आदमी के हाथ दूरस्थ आत्मीय व्यक्ति के पास पत्र भेजने में बड़ी कठिनता होती और ख़र्च भी अधिक करना पड़ता। साधारण लोगों के लिए तो दूर देश में पत्र भेजना एक प्रकार से असम्भव ही हो जाता। किन्तु श्रमविभाग-नीति के अनुसार डाकविभाग स्थापित होने से एक पैसा ख़र्च करके लोग सैकड़ों-हज़ारों कोस पर ख़बर भेज सकते हैं। थोड़े ही ख़र्च में कहाँ की चिट्ठी कहाँ चली जाती है। दूर दूर की चीज़ें घर बैठे लोग मँगा लेते हैं। यदि श्रमविभाग-नीति का सहारा न लिया जाता तो इस प्रकार की सुविधा प्राप्त होना क्या कभी सम्भव था? श्रम-विभागनीति के द्वारा लोगों का इस प्रकार उपकार होने के साथ ही साथ आय की भी वृद्धि होती है। मान लो, एक लाख रुपये से कोई एक कारख़ाना खोलना है। एक आदमी इतना रुपया अकेला इकट्ठा नहीं कर सकता। यदि ऐसी अवस्था में इसे सौ हिस्सों में बाँट लिया जाय और सौ व्यक्तियों को हिस्सेदार बना करके प्रत्येक से एक एक हज़ार रुपया लिया जाय तो सहज ही एक लाख रुपया इकट्ठा हो सकता है और इसके द्वारा वह

लाभजनक कारख़ाना बड़ी सुगमता के साथ खोला जा सकता है। उस कारख़ाने से जो लाभ होगा उसमें सब हिस्सेदारों का अंश बराबर होगा। इसी प्रकार एक हज़ार मनुष्य एक एक सौ रुपया देकर बात की बात में एक लाख रुपया एकत्र कर सकते हैं और उसके द्वारा कोई लाभजनक व्यवसाय करके विशेष लाभ उठा सकते हैं। सौ रुपये के स्वतन्त्र व्यवसाय से जो लाभ हो सकता है उससे लाख रुपये के व्यवसाय में शरीक होने पर विशेष लाभ की सम्भावना है। साझे के कारबार में दस पाँच रुपया देकर भी लोग उस कारख़ाने के हिस्सेदार बन सकते हैं और अपने दिये हुए रुपये के अनुसार मुनाफ़े के अधिकारी हो सकते हैं। इसी सुलभ लाभोपाय का अवलम्ब करके व्यवसायियों ने अनेक यौथ व्यवसायों की सृष्टि की है। रेल, साझे की तिजारत, खान की ठेकेदारी, कागज़, कपड़ा, दियासलाई, साबुन, पेन्सिल, लोहा, पीतल, ताँबा आदि तथा मिट्टी के बर्तन आदि, लकड़ी की बनी चीज़ों और, और भी कितनी ही व्यावहारिक वस्तुओं के कारख़ाने जो जगह जगह देखे जाते हैं वे सब भिन्न भिन्न प्रकार के साझे की शक्ति से परिचालित हो रहे हैं और दिन दिन उनकी संख्या बढ़ रही है। यह यौथ व्यवसाय विशेष रूप से लक्ष्य करने का विषय है। ये जितने कारबार हैं सभी प्रायः मध्य अवस्थावाले धनवानों के इकट्ठे किये धन के द्वारा स्थापित हो कर परिचालित हो रहे हैं। इस साझे के व्यवसाय में जितना ही अधिकार एक धन-कुबेर का है उतना ही

एक सामान्य गृहस्थ का भी समझना चाहिए। कोई कारखाना जो हज़ारों रुपये की पूँजी के द्वारा चल रहा है उसके प्रायः प्रत्येक हिस्सेदार ने पाँच रुपये दिये थे।

इस देश में अन्यान्य देशों की तरह प्रचुर मूलधन के यौथ कारबार की संख्या अधिक नहीं है। इसका कारण यही है कि देश में धन नहीं। यद्यपि इस देश में धन की सङ्कीर्णता है तथापि लोगों की संख्या इतनी अधिक है कि थोड़े ही थोड़े अंश मिल कर करोड़ों रुपये संगृहीत हो सकते हैं। भारतवासियों की संख्या लगभग तीस करोड़ के है। यदि व्यक्ति मात्र एक आने का स्वत्व त्याग करें तो एक करोड़ सतासी लाख पचास हज़ार रुपया बात की बात में जमा हो सकता है। एक आना देने में शायद एक मज़दूर भी मुँह न मोड़ेगा। किन्तु क्या ज़मीदार, क्या गृहस्थ, क्या ग़रीब सभी व्यवसाय-बुद्धि के अभाव से एक साथ मिल कर कोई कारबार करना नहीं चाहते। भारतवासी यदि मिल जुल कर सच्चे हृदय से परस्पर सहानुभूति प्रकट कर ईमानदारी, सहिष्णुता, अध्यवसाय और पारस्परिक विश्वास के साथ कर्तव्य-ज्ञानपूर्वक यौथ व्यवसाय करने को प्रवृत्त होते तो देश की दरिद्रता बहुत शीघ्र सात समुद्र के पार चली जाती। यदि यहाँ इस तरह का यौथ व्यवसाय यानी साझे के प्रयोजनीय कारख़ाने बहुतायत से खुलते तो यहाँ के मज़दूर जो मज़दूरी के लिए देशदेशान्तर में जाते हैं क्यों जाते? अपने देश के द्रव्य से अपने देश के मज़दूर पलते, यह क्या ही अच्छा होता। हर्ष का

विषय है कि शिक्षित लोगों में अब किसी किसी का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो चला है और बहुतों ने इसे आवश्यक और उपयुक्त समझा है। इससे भारत में कपड़े, साबुन, काँच, दिया-सलाई, ईंट और अनेक प्रयोजनीय वस्तुओं के कल-कारख़ाने और साझे की कोठी आदि जहाँ तहाँ स्थापित हो रही है। साझे का कारबार किसी तरह का क्यों न हो, बिना श्रमविभागनीति के चल नहीं सकता। कारण यह है कि जितने साझे के व्यवसाय हैं वे श्रमविभाग के ऊपर ही अवलम्बित हैं। कोई दूकानदार एक मामूली दूकान को अकेले चला सकता है क्योंकि उसकी दूकान का ख़र्च अधिक नहीं है। किन्तु गोलेदार की दूकान में जहाँ सैकड़ों मन अन्न और तरह तरह की चीज़ें रोज़ बिकती हैं वहाँ दूकान का मालिक यदि अकेला ही सब सौदा बेचना चाहे और दूकान के जितने काम हैं सब स्वयं करना चाहे तो यह कभी हो नहीं सकता। वह उतना ही काम करेगा जितना कि वह अकेला कर सकता है। बाक़ी काम के लिए उसे सहायता लेनी पड़ेगी। अतएव अपने प्रयोजन के अनुसार दूकान का काम चलाने के लिए उसे नौकर अवश्य नियुक्त करने होंगे। एक ादमी जब अपनी दूकान का काम अकेला नहीं चला सकता, साधारण कारबार में जब इस प्रकार श्रमविभाग की आवश्यकता होती है, तब जो कारबार सैकड़ों हज़ारों हिस्सेदार मनुष्यों के लाखों रुपये की पूँजी से स्थापित हुआ है वह बिना श्रमविभाग के कैसे चल सकता है? श्रमविभाग की प्रधान उपकारिता यही

है कि उसके द्वारा समय नष्ट नहीं होता। कारण यह है कि जिस व्यक्ति को जो काम सौंपा जाता है वह उसे मनोयोग-पूर्वक करता है। एक व्यक्ति के हाथ में यदि भिन्न भिन्न प्रकार के दो चार काम दिये जायँ तो सम्भव है कि एक प्रस्तुत काम को छोड़ कर और उस काम में लगे हुए मनोयोग का सूत्र तोड़ कर दूसरे नये काम में फिर से उसे मनोयोग करना पड़े और इसके साथ ही समय भी कुछ नष्ट करना पड़े। किन्तु एक व्यक्ति को एक ही तरह का काम देने से इस प्रकार वक़्त बरबाद नहीं होता और इसमें एक विशेष लाभ यह है कि एक ही काम बराबर करते रहने से उसमें व्यक्ति विशेष का तजरिबा बढ़ता है, शीघ्रता से कार्य करने की क्षमता प्राप्त होती है और सफ़ाई से काम करने का अभ्यास होता है। बल्कि जो मनुष्य लगातार एक ही काम करता है वह चिरअभ्यस्त होने के कारण उस काम को बड़ी आसानी और थोड़े श्रम से सम्पन्न करने का रास्ता निकाल लेता है। जिस काम में जिसका जितना अधिक अभ्यास होगा उसमें वह उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त करेगा। चिरशिक्षित के द्वारा जो काम जिस सफ़ाई से हो सकता है वैसा नवशिक्षित के हाथ से नहीं हो सकता। एक पाकप्रक्रिया ही को लीजिए। जिसने कभी रसोई नहीं बनाई है उसके आगे रसोई का सब सामान रख दीजिए और देखिए वह रसोई बनाने में कहाँ तक सफल होता है। ऐसे ही हरेक काम में अभ्यास की बड़ी ज़रूरत है।

मूर्ख ही क्यों न हो, बहुत दिन का अभ्यास होने पर वह जिस सफ़ाई से काम कर सकता है वैसी सफ़ाई अनभ्यस्त विद्वान् से होनी कदापि सम्भव नहीं। अभ्यास करने पर मूर्ख की अपेक्षा विद्वान् उसे और भी सफ़ाई से कर सकता है, यह दूसरी बात है। यौथ व्यवसाय में विद्वान् से लेकर मूर्ख तक सभी का उपयुक्त कामों के द्वारा निर्वाह हो सकता है, यहाँ तक कि इस श्रमविभाग-नीति की कृपा से कितने ही लूले, लँगड़े, अन्धे, बालक और वृद्ध भी कमा कर खा सकते हैं। श्रमविभागनीति का जितना ही अधिक प्रचार होगा उतनी ही अधिक भिखमंगों की संख्या घटेगी। जो लंगड़े या अन्धे हैं वे एक जगह बैठ कर ही कोई काम कर सकते हैं, यथा पंखा चलाना और चर्खा घुमना आदि। जो लोग हाथ से काम करने लायक़ नहीं हैं वे चिट्ठीरसा का काम कर सकते हैं। कारख़ाने में ऐसे कितने ही काम रहते हैं जिन्हें बालक और वृद्ध भी कर सकते हैं। इस यौथ व्यवसाय की उपकारिता सोच कर सुप्रसिद्ध परोपकारी महाजन टामस लिप्टन ने, कई वर्ष हुए, अपने व्यवसाय को साझे के कारबार का रूप देकर अपने कर्मचारियों को उसका हिस्सेदार बनाया। प्रत्येक अंश १५) रुपये का रक्खा गया। चौथाई रुपया अगाऊ देने से हिस्सेदार होने का नियम निर्धारित हुआ। इतने थोड़े रुपये में हिस्सेदार होकर इतने बड़े कारबार के लाभ का अंश प्राप्त करना कौन न चाहेगा? सात दिन के भीतर कई करोड़ रुपयों के हिस्सेदार इकट्ठे हो गये। इस साझे के कारबार का नाम लिप्टन

कम्पनी रक्खा गया। लिपूटन कम्पनी किस ख़ूबी से चल रही है वह इतने ही से जाना जा सकता है कि "लिपूटन की चाय" निकाल लेने पर जो ख़ाली डिब्बे रह जाते हैं उनकी बिक्री से प्रति वर्ष पचहत्तर हज़ार रुपये की आमदनी होती है। जिन्हें यौथ व्यवसाय की उपकारिता विशेष रूप से जानने की इच्छा हो वे वणिक्-श्रेष्ठ ताता के स्थापित एम्प्रेस मिल के इतिहास पर ध्यान दें।

यह मिल* कोई १४ लाख रुपये की पूँजी संगृहीत कर के चलाई गई। इस में पाँच सौ रुपये के हिसाब से तीन हज़ार हिस्सेदार नियत हुए। सन् १८७७ ई० में १५५५२ थ्रोष्टल चर्खे और १४४०० मिडल चर्खे और ४५० लूम ले कर इस मिल का कार्य आरम्भ हुआ। यह मिल आठ सौ घोड़े के तुल्य बल रखने-वाले एञ्जिन के द्वारा चलाई गई थी। इस कम्पनी ने कारख़ाने के लिए २६४ बीघे ज़मीन नागपुर में ख़रीदी। मिल, गोदाम, आफ़िस, कर्मचारियों के रहने के घर,माल बेचने के लिए गोदाम, धुलाई और रँगाई आदि के मकान, छः लाख चौहत्तर हज़ार चार सौ उनसठ वर्गफुट (स्क्वायर फ़ीट) ज़मीन के घेरे में बने हैं। इसके सिवा और भी कई मकान अन्यान्य कामों के लिए बने हैं।

---

* 'महाजनबन्धु' नामक पत्र के १३१२ साल के आश्विन की संख्या में श्रीयुत कुञ्जविहारी सेन लिखित "नागपुर एम्प्रेस मिल" शीर्षक लेख से उद्धृत।

इसकी स्थावर सम्पत्ति का मूल्य लगभग अठारह लाख रुपये के है। इस कारखाने की पुरानी सभी कलें बदल दी गई हैं और उनकी जगह नई बैठाई गई हैं। इस समय इस मिल में ७४६२४ रिंग चरखे, १६८४ लूम और दो एञ्जिन चल रहे हैं। एक एञ्जिन में २४०० बलिष्ठ घोड़ों के बराबर शक्ति है और दूसरे में ३७५ घोड़ों के बराबर। "८×३०" फुट के १२ लङ्केशायर ब्वायलरों के द्वारा काम होता है। इसके अतिरिक्त और भी कितनी ही कलें हैं, जिन से धुलाई, रँगाई आदि भिन्न भिन्न प्रकार के काम लिये जाते हैं। कुल अस्थावर सम्पत्ति का मूल्य ४४८६८४६ रुपया है। इस कारखाने में ४३०० मनुष्य रोज़ काम करते हैं। इस कारखाने की बनी चीज़ें बेचने के लिए भारत के प्रसिद्ध स्थानों में २८ आढ़तें हैं। इस कम्पनी ने गत २६ वर्ष में ३१८७५००) लाभांश से मूलधन को बढ़ाया है। हिस्सेदारों को एक करोड़ तेंतीस लाख उनतीस हज़ार तीन सौ इक्यासी रुपया मुनाफ़े के दिये गये हैं। इसके अलावा रिज़र्व फ़ंड, इन्श्योरेन्स फ़ंड, कर्मचारियों के लिए पेंशन फ़ंड और प्रौविडेन्ड फ़ंड आदि में सब मिला कर तेंतीस लाख इक्कीस हज़ार एक सौ चौरासी रुपया मौजूद है। प्रथम २८ वर्ष में इस मिल के द्वारा लगभग १ करोड़ ६८ लाख ३६ हज़ार रुपये का मुनाफ़ा हुआ था जो मूलधन के तेरह गुने से भी अधिक हुआ।

धन

"धन वह विलक्षण वस्तु है जिसके रहने से मुख-मण्डल में लाली बनी रहती है। धन का अभाव होते ही मुँह की लाली चली जाती है और पीलापन छा जाता है। रुपये का तोड़ा आने के साथ फिर वह लाली पलट आती है।"

धनी होने के पहले यह जान लेना चाहिए कि धन क्या है? धनी होने की इच्छा प्रायः सभी को होती है। पर कितने ही व्यक्तियों को यही नहीं मालूम कि धन क्या चीज़ है। पहले कहा जा चुका है कि धन और श्रम में कार्य्य-कारण-सम्बन्ध है। धन अनेक प्रकार के होते हैं: किन्तु सबका मूल एक परिश्रम है। बिना परिश्रम के किसी प्रकार का धन प्राप्त नहीं हो सकता। सिर्फ़ रुपये पैसे ही को धन मान लेना भूल है। यदि इसी को लोग धन मानते तो विद्याधन, यशोधन और गोधन आदि शब्दों का प्राचीन साहित्य में प्रयोग देखने में न आता और न लोगों को मुँह से ऐसा कहते ही सुना जाता। आज कल हम लोग जैसे रुपयों से गाय, भैंस, घोड़े और अन्न आदि चीज़ें ख़रीदते हैं वैसे पहले के लोग न ख़रीदते थे। वे लोग वस्तु देकर ही वस्तु ख़रीदते थे। वस्तुविनिमय के द्वारा ही व्यावहारिक काम चला लेते थे। उन दिनों द्रव्य का व्यवहार बहुत ही कम था। द्रव्य का संग्रह करना लोग आवश्यक नहीं समझते थे। उस समय के लोग आवश्यक वस्तुओं के संग्रह मात्र को धन गिनते थे। अब भी देहात में कितने ही गृहस्थ अन्न और पालित पशुओं को बेच

कर ही आवश्यक वस्तुएँ खरीदते हैं। कलकत्ता आदि कितने ही स्थानों में देखा गया है कि घर की सुघड़ औरतें पुराने कपड़े के बदले पत्थर का बर्तन, बेंत और बाँस की बनी टोकरी आदि तथा चटाई मोल लेती हैं। हमारे देश में लोग बहुत दिनों से धान्य को ही धन का स्थानापन्न मानते आये हैं। आज कल अध्यापकों को या और कर्मचारियों को वेतन की जगह रुपया दिया जाता है किन्तु पहले नक़द रुपया न देकर धान दिया जाता था। इसी से आज तक यह कहावत प्रचलित है कि "तुमने धान देकर पढ़ा था और मैंने क्या कोदो देकर पढ़ा था ?" अब भी ग्राम्य पाठशाला के गुरुओं को कितने ही लोग रुपया पैसा न देकर अन्न या चावल देते हैं। अतएव धन केवल रुपया पैसा ही नहीं है। जो श्रमसाध्य है अर्थात् श्रम के द्वारा प्राप्त होता है वह सभी धन है। बिना परिश्रम किये कोई कुछ नहीं पा सकता। जिसे जो कुछ मिलता है वह परिश्रम के बदले ही मिलता है। जो परिश्रम नहीं करते उन्हें कोई कुछ देना नहीं चाहता। जिनका घर नदी के किनारे है उन्हें जब पानी की ज़रूरत होती है तो वे नदी से पानी ले आते हैं, उसके लिए उन्हें कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। किन्तु उनका घर यदि नदी-तट से दो कोस पर हो और पास में कोई जलाशय न हो तो उन्हें श्रम करके स्वयं वहाँ से पानी लाना पड़ेगा, या पानी लाने के लिए दूसरे को उस परिश्रम के बदले कुछ ज़रूर देना होगा अथवा जो परिश्रमी वहाँ से पानी लाकर बेचेगा, उससे मूल्य देकर खरीदना होगा।

अब सहज ही सब लोग समझ सकते हैं कि वह मूल्य पानी का हुआ या परिश्रम का। जो वायु लोगों को सर्वत्र अनायास प्राप्त होता है वही, आवश्यकतानुसार जब कोई परिश्रम करके पंखा के द्वारा पहुँचाता है तब, मूल्यवान् हो जाता है। पंखा चलाने वाले को जो वेतन दिया जाता है वह क्या परिश्रमसाध्य वायु का मूल्य नहीं कहा जा सकता? मारवाड़ में कभी कभी चार आने को घड़ा भर पानी बिकता है। ऐसी अवस्था में जब कि जल और वायु के बदले अन्य प्रयोजनीय वस्तुएँ प्राप्त हों तब जल और वायु भी धन में गिने जायँगे। जिनके पास लकड़ी या कोयला, किंवा लोहा है वे यदि इन वस्तुओं के बदले रुपया अथवा और ही कोई प्रयोजनीय वस्तु प्राप्त कर सकें तो यह लकड़ी, कोयला और लोहा धन में परिगणित होगा। किन्तु यदि इन वस्तुओं को कोई किसी चीज़ के बदले न लेना चाहे तो फिर ये धन में नहीं गिने जायँगी। यदि कोई किसी देश का धन कहने से सोना-चाँदी या मणि-मुक्ता आदि समझे तो यह उसकी भूल है। साधारण से साधारण चीज़, परिश्रम के द्वारा व्यवहार के उपयुक्त बन जाने पर, धन का रूप धारण कर लेती है। शहरों में घर पोतने और हाथ मलने आदि के लिए मिट्टी बिकती है, उस मिट्टी को क्या धन नहीं कह सकते? लोहा आदि धातु जब खान से निकलती है तब अपरिष्कृत और अग्राह्य होने के कारण धन में नहीं गिनी जा सकती। किन्तु वही जब विशुद्ध रूप में परिणत होती है और उसके बदले रुपया या और ही कोई

प्रयोजनीय वस्तु मिलने लगती है तब वही धन में गिनी जाती है।

जब भारत में कल-कारख़ाने, रेलगाड़ी और स्टीमर आदि का प्रचार न था, जब लोगों के घर का काम जङ्गल की लकड़ी ही से सिद्ध होता था तब भी देश में कोयले की खान थी। किन्तु उन दिनों लोग उसे उपयोगी नहीं समझते थे इसीसे उसका व्यवहार भी न था। यदि उस समय कोई कुछ कोयला खान से निकाल कर किसी के घर दे आना चाहता तो वह गृहस्थ शायद उसे अव्यवहार्य समझ कभी उसको न लेता। किन्तु देश में जब कल-कारख़ाने, रेल और स्टीमर आदि की सृष्टि हुई और भाफ तैयार करने तथा लोहा आदि धातुएँ गलाने के लिए बहुत तेज़ आँच की ज़रूरत हुई तब सभी ने कोयले को प्रयोजनीय समझा और चारों ओर लोग उसकी खान ढूँढ़ने लगे। रानीगञ्ज, गिरिडीह और उमरिया आदि जगहों की मिट्टी खोद खोद कर पत्थर के कोयले निकालने लगे। जो पहले अव्यवहार्य था वही अब धन में परिणत हुआ। किन्तु इस धन की प्राप्ति विशेष श्रमसाध्य है। ज़मीन के भीतर से कोयला निकालने के लिए बहुत मज़दूरों की ज़रूरत पड़ती है और उसकी देख-भाल में अधिक परिश्रम करना होता है। इस प्रकार धन अनेक रूपों में अवस्थित है। रुपया धन के अन्तर्गत है अतएव रुपया कहने से धन का बोध हो सकता है किन्तु धन कहने से केवल रुपये का ज्ञान नहीं हो सकता। आज कल सब धनों

में प्रधान धन रुपया ही है। क्योंकि यह और चीज़ों की अपेक्षा विशेष विनिमय-साध्य है। आज कल व्यावहारिक काम जितना रुपये से चलता है उतना अन्य प्रयोजनीय वस्तुओं से नहीं चलता। इसीलिए मुद्रा-धन के आगे और धन तुच्छ समझे जाते हैं। रुपये से हम सभी प्रकार की चीज़ें ख़रीद सकते हैं। रुपया देकर परिश्रम के सभी काम ले सकते हैं। ज़मीन की माल-गुज़ारी में या राज-कर में रुपया ही जमा किया जाता है। जिस देश में जिस समय जो सम्राट होता है उसके नामाङ्कित रुपये का मूल्य निरूपित हो कर उसका प्रचार होता है और उसके द्वारा लोग सभी वस्तुएँ ख़रीद सकते हैं। इसीसे रुपये का व्यवहार दिन ब दिन बढ़ रहा है। मान लो, राम को कपड़े की, श्याम को लकड़ी की, और गोपाल को धान की ज़रूरत है। राम धान के बदले कपड़ा लेने के लिए श्याम के पास गये। श्याम ने कहा—"मुझे लकड़ी की ज़रूरत है, धान नहीं चाहिए।" श्याम कपड़ा लेकर लकड़ी के लिए गोपाल के पास गये, गोपाल ने कहा—"मुझे धान की आवश्यकता है, कपड़ा न लूँगा।" इसी प्रकार गोपाल ने लकड़ी के बदले राम से धान लेना चाहा तो राम ने कहा "कि लकड़ी की मुझे ज़रूरत नहीं, मुझे तो धान लेना है।" सारांश यह कि प्रयोजनीय वस्तुओं का अदल-बदल परस्पर की आवश्यकता पर निर्भर है। परस्पर व्यावहारिक वस्तुओं की आवश्यकता का सुयोग न होने पर मनुष्य तकलीफ़ उठा सकता है और अपनी आवश्यक

वस्तु की खोज में समय भी नष्ट कर सकता है किन्तु रुपये का लेन-देन प्रत्येक वस्तु के बदले में होने के कारण किसी को उस तरह का क्लेश नहीं उठाना पड़ता। रुपये से सभी चीज़ें सब जगह मिल सकती हैं। राज्य भर में सिक्के का मूल्य न्यूनाधिक नहीं होता, उसका मूल्य सर्वदा एक सा बना रहता है; कभी कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ता। जिन्हें जिस चीज़ की ज़रूरत होती है वे उसे रुपया देकर ले सकते हैं। रुपया देने-लेने में ख़रीदार और बेचने वाले दोनों को सुभीता होता है। रुपये का आकार छोटा होने से बोझ का भी भय नहीं रहता। साधारण वस्तुओं को ख़रीदने के लिए लोग रुपये को एक जगह से दूसरी जगह आसानी से ले जा सकते हैं। इस कारण सभी लोग रुपये को चाहते हैं और रुपये ही को सब धनों में प्रधान समझते हैं। जिनके पास जितना अधिक रुपया है वे उतने ही अधिक धनी समझे जाते हैं। राम को काठ की ज़रूरत भले ही न हो पर रुपये का प्रयोजन अवश्य है. श्याम धान के बदले कपड़ा देना नहीं चाहता किन्तु रुपये के बदले कपड़ा देने में उसे कोई उज़्र नहीं। गोपाल भी यही चाहता है कि मेरी लकड़ी रुपया देकर कोई ख़रीद ले. जिसमें मुझे राम से धान ख़रीदने में सुभीता हो। मतलब यह कि रुपया के न रहने से जो असुविधा उन तीनों को थी, उस असुविधा को रुपये ने दूर कर दिया। रुपये के द्वारा उन तीनों का काम निबट गया। सिक्का कई क़िस्म का होता है—यथा सोने का, चाँदी का, ताँबे

का और निकेल (धातु विशेष) का। इसके अतिरिक्त १, २॥, ५, १०, २०, ५०, १००, ५००, १०००, और पाँच हज़ार रुपये तक का नोट प्रचलित है। नोट सिर्फ़ काग़ज़ होने पर भी बादशाह की आज्ञा से उसके बदले रुपया मिल सकता है अथवा उससे प्रयोजनीय वस्तु ख़रीदी जा सकती है। अतएव चाँदी-सोने के सिक्के और काग़ज़ के नोट में कुछ भेद नहीं है। जो काम रुपये अशर्फ़ी से चलता है वही नोट के द्वारा भी चल सकता है। संसार के सभी लोग रुपये को विशेष प्रयोजनीय और सब धनों में श्रेष्ठ समझ कर उसका संग्रह करना चाहते हैं। रुपया जमा करने की ख़्वाहिश सबको रहती है; रुपया जमा न कर सके यह दूसरी बात है। दूसरी ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसके बदले में सारी आवश्यक वस्तुएँ मिल सकें। ऐसा एक रुपया ही है जिस के बदले संसार की सभी प्रयोजनीय चीज़ें मिल सकती हैं। इसीसे इसकी इतनी बड़ी शक्ति है। सभी को ऐसे शक्तिशाली रुपये का सञ्चय करना चाहिए। यह मुद्रा क्या है मानो मूर्तिमती स्वाधीनता है। जिनके पास मुद्रा नहीं, वे पराधीनता के दुःख से कब छुटकारा पा सकते हैं? एक पाश्चात्य विद्वान् बुलवर ने कहा है कि "रुपये-पैसे को कभी तुच्छ दृष्टि से न देखो, धन ही चरित्र का दूसरा स्वरूप है"। धन बड़े महत्व की वस्तु है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु यह किसी के साथ मित्रता का और किसी के साथ शत्रुता का काम कर गुज़रता है। जो धन का सद्व्यवहार करना

जानते हैं उनके साथ वह मित्रता का व्यवहार करता है और जो उसे अपव्यवहार के गड्ढे में गिराते हैं उन्हें वह शत्रु बन कर दारिद्य-समुद्र में डुबोता है। विचार-पूर्वक दान, सत्यपरता, मितव्ययिता, आवश्यक और अनावश्यक का ज्ञान, परिणामदर्शिता और सञ्चयशीलता आदि अनेक सद्गुण धन के सद्व्यवहार के साधक हैं। इसी तरह अपव्यय, अविचार, अपरिणामदर्शिता, अतिव्ययिता, विलासप्रियता और आलस्य आदि दुर्गुण धन के अपव्यवहार के पोषक हैं। चरित्रहीन व्यक्ति का धन किसी अच्छे काम में लग कर अपने को सार्थक नहीं कर सकता। धन यदि अच्छे विचारवान् परिचालक के हाथ लगे तो उस से लोगों के अनेक उपकार हो सकते हैं, अनेक प्रकार की सहायता पहुँच सकती है। पर यही जब अयोग्य व्यक्तियों के हाथ पड़ता है तब उत्पाती बन कर कितने ही निरपराध असहाय व्यक्तियों को बुरे तौर से सताता है। बहुत लोग कहते हैं "अर्थ ही अनर्थ का कारण है"। यह कहावत उन्हीं अयोग्य व्यक्तियों के पक्ष में सङ्घटित होती है। किसी किसी विद्वान् ने धन की महिमा का वर्णन करने में अतिशयोक्ति कर दी है। यथार्थ में धन है भी ऐसा ही प्रशंसनीय। जो लोग समाज के शीर्षस्थान की ओर लालच भरी दृष्टि से देखते हैं वे ऐसा ही समझते हैं कि यदि संसार में कुछ महत्त्व की सामग्री है तो वह एक मात्र धन है। ऐसे लोगों के निकट धन, देवता के समान, पूजनीय समझा जाता है। धन में इतनी बड़ी शक्ति है कि वह

जिस के पास रहता है उसे सम्मानभाजन बनाये रहता है। संसार में सर्व साधारण के निकट लोगों का मोल उनकी आय और सञ्चित धन के परिमाण पर निर्धारित होता है। सर्व साधारण के मुँह से यह बात सुनी जाती है कि "अमुक व्यक्ति के पास कितनी जमा है? अमुक के पास कितनी सम्पत्ति है"? यदि कोई यह कहे कि "अमुक महाशय बड़े सज्जन हैं, अमुक व्यक्ति बड़े ही धार्मिक हैं" तो इस पर प्रायः कोई ध्यान न देगा। यदि वही उँगली उठा कर कहे कि "ये जो जा रहे हैं इनके पास कई लाख रुपये जमा हैं" तो जब तक वह व्यक्ति दृष्टि-पथ से बाहर न होगा तब तक सब लोग उसी की ओर साकांक्ष दृष्टि से देखेंगे। रेवरेण्ड ग्रीफित्स का कथन है कि यदि धन पाकर लोग अन्धे नहीं बन जाते और कर्मचारियों के साथ मालिक की घनिष्ठता होती तो संसार के कितने ही अमङ्गल दूर हो जाते।

पहले कहा जा चुका है कि सब धनो में श्रेष्ठ रुपया ही है। रुपये की श्रेष्ठता क्यों है, यह भी लिखा जा चुका है। इस जगह इतना समझ लेना होगा कि जो वस्तु विनिमय-साध्य है, अर्थात् जिसके बदले दूसरी प्रयोजनीय वस्तु मिल सकती है वह भी धन में गिनी जाती है; किन्तु उसके द्वारा यदि हम कोई चीज़ बदले में न पा सकें तो वह धन में न गिनी जायगी और न उसका कुछ मूल्य ही होगा। यह बात यहाँ दो एक उदाहरणों के द्वारा समझाई जाती है। मान लो, मेरे पास रुपया है, पर चावल नहीं। एक आदमी के पास अपने आवश्यक ख़र्च से अधिक चावल है

और बेचना भी चाहता है। मैं रुपया लेकर उससे चावल ख़रीदने को गया किन्तु उसने रुपया लेने से इनकार कर दिया क्योंकि मेरा रुपया दूसरी बादशाहत का था, जो किसी समय एक सौदागर से मैंने अपने देश के रुपये से बदल लिया था। वह रुपया इस देश में नहीं चलता। मैं उस रुपये को ले कर कई जगह घूमा पर किसी ने उसे लेना न चाहा। ऐसी हालत में मेरा वह रुपया मिट्टी के मोल से भी गया-बीता हो गया। उस रुपये की गणना अब धन में नहीं हो सकती।

किसी समय एक वृद्ध सौदागर जवाहिरात की थैली लेकर मरुभूमि के रास्ते से कहीं जा रहा था। रास्ते में खाने की कोई चीज़ न मिलने के कारण दो दिन उन्होंने उपवास करके ही बिताये। भूखे रह कर मार्ग चलने और कड़ी धूप सहने के कारण वे मारे भूख-प्यास के इतने व्याकुल हो उठे कि एक पग आगे बढ़ना उनके लिए कठिन हो गया। किन्तु समीप में कोई जलाशय या वृक्ष नज़र न आने के कारण निरुपाय होकर बड़े कष्ट के साथ धीरे धीरे रास्ता तय करने लगे। कुछ दूर आगे जाकर उन्हें असह्य कष्ट होने लगा। बेचारे विकल हो कर एक जगह बैठ रहे और सिर पर जो जवाहिरात की थैली थी उसे बड़ी हिफ़ाज़त से उतार कर नीचे रख लिया। इसके बाद वे लम्बी साँस लेकर थैली से बहुमूल्य माणिक और मोतियों को निकाल कर क्रोधवश उन्हें चारों ओर फेंकने लगे और कहने लगे—हाय! यदि यह एक एक मोती एक एक चना होता तो

आज मुझे इस जनहीन उत्तप्त बालुकामय प्रदेश में निराहार होकर प्राणत्याग करने की नौबत न आती। जिसे बहुमूल्य समझ कर चारों ओर सिर पर चढ़ाये फिरता था आज उसे देख रहा हूँ। इस मरुभूमि में इस बालू की अपेक्षा यह किसी अंश में श्रेष्ठ नहीं है। यहाँ इस थैली की अपेक्षा एक लोटा पानी और सेर भर चने को मैं कहीं बढ़ कर बहुमूल्य समझता हूँ।

जिस धन से वर्तमान या भविष्य काल में किसी प्रकार का प्रयोजन सिद्ध होने की आशा नहीं, वह धन मरुभूमि की बालू के बराबर है, इसे कौन स्वीकार न करेगा? किन्तु जिस धन से लोगों के सभी व्यावहारिक काम सम्पन्न हो सकते हैं उसकी आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ रही है। भारतवासियों को छोड़ कर प्रायः संसार के सभी लोग धन की उन्नति को ही सब उन्नतियों में प्रधान समझते हैं। "अर्थमनर्थं भावय नित्यम्" यह जो प्राचीन भारत के किसी संसार-विरक्त संन्यासी की उक्ति है वह आज कल के लिए प्रशस्त नहीं हो सकती। इस समय तो अर्थ ही सब कुछ है। एक प्रतिभावान् अर्थनीतिज्ञ का कथन है कि—"इस जीवन-व्यवहार के रणक्षेत्र में हम लोगों के लिए धन ही एक मात्र विजयास्त्र है।" व्यावहारिक विषयों पर विजय प्राप्त करने के लिए धन की ही विशेष आवश्यकता है।

मूलधन

जिस धन से धन की वृद्धि होती हो उसका नाम मूलधन है। मूलधन को ही लोग पूँजी कहते हैं। धन किसे कहते हैं, यह पहले कहा जा चुका है। जो परिश्रम के द्वारा प्राप्त हों और जिनसे प्रयोजन सिद्ध हों वे सभी धन हैं। इस प्रकार के जितने धन हैं वे सब मनुष्य के परिश्रम के फल हैं। परिश्रम के द्वारा जो धन उपार्जन किया जाता है उसमें आवश्यक ख़र्च करके जो कुछ बच जाता है वही मूलधन या पूँजी का काम देता है। धन के द्वारा कोई व्यापार करने ही से धन की वृद्धि होती है। धन को मिट्टी के नीचे छिपा रखना मानो उसको मिट्टी में मिलाना है। धन उत्पन्न करने के तीन साधन मुख्य हैं—(१) श्रम, (२) व्यवसाय, और (३) मूलधन। थोड़े मूल धन से भी कितने ही लोग परिश्रमपूर्वक व्यवसाय कर कुछ ही दिनों में मालामाल हो गये हैं। समाचार-पत्रों के विज्ञापनों में कभी कभी जो यह देखने में आता है कि अमुक बैङ्क का मूलधन ४० लाख रुपया है अथवा अमुक कम्पनी ने एक करोड़ रुपये की पूँजी से अमुक व्यापार करना शुरू किया है, अमुक साझे के कारबार ने पहिले एक लाख की पूँजी से काम शुरू किया था वही धन वृद्धिंगत होकर इस समय करोड़ रुपये के आकार में दिखाई दे रहा है इत्यादि, इसका क्या मतलब है? इस जगह समझना चाहिए कि दस पाँच मनुष्यों का संचित धन जो लाभार्थ किसी बैङ्क में अथवा किसी

वाणिज्य-व्यवसाय में लगाया जाता है वही मूलधन है। सारांश यह कि किसी प्रकार से संचित किये धन को ही मूलधन कहते हैं। वह संचित धन दस मनुष्यों का हो चाहे एक ही मनुष्य का।

कोई किसान या काश्तकार यदि अपने संगृहीत अन्न को बेच कर बिक्री के आधे रुपये से घर का खर्च चलावे और आधा रुपया मज़दूरों को मज़दूरी देने तथा हल, कुदाल और बैलों के लिए रख छोड़े तो यह अपरार्ध भाग ही उसका मूलधन समझा जायगा। क्योंकि यही आधा भाग उसके नवीन धन के उत्पादन में सहायता करता है और पहला आधा भाग मूलधन इसलिए नहीं है कि उससे नवीन धन तो उत्पन्न होता ही नहीं प्रत्युत वह आपही नष्ट हो जाता है। जिस संचित धन से विशेष धन प्राप्त करने की चेष्टा न की जाय उसे मूलधन न कहेंगे। संचित धन किसी व्यवसाय में लगकर ही मूलधन का काम करता है। धन ही क्या, संसार की सभी चीज़ें उचित रूप से व्यवहार में लगकर विशेष फलदायक होती हैं। यदि कल-कारखाने से काम न लिया जाय तो वे आपही आप धन उत्पन्न न करेंगे। धनोत्पादक वस्तु जब तक यों ही बेकार पड़ी रहेगी तब तक उसकी गणना मूलधन में न होगी। कारण यह है कि वह संचित रूप में होने पर भी धन-वृद्धिस्वरूप मूलधन का काम नहीं करता। जिस धन में धन उत्पन्न करने की शक्ति नहीं वह भी मूलधन में परिगणित नहीं हो सकता। जैसे बन्ध्या स्त्री प्रसविनी नहीं कहला सकती वैसे ही वह सम्पत्ति, जो अन्य धन उत्पन्न

करने में समर्थ नहीं, मूलधन नहीं कहला सकती। गवर्नमेन्ट जो कम्पनी-कागज़ के बदले प्रजा से रुपया लेती है उससे दोनों का उपकार होता है। प्रजा हर साल अपने रुपये का लाभांश स्वरूप सूद पाती है और गवर्नमेन्ट उस रुपये से प्रजा के हितकर काम —यथा सड़कें, घाट, पुल और रेल आदि—बनवाती है और इस तरह कुली मज़दूरों की जीविका का मार्ग खोल देती है। बैङ्क का रुपया भी इसी तरह देश के धन को बढ़ाता है अतएव उसे भी मूलधन कहेंगे।

मूलधन के सम्बन्ध में एक बात और यह कहनी है कि जो लोग मूलधन के अभिभावक हैं उन्हें सच्चरित्रता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। क्योंकि मूलधन की वृद्धि सच्चरित्रता पर अवलम्बित है। सच्चरित्रता मूलधन का भी मूलधन है। मूलधन की उन्नति तभी तक होती है जब तक उसके अधिष्ठाता का चरित्र ठीक रहता है। चरित्र बिगड़ने पर मूलधन का ह्रास होते देर नहीं लगती। किसी ने विज्ञापन दिया—"दस करोड़ की पूँजी लगाकर हमने कारख़ाना खोला है"। सब लोग यही कहने लगे कि इतने अधिक मूलधन का कारबार कभी नष्ट न होगा। कुछ दिन के बाद सुना गया—"जिस कम्पनी ने दस करोड़ के मूल धन से कारबार शुरू किया था उसका दिवाला निकल गया।" कम्पनी का दिवाला निकलने से कितने लोगों का सर्वनाश होता है, इसकी संख्या नहीं। सब लोग अपनी अपनी समझ के अनुसार उसके दीवालिया होने का कारण बतलाने लगे। किसी

ने कहा—"उसका माल से भरा हुआ जहाज समुद्र में डूब गया" इसी से कोठी बैठ गई। किसी ने कहा—"थोड़ी ही पूँजी ले कर कारखाना खोला गया था, दस करोड़ का विज्ञापन झूठमूठ दे दिया गया था। इसी से कोठी का कारबार बैठ गया।" पीछे ज़ाहिर हुआ कि कोठी के मालिक कोठी के कारबार की देख भाल अच्छी तरह न करने थे। किसके द्वारा क्या खरीदा जाता है, किसके द्वारा क्या बेचा जाता है, किसके पास हिसाब रहता है, इन बातों पर कोई कुछ ध्यान नहीं देता था। इसी से थोड़े ही दिनों में कोठी का कारबार बिगड़ गया। कोठी के कितने ही कर्मचारी जघन्य उपाय से कोठी का माल बेच करके सेठ बन बैठे हैं। इसी तरह बातें खुलते खुलते अन्त में यही निष्पन्न हुआ कि कितने ही चरित्रहीन व्यक्तियों ने उस विपुल धन के सद्व्यवहार में असमर्थ होकर कोठी का सर्वनाश कर डाला।

कितने ही लोगों की यह धारणा है कि जिनके पास कुछ पूँजो नहीं है उनके लिए नौकरी ही एक मात्र जीविका का द्वार है। यह धारणा एक दम भ्रान्ति से भरी हुई है। ऐसा देखा गया है कि जिनके पास पूँजी नहीं, विशेष पढ़े लिखे भी नहीं और किन्हीं बन्धु-बान्धवों की सहायता भी नहीं, ऐसी हालत में जब जीवन-निर्वाह के लिए जीविका तक मिलना कठिन हो जाता है तब यदि कोई करोड़पती हो जाय तो क्या लोगों की आश्चर्य्य-भरी दृष्टि उसके ऊपर न पड़ेगी? अवश्य ही उसकी ओर दृष्टि

का खिँचाव होगा। किन्तु खेद का विषय है कि अधिकांश लोग उस धन-कुबेर को ईर्ष्या किंवा विद्वेष की दृष्टि से ही देखेंगे। जो लोग व्यापार की महिमा से अनभिज्ञ हैं, व्यवसाय-बुद्धि से रहित हैं और गुण ग्रहण करने में अशक्त हैं, वे अपने मन में समझते हैं कि जिस किसी की उन्नति या श्रीवृद्धि होती है वह असत् उपाय या भाग्य-बल से ही होती है। किन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं। सत्यनिष्ठा, निष्कपट व्यवहार, अविचल अध्यवसाय, साहस, कष्ट-सहिष्णुता और मितव्ययिता का जिन्हें अभ्यास है, वे बालक होने पर भी प्रौढ़ हैं और दरिद्र होने पर भी धनी हैं। सरस्वती की उन पर कुछ कृपा न रहते भी वे लक्ष्मी की कृपा से कभी वञ्चित नहीं होते। संसार में कारबार करनेवाले कितने ही करोड़पति महाजन हैं किन्तु उनमें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवालों की संख्या कितनी है? स्वार्थत्याग, आत्मनिर्भरता और उच्चाभिलाष के साथ यदि दृढ़-चित्तता और श्रमशीलता का संयोग हो तो क्या बनज-व्यापार, क्या शिल्पकला आदि, क्या साहित्य-विज्ञान सभी में लोग शीर्षस्थानीय हो सकते हैं। जिन्होंने दरिद्र के घर में जन्म लेकर अपने बाल्यकाल को बड़े ही कष्ट से बिताया था, जिनके पास पहले कुछ पूँजी मौजूद न थी किन्तु थी सब पूँजियों की पूँजी एक मात्र विशुद्ध चरित्रबल, वे शीर्षस्थान के अधिकारी हो गये हैं। अतएव जो लोग मूलधन लेकर कुछ व्यापार करना चाहें उनके लिए परम मूलधन-रूपी चरित्र को सुरक्षित रखना नितान्त आवश्यक है।

महाजनी

जो नियमित सूद पर लोगों को रुपया कर्ज़ दे, उसे महाजन कहते हैं। महाजन अपना सञ्चित धन दूसरों को ऋण देकर सूद लेता है और उस सूद से क्रमशः मूलधन को बढ़ाता है। इस व्यवसाय को महाजनी कहते हैं। जिस स्थान में महाजनी कारबार होता है उसे कोठी या गद्दी कहते हैं। पहले इस देश में यौथ व्यवसाय की रीति जारी नहीं थी। दस पाँच आदमी मिल कर साझे का कारबार करना प्रायः नहीं जानते थे। अपने ही अपने रुपये से लोग महाजनी करते थे। किसी के कारबार में कोई शरीक नहीं होता था। निज के रुपये से ही महाजन कोठी चलाते थे, इस कारण उन दिनों महाजन-समिति या यौथ-व्यवसाय का प्रचार न था। युरोप के महाजनों की देखादेखी इस देश में यौथ व्यवसाय या साझे की कोठी का काम आरम्भ हुआ। इस कोठी या गद्दी का ही नाम बैङ्क है। कैसाही कोई देश क्यों न हो, जहाँ अधिक दिनों तक युद्ध जारी रहेगा वहाँ प्रजा के प्राणनाश होने के साथ साथ देश की दशा भी भ्रष्ट हो जायगी। धनहीन होने के कारण प्रजा का घर-द्वार, खेती-बारी सब कुछ नष्टप्राय हो जाता है। जो कुछ अनिष्ट होना बाक़ी रह जाता है वह महामारी और दुर्भिक्ष आदि से पूरा हो जाता है। तद-नन्तर देश की दरिद्रता दूर करने और प्रजा की रक्षा करने की ओर राजा की प्रवृत्ति होती है। किन्तु इन कामों के लिए अधिक

रुपये की आवश्यकता होती है। यदि राजा के कोष में यथेष्ट धन न रहा तो उसे ऋण लेना पड़ता है। राजा हो चाहे प्रजा, ऋण लेने पर महाजन को नियमित सूद देना ही पड़ता है। पाँच सौ सैंतीस वर्ष पूर्व वेनिस राज्य की ऐसी ही अवस्था थी। देश की दशा सुधारने के लिए राजा को मन्त्रिगणों की सलाह से प्रजा से ऋण लेना पड़ा। मन्त्रियों ने यह व्यवस्था की कि जिसकी आमदनी सौ रुपया सालाना है वह राजा को एक रुपया कर्ज़ दे, जो व्यक्ति सौ रुपया ऋण देगा वह पाँच रुपये सालाना सूद पावेगा। इस शर्त पर प्रत्येक प्रजा ने राजा को अपनी हैसियत के मुताबिक़ कर्ज़ दिया। और उन्हें पाँच रुपये सालाना सूद मिलने लगा। वेनिस के राजा ने जैसे ही प्रजा से ऋण लेकर राज-कार्य्य में खर्च किया वैसे ही उन्होंने प्रजा को यह भी अधिकार दे दिया कि जिस को जब अपने रुपये की ज़रूरत हो ले सकता है अथवा जिसे चाहे दिला सकता है। यथा, किसी ने पाँच सौ रुपये उधार दिये। साल भर बाद उसने अपना रुपया लेना चाहा तो उसे व्याज समेत पाँच सौ पच्चीस रुपये राजा से मिलने चाहिएँ। राजा किसी कारणवश यदि उसका रुपया तुरन्त न दे सके तो ऋण-दाता दूसरे के हाथ, जो उतना रुपया देने को प्रस्तुत है, रुपया लेकर स्वत्व बेंच सकता है। इस प्रकार लेन-देन का व्यवहार क्रमशः बढ़ते बढ़ते बैङ्क के नाम से विख्यात हुआ और इसका प्रचार सारे युरोप में हो गया। इस प्रथा का अवलम्बन करके कोई कोई प्रजा बैङ्क

में जमा किये हुए रुपये के बदले रुपये देकर स्वत्व ख़रीद लेती है। इस तरह के व्यवसायियों को लोग महाजन या बैङ्कर कहते हैं। युरोप के ऐसे कितने ही महाजन हैं जो इस व्यवसाय में सम्मिलित हैं। जिनके पास नक़द रुपया है और अपने उपस्थित कार्य्य में उसकी आवश्यकता नहीं है तो वे उस रुपये को सूद पर किसी को दे डालेंगे और अपने मूलधन को बढ़ाने की चेष्टा करेंगे। कितने ही लोग ऐसा भी करते हैं कि कम सूद पर रुपया क़र्ज़ लेकर उनसे ज़ियादा व्याज पर ऐसे लोगों को क़र्ज़ देते हैं जिन्हें किसी काम के लिए रुपये की बड़ी ज़रूरत होती है। पास में रुपया न रहने के कारण हार कर उन्हें अधिक सूद पर रुपया लेना ही पड़ता है। जो लोग महाजनी करते हैं वे केवल लेनदेन करते हैं और सूद के द्वारा लाभ उठाते हैं। किन्तु जिनके पास महाजनी कारबार करने योग्य पूँजी नहीं है वे लोग महाजन से कम सूद पर क़र्ज़ लेकर और अधिक सूद पर रक़म लगा कर नफ़ा उठाते हैं। युरोप में इस तरह के व्यवसाय से लोग अच्छा पैसा कमा लेते हैं। इस क्षुद्र महाजनी का नाम "बैंकिंग है। यौथ महाजनी या बैंकिंग के द्वारा धन की वृद्धि होती है और देश समृद्धिशाली होता है। सभी बैङ्कों में प्रायः एक ही ढङ्ग का काम होता है, किन्तु नियम सभी के भिन्न भिन्न होते हैं। सामान्यतः बैङ्क में रुपया जमा करने के चार नियम हैं।

पहला नियम यह कि बैङ्क जो रुपया किसी का जमा कर लेगा वह फिर कभी लौटावेगा नहीं, केवल नियमित सूद बरा-

बर दिया करेगा। उस जमा को बैङ्कर जिस काम में अपना विशेष लाभ देखेगा लगावेगा। इसमें जमा करनेवाले और बैङ्क दोनों को लाभ पहुँचता है।

बैङ्क का दूसरा नियम हुंडी* लेने देने का है। मान लो किसी ने बैङ्क में कुछ रुपया जमा किया। ज़रूरत पड़ने पर बैङ्क ने उसे नक़द रुपया न देकर दूसरे महाजन के (नाम जिसके साथ उसका कारबार जारी है) हुंडी लिख दी। हुंडी का रुपया वह दूसरा महाजन उसे दे देगा। हुंडी से इतना सुभीता ज़रूर होता है कि जमा किया हुआ रुपया वक़्त आजाने पर दूसरी जगह भी अनायास मिल सकता है। जैसे मेरा दस हज़ार रुपया इलाहाबाद के किसी बैङ्क में जमा है। मुझे कलकत्ते के एक सौदागर के पास पाँच हज़ार रुपया भेजना है। अब इलाहाबाद के बैङ्क ने पाँच हज़ार रुपये की हुंडी कलकत्ते के एक बैङ्क के नाम से लिख कर मुझे दे दी। मैंने वह हुंडी सौदागर के पास भेज दी। सौदागर को उस हुंडी के ज़रिये वहाँ बैङ्क से पाँच हज़ार रुपये मिल जायँगे। हुंडी के रुपये पर सैकड़ा पीछे कुछ ब्याज का नियम है जो हुंडी भेजने वाले से लिया जाता है। हुंडी कई तरह की होती है, जैसे दर्शनी हुंडी—अर्थात् जिसे देखते ही महाजन को रुपया दे देना होता है; मियादी हुंडी, जिसमें रुपया देने की अवधि लिखी रहती है; ऐसे ही

* हुंडी एक प्रकार का मनी आर्डर "A bill of exchange" है।

इसके और भी कितने ही प्रभेद हैं। दर्शनी हुंडी में ब्याज कुछ अधिक देना पड़ता है। जो लोग महाजनी कारबार करते हैं उन्हीं में हुंडी का लेन देन चलता है। महाजन के सिवा और लोगों में हुंडी लेने देने का व्यवहार नहीं है।

बैङ्क का तीसरा नियम रुपया रखने का यह है कि जो लोग उसमें रुपया जमा करते हैं उन्हें बैङ्क एक चेकबही देता है। चेकबही में, बतौर रसीद के, छपे हुए नम्बरदार पत्र रहते हैं। जमा करने वाले को जब जितने रुपये की ज़रूरत हुई तब वे चेकबही के आधे पत्र पर रुपये की तादाद और अपना नाम लिख कर बैङ्क में भेजते हैं, बैङ्क उतना रुपया उनके पास भेज देता है। इस तृतीय नियमानुवर्ती बैङ्क से अपने जमा किये हुए रुपये का जितना अंश जब चाहें लोग ले सकते हैं और फिर जब जितना चाहें जमा कर सकते हैं। ऐसे बैङ्क से रुपया जमा करने वालों को नाममात्र का कुछ सूद मिलता है। इस तरह के बैङ्क में सूद पाने की इच्छा से तो प्रायः कोई रुपया जमा करता भी नहीं, केवल अपने सुभीते के लिए ही जमा करता है। शायद यह सोच कर लोग बैङ्क में रुपया रख आते हैं कि अपने पास रहने से अधिक ख़र्च हो जाय किंवा चोर ही चुरा ले। ऐसे अनेक सन्देहों से निश्चिन्त होने ही के लिए लोग बैङ्क में रुपया जमा कर देते हैं। बैङ्क में रुपया रख देने पर उन्हें किसी तरह का भय नहीं रहता। बैङ्क उन्हें एक तरह से निश्चिन्त बना देता है और बिना कुछ वेतन लिये ख़ज़ांची का काम करता है। कोई

कोई बैङ्क इस चलते हिसाब में कुछ भी सूद नहीं देता किन्तु अमानत की रक़म को सुभीता देखकर, अपने लाभकारी व्यवसाय में लगा देता है। इस प्रकार के महाजनी कारबार से जातीय उन्नति के साथ देश की श्रीवृद्धि होती है। किन्तु इस यौथ व्यवसाय में कुछ कम उत्तरदातृत्व नहीं है क्योंकि बैङ्क के अध्यक्ष किंवा प्रधान कर्मचारियों की असावधानी, अदूरदर्शिता और स्वार्थपरता से कहीं बैङ्क का दिवाला निकल गया तो धन-नाश के साथ साथ बड़ी भारी बदनामी होती है और उस बैङ्क से सम्बन्ध रखनेवाले लोगों की हानि का तो कुछ कहना ही नहीं।

एक पाश्चात्य विद्वान् ने भारतवर्ष की आर्थिक नीति की आलोचना करते हुए बहुत ही ठीक कहा है कि "भारतवर्ष में जो इतनी अधिक दरिद्रता है उसका प्रधान कारण भारतवासियों के अर्थ-व्यवहार की अनभिज्ञता है।" हमारे देश में जिन ज़मीदारों के पास रुपया है वे उन रुपयों को किसी वाणिज्य व्यवसाय में लगाना नहीं चाहते। यदि वे अनेक स्थानों में बैङ्क स्थापित कर के उन रुपयों को शिल्पकारी या और ही किसी तरह के लाभकारी व्यवसाय में लगाते तो थोड़े ही दिनों में देश धन-सम्पन्न हो जाता और दरिद्रों की संख्या कम हो जाती। इँगलैण्ड जो इस समय धन-धान्य से परिपूर्ण हो कर लक्ष्मी का निवासस्थान बन रहा है, उसका कारण यही एक मात्र व्यवसाय है। अर्थ-व्यवहार की अभिज्ञता ही उन सुख-सामग्रियों के सिद्धि-साधन का गुप्त मन्त्र है। इँगलैण्ड में पाँच करोड़ मनुष्य रहते हैं।

इन पाँच करोड़ मनुष्यों में किसी के पास दस करोड़ रुपये हैं और किसी के पास दस रुपये तक नहीं। दरिद्र मनुष्य एक पैसा भी बैङ्क में जमा नहीं कर सकते और कोई कोई करोड़ों की पूँजी लेकर व्यवसाय चला रहे हैं। इँगलैंएड में व्यवसाय का रुपया प्रत्येक व्यक्ति पर तीन सौ बैठता है। इतना प्रचुर द्रव्य ६०२५ बैंकों में विभक्त होकर केवल वाणिज्य व्यवसाय में लगा हुआ है। अर्थात् इँगलैंएड की प्रजा पन्द्रह अरब रुपये वाणिज्य-विभाग में लगाये हुए है। किन्तु भारत में तीस करोड़ मनुष्य रहते हैं—इँगलैंएड से यहाँ की जन-संख्या छः गुनी अधिक है, तो भी यहाँ केवल १२७ बैङ्क हैं। सम्पूर्ण भारत के वाणिज्य की पूँजी पैंतालीस करोड़ रुपये मात्र है, जो भारत के प्रत्येक व्यक्ति पर डेढ़ रुपये से अधिक नहीं बैठती। सोचने की बात है कि अँगरेजों की संख्या भारतवासियों के षष्ठांश के बराबर होने पर भी वे ४७ गुना अधिक बैङ्क इँगलैंएड में स्थापित करके ३३ गुनी अधिक पूँजी से व्यापार कर रहे हैं। अभिप्राय यह कि जब भारत के तीस करोड़ मनुष्य ४५ करोड़ रुपयों से व्यापार कर रहे हैं तब इँगलैंएड-निवासी (जो कि ५ करोड़ मात्र हैं) १५ अरब रुपयों से वाणिज्य की प्रतिष्ठा बढ़ा रहे हैं। ऐसी वाणिज्यशील जाति की श्रीवृद्धि न हो तो किस की हो? इस देश के धनाढ्य और मध्य अवस्था के धनी मिल कर यदि जगह जगह पर यौथ बैङ्क स्थापित करें और गाँव गाँव में मूल बैङ्क की शाखा-प्रशाखायें स्थापित करके मूल धन को किसी लाभकारी व्यवसाय में लगावें तो देशोद्धार होने

में कुछ सन्देह न रहे। देश की दरिद्रता यहाँ तक बढ़ गई है कि यदि अब सब लोग मिल कर धनवृद्धि की चेष्टा न करेंगे तो फिर देशोद्धार होने की आशा नहीं। जब तक सब लोग मिल कर यौथ व्यवसाय को विराट रूप में न करेंगे तब तक व्यवसाय से विशेष लाभ न होगा। जिस अल्प संख्या से भारत में व्यवसाय चल रहा है इससे देश की दशा पलटना असम्भव है।

भारतवासियों को देश की दशा सुधारने के लिए उच्चाभिलाषी, सच्चरित्र, परिश्रमी और दूरदर्शी होना चाहिए। और उन लोगों को सम्मिलित शक्ति के द्वारा जगह बजगह कृषिबैंक, शिल्पबैंक. साहाय्यबैंक, दुर्भिक्षबैंक, अनाथबैंक, चिकित्साबैंक, आदि अनेक लोकोपकारी बैंक भिन्न भिन्न नामों से स्थापित करने चाहिएँ। जब तक भारतवासियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट न होगा, जब तक भारतवासी महाजनी करना न सीखेंगे तब तक भारत की दशा का सुधार न होगा। अतएव क्या धनी, क्या ग़रीब, क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी को देश के हित-साधन पर ध्यान देना चाहिए।

महाजनी कारबार में हाथ डालने ही से कोई दौलतमन्द नहीं हो जाता। इसके लिए शिक्षा और अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। अशिक्षित लोग प्रायः किसी काम में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। अतएव कोई काम कैसा ही क्यों न हो, उस काम के अनुकूल शिक्षा प्राप्त करना प्रथम कर्तव्य है। जो लोग महाजनी कारबार से उन्नति करना चाहें उन्हें कुछ दिन किसी

उन्नतिशील कार्य-कुशल महाजन के पास रह कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जो लोग बहुत दिनों से महाजनी करते हैं उन्हें व्यवसाय करते करते इस बात का तजरिबा हो जाता है कि महाजनी में किस तरह, कब, क्या लाभ होता है और किस गफ़लत से क्या हानि होती है। इन बातों को भली भाँति हृदयस्थ करके तब किसी को महाजनी कारबार में प्रवृत्त होना चाहिए। महाजनी करने के पहले यह देखना चाहिए कि किस व्यापार में कितनी सुविधा या असुविधा है। तदनन्तर अपनी सुविधा के अनुसार बैंङ्क की नियमावली ठीक करनी चाहिए।

सेविंग (संचयी) बैङ्क

डाकघर के नाम से प्रायः सभी लोग परिचित हैं। भारतवर्ष में कोई गाँव ऐसा नहीं जिस का डाकघर से सम्बन्ध न हो। डाकघर के द्वारा जो लोगों का उपकार होता है यह भी किसी से छिपा नहीं है। इसी डाक विभाग के साथ गवर्नमेन्ट ने अपना सेविंग बैङ्क भी जारी कर रक्खा है। पोस्ट आफ़िस के अन्यान्य कामों के साथ सेविंग बैङ्क का भी काम होता है। इस बैङ्क का नियम बहुत सीधा है। इस बैङ्क में क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या स्त्री सभी को रुपया जमा करने का अधिकार है। जब जो चाहे रुपया जमा कर सकता है। किन्तु रुपया जमा करने के पहले इस बैङ्क की नियमावली को भली भाँति समझ लेना चाहिए। नियमावली की किताब डाकघर से मुफ़्त मिलती है। इस बैङ्क में कब

किस प्रकार कितना रुपया जमा करना होता है तथा फिर किस नियम से रुपया जमा किया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर किस तरह रुपया निकाला जाता है, कितने रुपयों पर क्या सूद मिलता है, ये सब बातें नियमावली पढ़ने पर अच्छी तरह मालूम हो जाती हैं। इस बैङ्क में और बैङ्कों की अपेक्षा यही सुभीता है कि ज़रूरत पड़ने पर रुपया मिलने में देर नहीं होती। इसके सिवा और भी कितने ही अच्छे नियम हैं।

यथा—

(१) जब चाहे रुपया जमा कर दें।

(२) इस चलते हिसाब में भी तीन रुपया सैकड़े सालाना सूद मिलता है।

(३) चार आने तक भी जमा कर लिया जाता है।

(४) व्यक्ति विशेष का कोई नियम नहीं है, जो चाहे जमा कर सकता है।

(५) नाबालिग भी अपने वली के द्वारा रुपया जमा कर सकता है।

(६) तातील के दिनों को छोड़ कर और सभी दिनों में रुपया जमा कर लिया जाता है।

(७) अपने जमा किये हुए रुपये का आवश्यकतानुसार जितना अंश चाहे हरेक हफ़्ते में निकाल सकता है।

(८) जमा किये हुए रुपये का कोई सूद न ले तो वह साल के आख़ीर में असल रुपये के साथ मिला दिया जाता है और उसका भी सूद चलता है।

(६) बैङ्क के दिवालिया होने या और किसी तरह से रुपया डूबने का भय नहीं रहता।

सैकड़ा पीछे ३) सालाना के हिसाब से हज़ार रुपये का सूद तीस रुपया होता है। प्रति दिन यदि कोई पाँच पैसा जमा करे तो साल भर में तीस रुपये जमा होंगे। इससे यह जाना गया कि जो पाँच पैसा रोज़ बचाता है उसे मानो एक हज़ार रुपया जमा करने का फल प्राप्त होता है। जिस गृहस्थ की मासिक आय पचास रुपये है उसकी दैनिक आय १॥=) हुई। इसकी चौथाई ।=)॥ रोज़ बचाने से महीने में १२) और साल में १४४) जमा होंगे। यदि तुम सेविंग बैङ्क में ४८००) जमा कर सकोगे तो तुम्हें १४४) सालाना सूद मिलेगा। कहने का अभिप्राय यह कि यदि तुम ५०) मासिक पाते हो और प्रति दिन ।=)॥ अपनी आय से बचाते हो तो तुम्हें ४८००) जमा करने का फल सालही साल मिलता जायगा। मान लो यदि तुम २५ वर्ष की उम्र से ५०) महीना पाने लगे और प्रति वर्ष पूर्वोक्त नियमानुसार १४४) बैङ्क में जमा करने लगे तो चक्रवृद्धि सूद के हिसाब से दस वर्ष में तुम १७००) के अधिकारी हो जाओगे।

पहले साल की जमा १४४)

सूद ४।-)

———

१४८।-)

(पिछला टोटल) १४८।-)

दूसरे साल का जमा १४४)

२९२।-)

सूद ८॥।)

तीसरे साल का जमा १४४)

४४५-)

सूद १३।-)

४५८।=)

चौथे साल का जमा १४४)

६०२।=)

सूद १८)

६२०।=)

पाँचवें साल का जमा १४४)

७६४।=)

सूद २३)

७८७।=)

(पिछला टोटल) ७८७।=)
छठे वर्ष का जमा १४४)

९३१।=)
सूद २७॥≡)

९५९।-)
सातवें वर्ष का जमा १४४)

११०३।-)
सूद ३३-)

११३६।=)
आठवें वर्ष का जमा १४४)

१२८०।=)
सूद ३८।=)

१३१८॥।)
नवें वर्ष का जमा १४४)

१४६२॥।)
सूद ४४)

१५०६॥।)

(पिछला टोटल) १५०६॥)
दसवें वर्ष का जमा १४४)

१६५०॥)
सूद ४६॥)

१७००)

इस प्रकार नियमपूर्वक दस वर्ष तक जमा करने पर ३५ वर्ष की उम्र में तुम बैङ्क से १७००) की निकासी कर सकते हो और इन्हें किसी अच्छे व्यापार में लगा कर विशेष लाभ उठा सकते हो। अथवा इन रुपयों को पाँच रुपये सैकड़ा सालाना सूद पर किसी दूसरे बैङ्क में जमा कर दो तो दस वर्ष में २८०६) असल मय सूद के होंगे। किंवा यदि तुम किसी बैङ्क के हिस्सेदार होकर इन रुपयों से १२) सैकड़ा सालाना लाभ उठा सको तो सूद दर सूद के हिसाब से दस वर्ष में तुम सात हज़ार रुपये के मालिक बन बैठोगे। इस अवस्था में आकर यदि दूसरी तरह से तुम्हारी आय का द्वार बन्द हो जाय तो इन ७०००) रुपयों द्वारा तिजारत करके तुम जीवन-निर्वाह के साथ ही साथ अच्छा लाभ उठा सकते हो। यदि तुम्हें व्यवसाय करने की प्रज्ञा न हो और वाणिज्य विषय में अशिक्षित होने के कारण तुम कोई व्यापार न कर सको तो इन रुपयों को बैङ्क में जमा कर देने पर भी कम से कम २५) महीना सूद मिलेगा। उससे किसी तरह अपने बाल-बच्चों के साथ निर्वाह कर सकोगे। अतएव अपने ख़र्च से जो कुछ बचे

उसको यथासाध्य बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिए। रुपये को घर में छिपा रखने अथवा उसका उचित रीति से सद्व्यवहार न करने पर उसकी वृद्धि नहीं होती। धनवृद्धि का मूल सञ्चित द्रव्य है। जिनके पास रुपया जमा है वही रुपये को बढ़ा सकते हैं। लोगों का यह कहना बहुत ठीक है कि "रुपये से रुपया पैदा होता है"। किन्तु रुपयों का संचय होना मितव्यय पर निर्भर है। जो मितव्ययी नहीं हैं वे रुपया संचित नहीं कर सकते, अथवा योँ कहो कि जिनके पास रुपया नहीं है वे मितव्ययी नहीं हैं। सञ्चय का आधार मितव्यय है। मितव्यय और संचय का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरे की स्थिति हो ही नहीं सकती। जो संचयशील होने का अभ्यास करता है उसे मितव्ययी होने की शिक्षा आपही प्राप्त हो जाती है। इसी तरह जो मितव्यय का पाठ पढ़ता है उसे संचयशास्त्र का अधिकार प्राप्त होजाता है। मा, बाप, चाचा, जेठा भाई और मामा आदि जितने अभिभावकगण हैं सभी को चाहिए कि अपने घरके बालकों और बालिकाओं को मितव्ययी और सञ्चयशील होने का उपदेश दें।

केवल उपदेश देने ही से कुछ नहीं होता, जब तक कि उपदेशानुसार चलने के लिए वे बाध्य न किये जायँ। "सञ्चय करना चाहिए," "मितव्ययी होना चाहिए" इतना कह देने से कुछ लाभ न होगा। बालकों को मितव्यय की शिक्षा देने के साथ ही उन्हें संचयी बनने का भी उत्साह देना चाहिए। बचपन से

जब वे कुछ संचय करना सीखेंगे और मितव्ययी होने का अभ्यास करेंगे तब जवानी में उनके अपव्ययी होने की आशङ्का न रहेगी। घर का मालिक जब लड़कों को मिठाई खाने या खिलौना आदि खरीदने के लिए कुछ पैसे दे तो उसे लड़कों से यह भी कह देना चाहिए कि वे उन पैसों में से कुछ बचावें और यों ही बचाते बचाते जब उनके पास दस पाँच पैसे हों तब उन पैसों को बढ़ाने की तरकीब भी उन्हें बताई जाय और स्वयं उनके पैसों को किसी ऐसे काम में लगा देना चाहिए जिससे उनके पैसों की संख्या बढ़े। अपने पैसों की संख्या बढ़ते देख कर उन बालकों के मन में पैसा बढ़ाने की ओर स्वतः प्रवृत्ति होगी और धीरे धीरे उनको द्रव्यसंचय करने की आदत पड़ जायगी। अभिभावकों को इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि लड़कों को जो पैसे दिये जाते हैं उन्हें वे व्यर्थ के कामों में तो नहीं फेंक देते। एक ही एक पैसा जमा करके लोग लक्षाधीश हो सकते हैं और कितने हो भी गये हैं। एक पैसा रोज़ चाहें तो कुली मज़दूर तक बचा सकते हैं। एक पैसा रोज़ बचाया जाय तो महीने में आठ आने हो जायँगे। इस आठ आने की शक्ति कुछ ऐसी वैसी नहीं है। हम लोगों में शायद कितने ही ऐसे होंगे जिन्होंने एक अधेली से बड़ा आदमी बनने की बात न सुनी होगी। ये अधेली बाबू बङ्गाल के धनकुबेरों में एक नामी और मान्य व्यक्ति थे। वे रानाघाट के प्रसिद्ध पाल चौधरी वंश के प्रतिष्ठाता थे। जिनके पास पहले एक कानी कौड़ी तक न

थी वे अतुल ऐश्वर्य्य के स्वामी होकर दीन-दुखिया और अनाथों को जो दान दे गये, उसकी संख्या नहीं।

अधेली बाबू के पिता सहस्रराम पाल पान बेच बेच कर जीवन-निर्वाह करते थे, इस कारण सब लोग उन्हें "पान्ती" कहते थे। वे रोज़ पान लेकर बाज़ार जाते और पान बेच कर जो कुछ उन्हें मिलता था उसी से किसी तरह गुज़र करते थे। इस कष्ट की दशा में उनके पुत्र कृष्ण पान्ती ने संचय का महत्त्व समझा था। पान बेचने से उन्हें जो पैसे मिलते थे उनमें से दो एक पैसा वे नित्य रख छोड़ते थे। यों ही कुछ पैसे उनके पास जमा हुए और एक दिन आठ आने के पान बिके। पहले के जमा किये हुए पैसे से आवश्यक ख़र्च करके इस आठ आने की पूँजी से वे व्यवसाय करने लगे। योंही धीरे धीरे व्यवसाय की शिक्षा, मितव्यय और संचय के ऊपर ध्यान रख कर उन्होंने छोटे छोटे व्यवसाय से उत्तरोत्तर तरक़्क़ी करते करते भारी बनज-व्यापार का पसारा फैला दिया और थोड़े ही दिनों में प्रचुर धन प्राप्त करके अपने वंश का गौरव बढ़ाया। वे एक अधेली की पूँजी से लक्षपति हो गये, इस लिए लोग अधेली बाबू कह कर उनका सम्मान करते थे। ये एक अधेली के व्यवसाय से जिस प्रकार अतुल ऐश्वर्य्य के अधिकारी हुए वह सर्वथा प्रशंसनीय और सभी के लिए अनुकरणीय है। इन महाशय की जीवनी से ही जाना गया कि एक अधेली की भी शक्ति साधारण नहीं है। किन्तु यह अधेली बत्तीस पैसों के सिवा और

कुछ नहीं है। जो एक एक पैसा जमा करके एक अधेली तक पहुँचेगा, समझना चाहिए कि वह संचय की आधी शिक्षा पा गया। संचयी व्यक्तियों के लिए धन-वृद्धि करने का प्रथम शिक्षालय सेविंग बैङ्क है।

सम्भूय संमुत्थानिक सभा

भारतवर्ष में दिनों दिन सम्भूय समुत्थान (साझे के कारबार) की मात्रा बढ़ रही है। यह उसी का फल है कि कहीं देशी तिजारत, कहीं ऐन्युटी फ़एड, कहीं इण्डियन बैङ्क, कहीं ट्रेडिङ्ग कम्पनी और कहीं बङ्ग लक्ष्मी मिल्स आदि देखने में आते हैं।

इस प्रकार यौथ कारबार का जितना ही अधिक प्रचार होगा उतना ही समाज का और देश का मङ्गल होगा। यौथ कारबार करनेवाले सभी के प्रशंसनीय और सबसे सोत्साह सहायता पाने योग्य हैं। किन्तु हम यहाँ एक और ही प्रकार के यौथ अनुष्ठान का उल्लेख करते हैं। स्वार्थ के साथ उसका बहुत ही अल्प सम्बन्ध है, विशेषतः उसमें दया की ही प्रधानता है। भारत में कहीं कहीं विधवाश्रम, अनाथाश्रम, अन्धाश्रम, सेवाश्रम, रामकृष्ण मिशन और रोगचर्यालय आदि स्थापित हैं। हम जिस अनुष्ठान का उल्लेख करना चाहते हैं वह इसी श्रेणी के अनुष्ठानों में है। ऐसे ऐसे स्वार्थरहित धर्ममूलक अनुष्ठान जो दस लोगों के द्वारा परिचालित होते हैं और सर्व साधारण की दानशीलता पर जिनकी स्थिति क़ायम है, इन सभी आश्रमों और समिति-समाजा

से देश का कितना बड़ा अच्छा काम होता है इसका हिसाब लगाना कठिन है। काशी के रामकृष्ण मिशन के सेवकगण व्याधिग्रस्त, यहाँ तक कि जो मृत्यु के मुख में गिर चुके हैं ऐसे कितने ही, निरवलम्ब अरक्षित नर-नारियों को सड़क पर से उठा कर आतुराश्रम में ले जाते हैं और वहाँ बड़ी मुस्तैदी के साथ उनकी सेवा-शुश्रूषा और दवाई करते हैं। आरोग्य प्राप्त हो जाने पर उन्हें मार्गव्यय देकर उनके घर भेज देते हैं। इससे बढ़ कर दया और धर्म का दूसरा काम क्या हो सकता है? इस प्राणपरित्राणक समिति से जातीय अवनति का बहुत कुछ सुधार होना सम्भव है। किन्तु हम जिस श्रेणी के सम्मिलित सभा-समाज की बात कहना चाहते हैं उसका उद्देश स्वतन्त्र है। उससे देशोपकार और धनलाभ दोनों ही सिद्ध हो सकेंगे। पूर्वोक्त सेवाश्रम, और अनाथाश्रम आदि जिस तरह निराश्रय और निरुपाय नर-नारियों के रक्षार्थ स्थापित हुए हैं उसी तरह ऐसी भी चेष्टा करनी चाहिए जिसमें थोड़ा द्रव्य कमानेवाले और मध्यमस्थितिवाले गृहस्थ परस्पर की सहायता और सम्मिलित शक्ति के द्वारा सभा-समाज स्थापित करके थोड़े खर्च से सुख-पूर्वक जीवन बिता सकें। भारतवर्ष में बीस पच्चीस वर्ष की उम्र तक प्रायः लोगों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इसके बाद बीस पच्चीस वर्ष तक स्वास्थ्य की दशा ठीक नहीं रहती। किसी न किसी बीमारी की बराबर शिकायत रहा करती है। पचास साठ वर्ष से अधिक उम्र वालों के जीवन

का शेष भाग तो प्रायः रुग्णावस्था में ही व्यतीत होता है। अभिप्राय यह कि उपार्जन और सञ्चय का समय ज्यों ज्यों घटता जाता है त्यों त्यों रोगाक्रान्त होने के कारण दवाई का खर्च बढ़ता जाता है। अतएव पहले ही प्रबन्ध कर लेना चाहिए जिसमें जीवन के शेष भाग में यमयातना न भोगनी पड़े और बुढ़ापे का समय सुख से कटे। युरोपवासी इस विषय में बड़े ही सावधान रहते हैं। युरोप में सुहृत्समाज वृद्धोपजीवनी सभा, बान्धवसमिति आदि अनेक सुख-साधक सभायें स्थापित हैं, और दिनों दिन नई नई सभा-सोसाइटियों की सृष्टि होती ही जाती है। वहाँ के साधारण धनवान् गृहस्थ अपनी सुविधा समझ कर पूर्वोक्त सभाओं की यथाशक्ति सहायता करते हैं। वे सब सभायें 'लॉज', 'कोर्ट', 'सेनेट', 'सैन्चुरी', 'टेन्ट' प्रभृति नामों से व्यवहृत हैं। इनमें अधिकांश का नाम लॉज है। इस लॉज में प्रवेश करने के लिए अनेक गुणों की आवश्यकता है। यहाँ लॉज के कुछ साधारण नियमों का उल्लेख कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। यथा—सभासद की उम्र १८ वर्ष से अधिक होनी चाहिए। सभासदों को साप्ताहिक या पाक्षिक या मासिक चन्दा देना होगा। यदि अधिक उम्र वाले सभासद होना चाहें तो उन्हें अधिक चन्दा देना होगा। सभासदों को अपनी उम्र बतलाने के लिए जन्म-पत्र दाखिल करना होगा। डाक्टर से स्वास्थ्य-सम्बन्धी सर्टिफ़िकेट (अर्थात् जिसमें यह लिखा रहे कि परीक्षित व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक है, इसे कोई ऐसी बीमारी नहीं जिससे असमय में मृत्यु की

सम्भावना हो) प्राप्त कर के सभा में दिखलाना होगा। सभा के इन नियमों का पालन करने पर कोई भी सभासद हो सकता है। इस प्रकार सभा में सम्मिलित होने पर सभी सभासद भ्रातृत्व-बन्धन से बद्ध होकर सुख-दुःख में परस्पर सहानुभूति प्रकट करते हैं। प्रत्येक 'लॉज' या समाज की नियमावली भिन्न भिन्न और स्वतन्त्र है। सभी सभा-समाजों की विशेष नियमावली प्रायः गुप्त रक्खी जाती है। किन्तु उद्देश्य सबके अच्छे और पवित्र हैं। युरोप के इस समिति-विभाग में स्त्री और पुरुष दोनों ही सम्मिलित हो सकते हैं। सभा के प्रत्येक अधिवेशन में कार्य का विवरण और हिसाब पेश हो कर उनकी मञ्ज़ूरी ली जाती है। सभा के सम्मिलित व्यक्तियों में जब कोई बीमार हो जाता है तब सभा उसकी सेवा-शुश्रूषा और औषध आदि आवश्यक ख़र्च की व्यवस्था करके जिस प्रकार उसे सहायता पहुँचाती है उसकी व्याख्या बहुत बड़ी है। सभा के प्रधान प्रधान व्यक्ति स्वयम् सभासद के घर जाकर उसके आराम की सुव्यवस्था करते हैं, रोगो और उसके कुटुम्बियों को सान्त्वना देते हैं और सहानुभूति प्रकट करके उन लोगों के चित्त को प्रसन्न करते हैं। साथ ही वे इस पर भी ध्यान रखते हैं कि सभा का कोई नियम भङ्ग न हो। सभा के सभ्यगण जब सभा की तहवील के सम्बन्ध में किसीको कुछ गड़बड़ करते देखते हैं तब वे उसका अभियोग करते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य यही कि कोई सभासद सभा का नियम भङ्ग करके अथवा स्वास्थ्य के लिए

उपयोगी नियम तोड़ कर रोग-ग्रस्त या विपद्ग्रस्थ न हो। सभा की नियमावली के विरुद्ध यदि सभासद् कोई काम करते हैं तो सभा के निकट अभियुक्त होते हैं और अपराध प्रमाणित होने पर उन पर जुर्माना किया जाता है। प्रथम बार के अपराध में अर्थदण्ड नाम मात्र का ही किया जाता है किन्तु दूसरी बार के अपराध में दण्ड अधिक किया जाता है। उस पर भी यदि कोई गुरुतर अपराध करे तो वह सभा से बहिष्कृत कर दिया जाता है। यदि किसी भ्रातृस्वरूप सभासद् को द्रव्य का कष्ट है या किसी और ही तरह की विपत्ति उसपर आ पड़ी है तो सभा समस्त सभासदों से चन्दा जमा करके उसकी सहायता करेगी और उसके दुःख को दूर करने की विशेष चेष्टा करेगी; किसी सभासद् की नौकरी चली जाने पर सभा उस के लिए नई नौकरी ढूँढ़ देगी। सभा-सम्बन्धी आवश्यक खर्च का हिसाब कौड़ी पाई से दुरुस्त रहता है। सभा के उक्त नियमानुसार जो नवीन सभासद् होना चाहते हैं उन्हें सभा ग्रहण कर लेती है। सभा में कभी कभी निर्दुष्ट आमोद-प्रमोद भी हुआ करता है। यह आमोद संगीत अथवा धर्मोपदेश के द्वारा मनाया जाता है। इन सभाओं के दर्शकगण अपने देश में और देशान्तर में सभा के उद्देश्य और कार्य का प्रचार करते हैं। इसका कारण यह कि ऐसा करने से महती सभा की शाखा-प्रशाखा के रूप में और भी अनेक सभायें संगठित होती हैं। फिर ऐसी भी कितनी ही सभायें हैं जिनके सभासदों का खेल, तमाशे और आमोद प्रमोद ही की तरफ़ अधिक झुकाव

है। किन्तु जिस सभा के सभासद इस प्रकार आमोदप्रिय होते हैं उस सभा के द्वारा विशेष उपकार होने की आशा नहीं रहती किन्तु आदर्श-समिति के सदस्य-गणों के द्वारा अपनी सदस्य-मण्डली का, समाज का और देश का विशेष उपकार होना संभव है। आदर्श-सभा के नियमानुसार सदस्यगण सामान्य चन्दा देकर वह उपकार का काम कर रहे हैं जो बड़े बड़े धनाढ्यों से भी होना कठिन है। उन सदस्यों के हृदय में परस्पर की एकता, सहानुभूति, दया, दाक्षिण्य, प्रेम, परोपकार, उद्यम और अध्यवसाय आदि अनेक सद्गुण जाग्रत हो उठते हैं। जिस तरह नाव खेने, घोड़े पर चढ़ने, क्रिकेट, फुटबाल आदि दैहिक व्यायाम करने से स्वास्थ्य की उन्नति और बलवृद्धि होती है तथा शरीर का गठन सुन्दर होता है; उसी तरह व्याख्यान, उपदेश, पठन पाठन, तर्क-वितर्क आदि के द्वारा मानसिक स्फूर्ति और बल की वृद्धि होती है। इतने थोड़े खर्च में, इतना बड़ा उपकार का काम सिवा यौथसभा-समिति के अन्य प्रकार से होना संभव नहीं। इस पवित्र भारतदेश में भी यदि साधारण स्थितिवाले गृहस्थ परस्पर मिलकर साहाय्य-दायिनी सभा संगठित करें तो असहाय वृद्धों और रोगियों को बहुत बड़ा सहारा मिले और इस पारस्परिक सहानुभूति से देश का बहुत कुछ मङ्गल होना संभव है। इस तरह की सभाओं की नियमावली संग्रह करके पहले यह जान लेना चाहिए कि सभासदों से चन्दा लेने की क्या व्यवस्था है; चन्दे के रुपयों का

उपयोग कैसे करना चाहिए; किस काम में कितना रुपया खर्च करना उचित है और मूलधन को बढ़ाने का कौन सा सुलभ उपाय है। इसके सिवा सभा-सम्बन्धी अन्यान्य कार्य किस ढंग पर करना चाहिए, इत्यादि। इन सब बातों की भली भाँति शिक्षा प्राप्त करके इस देश में सभा स्थापित करें और स्वार्थ की छोटी छोटी बातों को भूल कर सभी भ्रातृगण परस्पर मिल कर सभा का कार्य करें।

पाँचवाँ अध्याय

जीविका प्राप्त करना

"उत्तम खेती मध्यम बान,
निकृष्ट चाकरी भीख निदान ॥"

(लोकोक्ति)

प्राणरक्षा के लिए प्रथम भोजन, फिर वस्त्र, इसके बाद घर और अन्यान्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है। अपनी जीवन-रक्षा के लिए जितनी सामग्री आवश्यक होती है, उसकी अपेक्षा अधिक सामग्रियों की आवश्यकता समस्त परिवार के भरण-पोषण के लिए होती है। आश्रितों की संख्या ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है त्यों त्यों आवश्यकता बढ़ती जाती है। घर भर के समस्त आवश्यक पदार्थों का संग्रह एक व्यक्ति से होना सम्भव नहीं। एक भोजन की ही सामग्री को लीजिए—इसके लिए किन किन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है? अन्न के लिए खेती करना, नमक के लिए साँभर झील या लवणसमुद्र के किनारे जाना, लकड़ी के लिए जङ्गल को जाना, इस प्रकार सैकड़ों आवश्यक वस्तुओं के लिए सैकड़ों जगह दौड़ लगाने पर तब कहीं भोजन की कुल सामग्री इकट्ठी हो सकती है। किन्तु एक आदमी से इतना काम होना असम्भव है। पहले भारत में विनिमय की रीति

जारी थी। लोग प्रयोजनीय वस्तुएँ देकर अपने प्रयोजन की चीजें बदल लेते थे। किन्तु इसमें अनेक प्रकार की अड़चनें पड़ने के कारण धीरे धीरे वस्तु-विनिमय की प्रथा उठ गई और ऐसा उपाय सोचा गया जिसमें एक वस्तु के बदले सभी चीजें मिल सकें। उसी उपाय का फलस्वरूप यह रुपया है। रुपये से सभी चीजें हमेशा सर्वत्र मिल सकती हैं। अतएव इन दिनों एक मात्र रुपये का संग्रह करने ही से व्यवहार के सभी काम सिद्ध हो सकते हैं। जिनके पास रुपया है, उन्हें व्यावहारिक वस्तुओं के लिए कुछ भी चिन्ता नहीं। वे सभी चीजें रुपये से खरीद सकते हैं। उनकी सारी ज़रूरतों को रफ़ा करने वाला एक रुपया ही है। यदि हम परिश्रम के द्वारा कोई प्रयोजनीय वस्तु पैदा कर सकें तो उसके बदले हमें रुपया मिल सकता है। जो लोग अपने आवश्यक खर्च से अधिक चीजें प्राप्त करते हैं वे अपनी आवश्यकता के अनुसार रख कर अधिक चीजों को उचित मूल्य पर बेंच डालते हैं। इस प्रकार परिश्रम के द्वारा रुपया या कोई प्रयोजनीय वस्तु प्राप्त करने का नाम "द्रव्योपार्जन," "जीविका-प्राप्ति" या "रोजगार" है। संसार में छोटे से बड़े तक सभी के लिए रोजगार का रास्ता खुला है। रोजगार के लिए परिश्रम, सामान्य बुद्धि, उद्योग और शिक्षा आवश्यक है। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य जिस तरह जीवन-निर्वाह करते थे वह बात अब नहीं। जैसे जैसे सभ्यता बढ़ती गई तैसे तैसे आवश्यक वस्तुओं की मात्रा भी बढ़ती गई। साथ ही इसके

जीविका के मार्ग में भी बहुत कुछ उलट-फेर हो गया। प्रकृति के परिवर्तन से सभी चीजों में कुछ न कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। आज कल प्रतिद्वन्द्विता ने ऐसा भयङ्कर रूप धारण किया है और दिनों दिन धारण करती जा रही है जिससे रोजगार का रास्ता बहुतों के लिए एक तरह बन्द सा होता जा रहा है। किन्तु बिना रोजगार के कोई अपना निर्वाह नहीं कर सकता इसलिए अपनी शक्ति के अनुसार जिसने जिस रोजगार में सुभीता देखा वह उसी में लग गया। इसीसे खेती, कारीगरी वैद्य-वृत्ति, तिजारत, महाजनी, नौकरी, मजदूरी आदि रोजगारों के द्वारा सभी लोग जीवन-निर्वाह कर रहे हैं। किसी प्रकार जीवन धारण करना भिन्न बात है और लक्ष्मी प्राप्त करके देश को समृद्धिशाली बनाना दूसरी बात है। विशेष धन प्राप्त करने का प्रधान उपाय वाणिज्य ही है। खेती के द्वारा भी लोग धन संग्रह कर सकते हैं। यद्यपि खेती में वाणिज्य की अपेक्षा लाभ का भाग कम है तथापि लोगों ने खेती को ही श्रेष्ठ माना है। श्रेष्ठ मानने का कारण शायद यही है कि खेती में स्वाधीनता रहती है और मनुष्यों के जीवन धारण का आधार भी वही है। यदि खेती न करके सभी लोग तिजारत, महाजनी या और ही तरह के रोजगार में लग जायँ तो लोगों को अन्न मिलना दुर्लभ हो जायगा। बिना अन्न खाये, कोई जी थोड़े ही सकता है अतएव खेती करना सब रोजगारों में श्रेष्ठ माना गया है। यदि रुपये के बदले खाद्य पदार्थ न मिले तो करोड़पती का भी बिना

अन्न के वही हाल हो जो एक भिखारी का होता है। वाणिज्य का भी विशेष भाग अन्न की ख़रीद-बिक्री ही पर अवलम्बित है। अतएव खेती को वाणिज्य का भी मूल कह सकते हैं। असल में वाणिज्य की प्रधान सामग्री दो ही हैं, एक अन्न और दूसरी कारीगरी की चीज़ें। खेती, वाणिज्य और नौकरी के अतिरिक्त और भी कितने ही उच्च-शिक्षासाध्य स्वतन्त्र व्यवसाय हैं। यथा - विकालत, वैद्यवृत्ति, अख़बार आदि निकालना, ग्रन्थरचना, पुस्तकें बेचना और मुद्रालय आदि; इन व्यवसायों के द्वारा भी लोग धनवान् हो सकते हैं। किन्तु नौकरी, जो इस समय रोज़गारों में प्रधान हो रही है और सहज ही सबको मिल भी जाती है वह, अधमवृत्ति में गिनी गई है। कारण यह कि सेवावृत्ति भिक्षा से कुछ ही अच्छी है। मनुस्मृति में भी लिखा है—"सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत्"। देखो मनुजी ने सेवा की तुलना कुत्ते की वृत्ति से की है। गोसांई तुलसीदासजी ने भी कहा है—"सेवक सुख चह मान भिखारी" तथा "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"। नीति में भी लिखा है—"को मूढ़ः सेवकादन्यः।" इन बातों से यही सिद्ध होता है कि सेवकों को एक तो स्वतन्त्रता का सुख नहीं, दूसरे वे अपने अमूल्य जीवन को वेतन स्वरूप अल्पमूल्य में बेच डालते हैं। नौकरी ऊँचे से ऊँचे दर्जे की हो चाहे नीचे से भी नीचे दर्जे की, पराधीनता का दुःख सब में लगा है। आफ़िसर से लेकर झाड़ूबरदार तक सभी पराधीनता की जंजीर से जकड़े हैं। अपने कामों का उत्तरदायित्व सभी के

साथ लगा है। जो जितने उच्च पद पर प्रतिष्ठित हैं उन्हें उतना ही अधिक ग़लती का भय बना रहता है। फूँक फूँक कर पाँव रखने पर भी उन के जी में सन्देह बना ही रहता है। यथार्थ में नौकरी के सदृश पराधीन वृत्ति और रोज़गारों में इसके ऐसा सङ्कीर्णपथ दूसरा नहीं। चाणक्य-दर्पण में क्या ही अच्छा लिखा है—"सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः"। नौकरी नीचवृत्ति होने पर भी चौर्य्यवृत्ति, वञ्चनावृत्ति और भिक्षावृत्ति आदि निन्द्य वृत्तियों से सौगुनी अच्छी है। रोज़गार के जितने काम हैं सब अपने अपने विभाग में अच्छे हैं। जिस नौकरी को हम नीचवृत्ति में गिनते हैं, इसे यदि सभी लोग नीचवृत्ति समझ कर छोड़ दें तो संसार का कोई काम ठीक ठीक न चलेगा और न सभी लोग स्वतन्त्रवृत्ति से अपना जीवन-निर्वाह कर सकेंगे। भीख माँगने चोरी करने और निठल्ले बैठे रहने की अपेक्षा नौकरी सद्वृत्ति है। जो काम सचाई के साथ किया जाता है वह बुरा नहीं कहा जा सकता। जो दस रुपये मासिक पर मुहर्रिरी करके किसी तरह कष्ट से अपना और अपने पोष्यवर्ग का पालन करते हैं, वे ही प्रशंसनीय और समाज में प्रतिष्ठा पाने योग्य हैं। किन्तु जो उच्च पदाधिकारी अनीति का अवलम्बन कर अधिक धन प्राप्त करते हैं वे जोड़ी-गाड़ी पर चढ़ कर इधर उधर घूमने पर भी सर्व साधारण की दृष्टि में हेय और समाज में अगण्य समझे जाते हैं। कोई उनकी प्रशंसा नहीं करता। स्वाधीनचेता, महातेजस्वी विद्यासागर महाशय ने भी नौकरी

की थी। नौकरी उन्हों ने की थी सही किन्तु हीनता को अङ्गीकार नहीं किया था। कारण यह कि पराधीनता स्वीकार करने पर भी उन्हों ने दूसरे के हाथ जीवन का स्वत्व नहीं बेचा था। वे अपने ऊपर के कर्मचारी की आज्ञा पालन करने के लिए प्रस्तुत रहने पर भी अयुक्त आज्ञा के पालन में कभी उत्सुक नहीं हुए। वे जब संस्कृत कालिज के प्रिंसपल थे तब एक बार शिक्षाविभाग के प्रधान पर्य्यवेक्षक के साथ मतभेद होने पर उन्होंने पाँच सौ रुपया मासिक वेतन की नौकरी तुरन्त छोड़ दी। जीविका के और सब मार्ग बन्द होने पर नौकरी करना लज्जा का विषय नहीं है। किन्तु यह निश्चय है कि सिर्फ़ नौकरी करके कोई धनवान् नहीं हो सकता। यदि दैवयोग से कोई हो भी जाय तो उसकी साधुता पर सब लोग सन्देह करने लगते हैं। सन्देह का कारण भी है—इस देश के आदमी जो नौकरी कर के रुपया कमाते हैं वे. मैनेजर हो चाहे अल्प वेतन पाने वाले क्लर्क, व्यवसायियों की तरह रुपया पैदा करना नहीं जानते। प्रायः देखा जाता है कि अधिक वेतन पानेवाले विचाराधीशों (जजों) की अपेक्षा वकील और बारिस्टर अधिक धन जमा कर लेते हैं। इसका कारण यही है कि जिनकी आमदनी अनिश्चित है उन्हें सञ्चय करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। जिन्हें निर्दिष्ट समय पर नियमित द्रव्य मिलने का पूरा भरोसा रहता है उनका ध्यान संचय की ओर नहीं रहता। वे अपनी भविष्य आय के भरोसे निश्चिन्त रहते हैं। निश्चित आय

की बुद्धि उन्हें असावधान, अमितव्ययी और अदूरदर्शी बना डालती है। किन्तु जिन लोगों की आय अनिश्चित है उन्हें इसी बात का भय बना रहता है कि यदि किसी दिन या किसी महीने में कुछ न मिला तो गुज़र करना कठिन हो जायगा अथवा प्रतिष्ठा में हानि पहुँचेगी। अतएव जो कुछ वे कमाते हैं उसमें से कुछ न कुछ बचाने की चेष्टा ज़रूर करते हैं। अधिक वेतन पाने वाले सावधानी के साथ ख़र्च करके घर के सभी आवश्यक काम सम्पन्न कर सकते हैं और भविष्य के लिए कुछ जमा भी कर सकते हैं, किन्तु धनाढ्य होना उनके लिए दूर की बात है। नौकरी करके अतुल ऐश्वर्य्य का आधिपत्य प्राप्त करते या धन-कुबेर बनते आज तक प्रायः कोई नहीं देखा गया। क्लर्की या आफ़िसरी करके कब किसने देशोपकार के लिए लाखों रुपये दान किये हैं? अधिक से अधिक वेतन पानेवालों के लिए लाख रुपये का दान ही अतुल दान है।

जिस व्यवसाय से अधिक लाभ हो सकता है और ख़र्च करने पर भी बहुत कुछ जमा हो सकता है, उसे छोड़ कर लोग नौकरी के लिए इधर उधर डोलते फिरते हैं। भारतवासियों के निर्धन होने का यह भी एक प्रधान कारण है। जिस जाति में यौथ कारबार, यौथ महाजनी और शिल्प-वाणिज्य व्यापार अधिक है वही जाति अधिक धनशाली भी है। व्यक्तिगत और जातिगत दरिद्रता दूर करना चाहो तो नौकरी का रास्ता छोड़ कर व्यव-साय के पथ का अवलम्ब करो। वीरभूमि-निवासी श्रीयुत यादव-

लाल वन्द्योपाध्याय पहले रानीगञ्ज "बेङ्गाल कोल कम्पनी" के दीवान की अधीनता में ५) मासिक वेतन पर मुहर्रिर थे। वे ५) रुपये से क्रमशः बढ़ते बढ़ते १००) मासिक वेतन पाने लगे। यहाँ तक कि आखिर में दीवान के पद पर नियुक्त हुए। किन्तु जब उन्होंने देखा कि ५००) रुपया मासिक वेतन पाने पर भी कोई नौकरी करके धनवान् नहीं हो सकता तब वे नौकरी छोड़ कर व्यवसाय की ओर झुके। यादव बाबू यदि ५) रुपये की जगह ५००) मासिक वेतन पाते और वेतन के कुल रुपये बचाते जाते तो ४२ वर्ष में २ लाख ५२ हज़ार से अधिक जमा न होता। मान लो, सूद लगा कर वे तीन लाख जमा कर लेते, किन्तु नौकरी त्याग कर उन्होंने लक्ष्मी-प्राप्ति का पथ अवलम्बन किया। व्यवसाय की बदौलत उन्होंने कई लाख रुपये पैदा किये और राजा की तरह ज़िन्दगी बिता कर, कितने ही रुपये दान-प्रदान करके, भारतवासियों के लिए आदर्श स्वरूप बने।

जे० डी० राकफ़ेलर तेल के कारख़ाने में किरानी थे। सन् १८५६ ईसवी में उनका मासिक वेतन ५०) था। उच्चाभिलाष ने उन्हें इस नीचतर किरानीगिरी रूपी कारागार में बन्द न रहने दिया। वे तेल के कारख़ाने में रह कर तेल के व्यवसाय की अभिज्ञता प्राप्त कर ही चुके थे। वे नौकरी छोड़ कर स्वतन्त्र रूप से उस व्यवसाय में प्रवृत्त हुए। उसका फल यह हुआ कि ४३ वर्ष में वे नब्बे करोड़ रुपये के अधिकारी हुए। वे यदि ५०) का सौगुना वेतन पाते तो भी ४३ वर्ष में (२५८००००)) पच्चसी

लाख अस्सी हज़ार रुपये से अधिक जमा न कर सकते। किन्तु वाणिज्य-लक्ष्मी ने उन्हें धन-कुबेर बना दिया। इस तरह स्वदेश और विदेश के कितने ही नवयुवक जो व्यवसाय रूपी ऋद्धिपथ का अवलम्बन करके लक्ष्मीवान् और प्रसिद्ध हुए हैं, उनकी कहाँ तक कोई गिनती कर सकता है। सर्वसाधारण की यह धारणा है कि "बिना लाख दो लाख पूँजी जमा किये कोठी का कारबार या अन्य वाणिज्य-व्यवसाय नहीं हो सकता। थोड़े मूलधन से जो ख़रीद-बिक्री की जाती है उसे दूकानदारी कहते हैं। दूकानदारी करना छोटा काम है, इससे प्रतिष्ठा की हानि होती है।" यह सर्वनाशी धारणा क्या बालक, क्या वृद्ध क्या स्त्री सभी की नस नस में इस प्रकार घुस गई है कि कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति दूकान खोल कर अपने हाथ से सौदा बेचने में शरमाता है। मानो सौदा बेचना बड़े कलङ्क की बात है। किन्तु वही प्रतिष्ठित भद्रसन्तान किसी गोदाम में दस रुपये मासिक की नौकरी करने में ज़रा भी संकोच न करेंगे और न कोई उनका उपहास ही करेगा। समाज की निम्न श्रेणी का कोई आदमी १५) मासिक वेतन की नौकरी करने पर समाज में जो सम्मान पावेगा, पड़ोस के लोग उसे जिस आदर की दृष्टि से देखेंगे, वही हज़ार रुपये की दूकान खोल कर मोदी बन बैठे तो समाज उसे आदर के शतांश का भी पात्र न समझेगा। बल्कि लोग कहा करेंगे कि अमुक बाबू सब काम करके थक गये, अब दूकानदारी करने लगे हैं।

देशवासियों की जब ऐसी समझ है कि "छोटे से छोटे दर्जे की क्लर्की करना अच्छा किन्तु दूकानदारी करना अच्छा नहीं और जो सम्मान पराधीन रह कर १५) मासिक में है वह सम्मान स्वतन्त्र रूप से दूकानदारी करके १००) मासिक लाभ में नहीं है" तब सर्वसाधारण लोग सम्मान के मञ्चस्वरूप क्लर्की को ही हृदय से पसन्द करें तो यह कौन सा आश्चर्य का विषय है ? जो लोग अच्छे कुल-शील के हैं वे धन और प्राण से भी बढ़कर सम्मान को ही प्रिय समझते हैं, इसलिए वे जब करेंगे तो क्लर्की ही करेंगे, चाहे उससे उनका सुख से निर्वाह हो या दुःख से। क्लर्की या गुमाश्तागिरी आदि कामों को छोड़ कर वे दूकानदारी कभी न करेंगे, क्योंकि दूकानदारी करने से उनका मान भङ्ग होगा। जब तक भारतवासियों के दिमाग़ में इस तरह के सम्मान की बात घुसी रहेगी तब तक देश को उन्नति होना असम्भव है। जब देशवासी सामाजिक गुणों का मान रखना सीखेंगे तब उनके ललाट से गुलामी की कलङ्करेखा मिटेगी, अन्यथा नहीं। जब समाज के सभी छोटे बड़े समझेंगे कि परि-श्रम, उद्योग, स्वावलम्बन, विनय, विलास-शून्यता, कालज्ञता, सत्यनिष्ठा और मितव्ययिता आदि गुणों से एक साधारण दूकानदार का गौरव किसी पण्डित, किसी धनी और किसी समाजश्रेष्ठ व्यक्ति की अपेक्षा कम नहीं है, बल्कि कई बातों में बढ़ कर है तब देश की दशा पलटेगी। नहीं तो जिस योग्यता से अभी १००) मासिक तनख़्वाह मिलती है, कुछ दिन के बाद

उस योग्यता पर ५०) मासिक मिलना कठिन हो जायगा। यह बात तो स्पष्ट ही है कि जो चीज़ इफ़रात से मिलती है वह सस्ती दर पर बिकती है। वही हाल नौकरों का है। जैसे जैसे नौकरों की संख्या बढ़ती जायगी वैसे वैसे उनके जीवन के मूल्य-स्वरूप वेतन की दर भी घटती जायगी। इन दिनों इस देश में नौकरी का रिवाज कैसी तरक्क़ी पर है, इसे कोई देखना चाहे तो कैसा ही कोई काम क्यों न हो, एक प्रसिद्ध समाचार-पत्र में उसका विज्ञापन दे दे। महीना बीतते न बीतते देखेगा कि सैकड़ों दरख़्वास्तें उसके पास आ गई हैं। यदि ऐसे ही यौथ व्यवसाय या स्वतन्त्र रूप से दूकानदारी करने का कोई इश्तिहार दे तो प्रायः एक भी सहानुभूति का पत्र उसके पास न आवेगा।

वाणिज्य

"लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये"

दोहा

सबको करना चाहिए सुखद बनज व्यापार।
मान बढ़ेगा देश का होगा लाभ अपार॥

लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए वाणिज्य का अवलम्बन करना चाहिए। जो लोग वाणिज्य से सम्बन्ध नहीं रखते उन पर प्रायः लक्ष्मी कृपा नहीं करती। वाणिज्य के लिए मूलधन (पूँजी) कुछ

न कुछ ज़रूर चाहिए। किन्तु यह मूलधन संचित द्रव्य का रूपान्तर है। द्रव्य संचय करने ही पर कोई मूलधन का अधिकारी हो सकता है। मूलधन के बिना वाणिज्य नहीं चल सकता। मूलधन और धन में क्या फ़र्क़ है, यह वाणिज्य करने के पहले समझ लेना चाहिए। इसका वर्णन पूर्व के किसी पाठ में हो चुका है।

कृषि, शिल्पकारी आदि के रहते वाणिज्य में ही लक्ष्मी का वास क्यों है ? इसका कारण यह है कि जितने धन हैं, सबका एक आकार धारण करने वाली लक्ष्मी है। जितने धन हैं सब विनिमय-साध्य हैं। विनिमय (बदला) ही वाणिज्य का मूल है। कृषि से जो वस्तु उत्पन्न होती है, शिल्पकारी के द्वारा जो चीज़ें बनती हैं, वैज्ञानिक और रासायनिक प्रक्रिया से जितनी सामग्री तैयार होती है, सब विनिमय-सापेक्ष है। विनिमय का प्रधान स्थान वाणिज्य-भूमि है। वाणिज्य के द्वारा विनिमय का कार्य्य विशेष रूप से सम्पादित होता है। वणिक् उन सारी चीज़ों को बेचकर विशेष लाभ उठाते हैं, इसलिए वाणिज्य ही धन-लाभ का द्वार कहा गया है। वाणिज्य दो प्रकार के हैं, एक अन्तर्वाणिज्य, दूसरा बहिर्वाणिज्य। अपने देश की आवश्यकता दूर करने के लिए जो व्यवसाय किया जाता है उसे अन्तर्वाणिज्य कहते हैं। यदि कोई किसी गाँव में या किसी शहर में स्वदेशी धान चावल की दूकान खोल कर स्वदेशी ख़रीदारों के हाथ बिक्री करे तो इसे अन्तर्वाणिज्य के अन्तर्गत समझना चाहिए। अपने देश के

चीज़ों को अपने ही देश में ख़रीदने-बेचने का नाम अन्तर्वाणिज्य है। देशी चीज़ों की खपत देश में होने से देश का अभाव-मोचन अवश्य होता है किन्तु इसके द्वारा जातीय धन की वृद्धि नहीं होती। हाँ, एक घर की चीज़ दूसरे घर में पहुँच जाती है। इस उलट-फेर से भारत उन्नत दशा में नहीं पहुँच सकता। अपने देश का अभाव दूर करके जो वस्तु बचे उसे देशान्तर में बेचने से जो धन देश में लाया जाय उसका नाम बहिर्वाणिज्य है। वाणिज्य के द्वारा देशान्तर से धन लाने ही पर देश धनशाली हो सकता है। जिस देश में वाणिज्य की जितनी संकीर्णता है, उस देश में दरिद्रों की संख्या उतनी ही अधिक है। कारण यह कि जहाँ व्यवसाय की न्यूनता है वहाँ काम न मिलने के कारण कितने ही लोग निठल्लेपन से समय बिताते हैं। बे रोज़गार की हालत में दरिद्र होना असंभव बात नहीं। किन्तु जिस देश में वाणिज्य की अधिकता है उस देश में काम बढ़ जाने से वहाँ के श्रमोप-जीवियों को कोई न कोई रोज़गार मिल ही जाता है। वाणिज्य के प्रभाव से कितनी ही ग़ैर आबाद ज़मीन आबाद हो जाती है। कितने ही जंगल कट कर शहर बस जाते हैं।

इस देश में पहले वाणिज्य व्यवसाय विशेष रूप से होता था। अन्तर्वाणिज्य और बहिर्वाणिज्य दोनों ही के द्वारा देश अन्न-धन से परिपूर्ण था। उन दिनों देश की कितनी ही चीज़ों को जहाज़ों पर लाद कर चाँद, श्रीमन्त और धनपति प्रभृति सौदागर समुद्र पार लेजाकर दूसरे देश में बेचते थे और उसके बदले देशान्तर से

जहाज़ों में धन भर कर देश लौट आते थे। वे लोग समुद्र-तट-वर्ती दूर देशों में न जाकर भारत के समीपस्थ समुद्र-तटवर्ती देशों में ही व्यापार करने जाते थे। उस समय के उपयुक्त सामुद्रिक जहाज़ पर चढ़ कर वे लोग बड़े ही उत्साह के साथ सिंहल द्वीप, ब्रह्मा, सुमात्रा, बोर्नियो, बालिद्वीप, और यवद्वीप आदि टापुओं में वाणिज्य करने जाते थे। वाणिज्य उन दिनों में बड़ी तरक्की पर था। देश में धनवानों की ही संख्या अधिक थी। राजा बल्लालसेन के समय में सेठ वल्लभानन्द वङ्ग देश के लिए मानो रथ्सचाइल्ड थे। बङ्गाल में ताम्रलिप्त (तमलुक), चटगाँव आदि वाणिज्य के प्रधान बन्दर थे। सुवर्णग्राम, ढाका, शान्तिपुर, मुर्शिदाबाद आदि वाणिज्य और शिल्प के केन्द्रस्थान थे। तब भी भारत से अन्न और कारीगरी की चीज़ें युरोप के पश्चिम प्रान्तवासियों के पास तक जाती थीं। क्या जल-मार्ग, क्या स्थल-मार्ग सर्वत्र ही देश का वाणिज्य फैला हुआ था। अब वे बातें मानो कहानी सी हो रही हैं।

बङ्गाल की रुई और महीन कपड़े की बुनावट सारे संसार में मशहूर थी। रुई और कपड़ों के वाणिज्य से बङ्गाल किसी समय धन-सम्पत्ति में जगत्-सेठ की आवास-भूमि बन रहा था। बङ्गाले की रुई की बड़ी खपत थी। क्या देशी क्या विदेशी सभी व्यवसायी बङ्गाले की रुई खरीदते थे। इससे बङ्गाले में घर घर लक्ष्मी विराज रही थी। बहुत दिनों की बात नहीं, सन् १८५९—६० ईसवी में रुई के वाणिज्य से भारत में १२ करोड़ रुपयों की

आमदनी हुई थीं, और पृथ्वी की समस्त खानों से उस वर्ष दस करोड़ रुपये की चाँदी निकली थी। अभिप्राय यह कि खानों से भी उतना धन नहीं निकला जितना कि भारत को एक मात्र रुई के व्यापार से मिला। इस घटना ने युरोप के वणिक्-समाज को चौंका दिया। भारत की रुई की आय ने वहाँ की समस्त वणिक्-मण्डली में खलबली मचा दी। तभी से पाश्चात्य वणिक्‌गण भारत से रुई का बीज ले जाकर मिसर और मार्किन आदि जगहों में कपास की खेती करने लगे। परिणाम यह हुआ कि इस प्रतियोगिता के कारण भारत की रुई का व्यापार एक तरह लुप्तप्राय हो गया। इस समय भारत में चीनी की भी कुछ कुछ ऐसी ही दशा हो रही है। स्वदेशी चीनी मिलना कठिन सा हो गया है। जिस वस्त्र के गौरव से भारत का मुँह उज्ज्वल था, उस भारतीय वस्त्र का नमूना पाने के २४ वर्ष बाद मैनचेस्टर का कपड़ा भारत में आने लगा। उसी मैनचेस्टर से १७९४ ईसवी में १५६०), १८०४ ईसवी में २९३६७०) और १८०७ ईसवी में ४६५४९०) रुपयों का कपड़ा भारत में आया था, और साल दर साल कपड़ों की बिक्री से इस प्रकार आमदनी की तादाद बढ़ती ही जा रही थी। एकाएक इस तरह क्योंकर हो गया? यहाँ इस विषय के निर्धारण करने की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है यह कहने की कि वाणिज्य से देश लक्ष्मीवान् होता है और वाणिज्य के अभाव से देश में दरिद्रता छा जाती है। वाणिज्य के अभाव से बङ्गाल की क्या दशा हो गई और वाणिज्य के प्रभाव

से मैनचेस्टर की कितनी उन्नति हुई है, इसको विचारना चाहिए। वेनिस जो किसी समय लक्ष्मी का निवास-स्थान था उसका कारण क्या ? वेनिस का नाम पहले कोई जानता भी न था। वह भूमध्य सागर के बीच तृण-वृक्ष-विहीन बालुकामय टापुओं का समष्टिमात्र था। वहाँ थोड़ी सी भी ज़मीन आबाद करने योग्य न थी। सारा टापू खाली पड़ा था। उतने बड़े टापू में एक भी मनुष्य कहीं दिखाई नहीं देता था। पाँचवीं शताब्दी के मध्य भाग में बर्बर हूणजाति के आक्रमण से भयभीत हो कर ऐटिला की कितनी ही अत्याचार-पीड़ित प्रजा और ऐक्युविया, और ऐड्रियाटिक के उपकूलस्थ अन्यान्य नगरों से भी कितने ही लोग, प्राण के भय से भागकर, इस जन-शून्य जलाकीर्ण टापू में आये। उस समय कौन जानता था कि इस मरुभूमि में सोना उपजेगा और यही टापू महालक्ष्मी का विहार-स्थल बनेगा ? वेनिस में सिवा सामुद्रिक लवण और मछली के जीवन-धारण करने की और कोई सामग्री न थी। उस समय युरोप में प्रायः सर्वत्र ही यह रीति थी कि उपवास के दिन और किसी पर्व त्यौहार के अवसर पर लोग विशेषतया मछली खाते थे। वहाँ के निवासी जाड़े के लिए मछली और मांस को नमक लगा लगा कर रख छोड़ते थे। वेनिस के नये निवासी इन दोनों (नमक और मछली) अतिप्रयोजनीय चीज़ों को लेकर बहिर्वाणिज्य में प्रवृत्त हुए। वेनिस के व्यवसायिगण इन दोनों चीज़ों को बेच करके विदेश का धन अपने देश में लाने लगे और क्रमशः वेनिस को ऐश्वर्यशाली बनाने लगे। थोड़े

ही दिनों में वाणिज्य के प्रभाव से वेनिस अन्न-धन से परिपूर्ण होगया। वाणिज्य-व्यवसाय के लिए भूमध्य सागर में वेनिस की तूती बोलने लगी। चौदहवीं शताब्दी में वेनिस इस उन्नत दशा में पहुँचा कि तीन हज़ार तिजारती जहाज़ और उन जहाज़ों के रक्षार्थ ११००० सैनिकों से भरी हुई चालीस युद्धनौकाओं से सुसज्जित होकर वहाँ के व्यापारियों ने स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, इँगलैंड आदि पाश्चात्य देशों में और मिसर, अरब, और हिन्दुस्तान आदि प्राच्य देशों में वाणिज्य फैला दिया। जो शुरू शुरू में केवल मछली और नमक का व्यापार करते थे वे धीरे धीरे रेशम, रुई, मसाला, मेवा, हाथीदाँत, सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा, सीसा, तेल, लकड़ी, अनाज, ऊन, काँच, काग़ज़, कपड़ा और चमड़ा आदि अनेक उपयोगी चीज़ों का व्यापार करने लगे। ग़ुलाम बेचने का व्यवसाय भी उन्होंने अछूता न छोड़ा। वेनिस की वह बालुकामयी भूमि व्यापारियों के अतुल साहस और उद्योग से स्वर्णमयी होगई। वेनिस में लोहा, पीतल और अस्त्र-शस्त्रादि के कारख़ाने स्थापित हुए। कहते हैं कि पन्द्रहवीं शताब्दी में वेनिस नगर में विशेष धन-सम्पन्न-जनों की संख्या एक हज़ार से कम न थी और दो लाख से अधिक प्रजा रहती थी। १३७१ ईसवी में वेनिस में बैङ्क स्थापित हुआ। संसार में यही पहले पहल बैङ्क की सृष्टि हुई। वेनिस का महत्त्व यहाँ तक बढ़ा कि प्रत्येक जाति के तिजारती जहाज़ वेनिस के बन्दर में आकर ठहरने लगे। देश देश के महाजनों से वेनिस का राज-पथ भरने

लगा। वेनिस का प्रताप, वेनिस का नाम सारी दुनियाँ में फैल गया। वह जनहीन जलावेष्टित टापू इस प्रकार लक्ष्मी का घर क्यों बन गया? इसका एक मात्र उत्तर है "वाणिज्य"। वाणिज्य से ही वेनिस उन्नति के ऊँचे शिखर तक पहुँच गया था किन्तु वही वेनिस अब इँगलैंड के आगे अगण्य हो रहा है। क्यों अगण्य हो रहा है? इसलिए कि वहाँ अब वह वाणिज्य नहीं। जब वाणिज्य नहीं, तब फिर लक्ष्मी कहाँ। लक्ष्मी भी वहाँ से बिदा हो कर वाणिज्य-प्रधान इँगलैंड में विराज रही है। वाणिज्य से धनवृद्धि होने का यह जातीय दृष्टान्त दिया गया है। ऐसे ही व्यक्तिगत भी अनेक दृष्टान्त हैं। कितने ही दरिद्रों के बालक वाणिज्य के द्वारा धनकुबेर होकर देश का अधिकाधिक उपकार कर गये हैं। लिपूटन और कार्नेगी आदि विदेशी व्यवसायी, तथा रामदुलाल सरकार और ताता आदि एतद्देशीयलोग वाणिज्य के द्वारा ही हम लोगों के आदर्शस्थानीय हो गये हैं।

कृष्णपान्ती का जन्म दरिद्र के घर में हुआ था। यद्यपि दरिद्रता के कारण इनका समय कष्ट से कटता था तथापि इनके हृदय में धनवान् होने की आशा बनी रहती थी। केवल आशा करके ही वे न रह गये, प्रत्युत आशा के साथ साथ धनवान् बनने का मार्ग भी ढूँढ़ने लगे। उनके जन्मस्थान रानाघाट से गङ्गापुरहाट छः मील पर था। सोलह वर्ष के कृष्णपान्ती चावल, धान, चना आदि अनाज की गठरी सिर पर रख कर रोज़ बाज़ार में बेचने जाते थे। तीन वर्ष तक इसी तरह अनाज बेचकर कुछ रुपये जमा

किये और उससे एक बैल ख़रीदा । अब वे बैल पर धान चावल आदि लाद कर पूर्ववत् बाज़ार में ले जाकर बेचने लगे। इसी तरह बड़ी सावधानी, सञ्चयशीलता और परिश्रम के साथ व्यापार करते करते उनको व्यवसाय का अनुभव हो गया और कुछ कुछ सफलता भी प्राप्त होने लगी । उनके इस पुरुषार्थ और जी तोड़ परिश्रम का पुरस्कारस्वरूप व्यवसाय में एक बार उन्हें ७७५०) रु० लाभ हुआ । इस द्रव्य से वे नीलामी चीज़ें ख़रीदने और बेचने लगे । उससे उन्हें अधिक लाभ हुआ । जब उनके पास पूँजी काफ़ी होगई तब वे नमक के व्यापार में प्रवृत्त हुए। इस व्यापार से उनका भाग्य चमक उठा । लक्ष्मी की प्राप्ति का रास्ता खुल गया । थोड़े ही दिनों में वे हाटखोला के महाजनी कारबार में सब व्यवसायियों से बढ़ गये । तदनन्तर रानाघाट ख़रीद कर उन्होंने अच्छे अच्छे मकान बनवाने के लिए लोगों को सहायता दी, अपने रहने के लिए अच्छा मकान बनवाया; फुलवाड़ी और बाग़ीचे लगाये: और एक बहुत बड़ा तालाब खुदवाया । यों ही सुकीर्ति स्थापन कर उन्होंने रानाघाट की शोभा बढ़ा दी । एक बार उन्होंने मद्रास के दुर्भिक्ष-पीड़ित नर-नारियों के प्राण-रक्षार्थ तीन लाख रुपयों का चावल ख़ैरात कर दिया । कृष्णनगर के राजा ने उनकी इस उदारता से प्रसन्न होकर उन्हें चौधरी की उपाधि दी और बड़े लाट लार्ड मयरा ने उन्हें "पलनाइट" की उपाधि से विभूषित किया था । यही कृष्णपान्ती महाशय रानाघाट के प्रसिद्ध पाल चौधरीवंश के प्रतिष्ठाता हुए ।

स्वर्गीय रामदुलाल सरकार युवावस्था के आरम्भ में पहले एक धनाढ्य परिवार के यहाँ ५) मासिक पर उम्मेदवार हुए। इसके बाद १०) मासिक पर वे रुपया वसूल करने के काम पर नियुक्त हुए। यदि वे जन्म भर यही काम करते तो भी एक हज़ार रुपया जमा कर सकते या नहीं इसमें सन्देह था। किन्तु उन्होंने पराधीनता की ज़ंजीर से मुक्त होकर स्वतन्त्रता-पूर्वक वाणिज्य-व्यवसाय करके कई लाख रुपया उपार्जन किया और बङ्गदेश की धनाढ्य-मण्डली में उच्च आसन प्राप्त किया। उनके पास इतना रुपया जमा हो गया था कि एक समय वे महाजनों को चालीस लाख रुपया देने में समर्थ हुए थे। रामदुलाल सरकार अपनी कमाई के रुपयों से बहुत कुछ लोकोपकारी काम कर गये हैं। सर्व साधारण लोग अब भी बड़ी श्रद्धा से उनका नाम स्मरण करते हैं।

जे० डी० राकफ़ेलर ५०) मासिक पर क्लर्की करते थे, किन्तु स्वतन्त्र वाणिज्य के प्रभाव से ४३ वर्ष में उन्होंने ६० करोड़ रुपया पैदा कर लिया। कोई यह न समझे कि उनका भाग्य जादू या यन्त्र-मन्त्र के बल से इस तरह पलट गया था। एक मात्र अध्यवसाय-पूर्वक व्यवसाय-बल से ही उनका भाग्य इस प्रकार चमक उठा। वाणिज्य-व्यवसाय का जो अवलम्बन करेगा वह इन्हीं की तरह कृतकार्य्य होगा। पीरपेन्ट मारगेन साहब ने सामान्य अवस्था से इसी वाणिज्य के द्वारा ३० करोड़ रुपये पैदा किये। हैवमेयर साहब चीनी के कारबार से २१

करोड़ रुपये के, और डब्ल्यू० एस० राकफ़ेलर तैल-व्यवसाय से १२ करोड़ रुपये के अधिकारी हुए। हीन अवस्था के एन्ड्रू कार्नेगी, जो किसी समय राजपथ के झाड़ू देनेवाले थे, वाणिज्य की बदौलत वृद्ध होते होते एक अरब बीस करोड़ रुपये के मालिक बन बैठे, यह बात किसी से छिपी नहीं है। जिस वाणिज्य से इस प्रकार धन-लाभ हो उसे नीच वृत्ति समझ उस में प्रवृत्त न होना बड़ी भूल है। भूल क्या है, मानो देश के अधःपात का कारण है।

निष्ठात्रय

"समयनिष्ठा, नियमनिष्ठा और वाक्यनिष्ठा"

एकाग्रता और निष्ठा के बिना कोई बड़ा काम सम्पन्न नहीं हो सकता। सङ्कल्प की निष्पन्नता निष्ठा ही पर निर्भर है। बिना निष्ठा के कोई सङ्कल्प पूरा नहीं हो सकता। संसार में जो लोग अपने बाहुबल से प्रसिद्ध हो गये हैं वे सभी समयनिष्ठ, नियमनिष्ठ और वाक्यनिष्ठ थे। भविष्य में भी जो लोग महान् होंगे वे इन तीन निष्ठाओं के बल से ही होंगे। कितने ही कवि, कितने ही ग्रन्थकार, असाधारण प्रतिभासम्पन्न होकर भी इन तीन गुणों से वञ्चित होने के कारण बहुत बहुत कष्ट भोग चुके हैं। दुर्भावना और दुःसमय कितने ही निष्ठाहीन विद्वानों का असमय में ही अमूल्य जीवन हर लेता है। बङ्गाल के

हरिश्चन्द्र, मधुसूदन दत्त, काशी के भारतेन्दु और अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ आदि इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इन लोगों का कोई काम शृङ्खलाबद्ध नहीं था। कोई काव्य को तो कोई साहित्य को लेकर ही पागल बने थे। सांसारिक अन्यान्य प्रयोजनीय कामों के साथ उन का कुछ भी सम्पर्क न था और न वे लोग सम्पर्क रखना ही चाहते थे। उन लोगों को अपनी जीवनरक्षा के उपाय को दृढ़ करने का कभी अवसर प्राप्त न हुआ। इसका प्रधान कारण सुरापान और अमित व्यय था। बलवान् व्यक्ति की स्नायुपेशियों को मदिरा शिथिल करती है और शरीर के शोणित को दूषित करके तथा अनेक व्याधियों को उत्पन्न करके स्वास्थ्य को नष्ट कर देती है। वह मानसिक शक्तिसमूह को भी नाश कर डालती है। इसी से मद्यपायियों को कर्तव्याकर्तव्य का विचार नहीं रहता। नशे की मौज में उनकी सभी शक्ति छिप जाती है।

किसी अवस्था का कोई मनुष्य क्यों न हो, ये पूर्वोक्त तीनों निष्ठायें सभी के लिए आवश्यक हैं। साधारण से साधारण गृहस्थ, जिनका बाहर के व्यवहारों से कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं है, वे यदि नियमनिष्ठ, समयनिष्ठ और वाक्यनिष्ठ न हों तो उन्हें भी विपत्ति झेलनी पड़े और कार्य्यक्षेत्र में विघ्नबाधाओं का सामना करना पड़े। जिन लोगों को समय की, काम की, और अपने वाक्य की कोई निष्ठा नहीं है, किसी नियम की पाबन्दी

नहीं है, उनका कोई काम ठीक समय पर पूरा नहीं होता। उनके सभी काम अधूरे ही पड़े रहते हैं।

यहाँ मैं एक निष्ठाहीन भले मानुस की बात सुनाता हूँ। वे समय की परवा न करते थे। इससे उनका कोई काम समयानुसार नहीं होता था। उनके घर की सभी चीज़ें जहाँ तहाँ पड़ी रहती थीं। किसी चीज़ के लिए कोई जगह निर्धारित न थी, और जो चीज़ जहाँ से ली जाती थी वहाँ फिर रक्खी नहीं जाती थी। जिसने जिस चीज़ को जहाँ पाया रख दिया। इससे कभी कभी किसी चीज़ की तलाश में घण्टों देर लग जाती थी तब भी वह न मिलती थी। मिले क्योंकर? जब घड़ी घड़ी वस्तुओं का स्थानपरिवर्तन होता रहेगा तब उसका मिलना कठिन क्यों न होगा? जो चीज़ सिलसिले के साथ रक्खी जाती है उसके मिलने में कोई अड़चन नहीं होती। हरेक काम का सिलसिला ही समय का उत्कृष्ट नियामक है। सभी चीज़ें ठिकाने के साथ रखने पर घर की शोभा बढ़ती है। जिस घर में वस्तुओं के रखने का क्रम ठीक नहीं, उस घर की शोभा ही क्या? एक दिन उन लाड़ले बाबू को बिछौने से उठने में अब तब करते ही करते आठ बज गये। आठ बजे तो उन्होंने शय्या का ही परित्याग किया। प्रातःकृत्य करने में भी कुछ विलम्ब हुआ। उस दिन उन्हें बाज़ार भी जाना था, क्योंकि घर में आहार्य्य द्रव्य कुछ न था। कई दिनों से आज कल करते करते आज का दिन नितान्त ही आवश्यक आ पड़ा। "बाज़ार से चीज़ आने पर चूल्हा फूँका

जायगा। सौदा ख़रीदने में भी घण्टों देर लगेगी। दस बजे दफ़्तर में भी हाज़िर हो जाना चाहिए।" ये बातें सोच कर वे झट पट कुछ रुपये लेकर बाज़ार की तरफ़ लपके किन्तु वे एक मित्र से वादा कर चुके थे कि उस दिन नौ बजे उनको अपने साथ, उनकी नौकरी की सिफ़ारिश करने के लिए, एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के पास ले जायँगे और एक पावनेदार को उन्होंने उसका बाक़ी रुपया चुकाने के लिए साढ़े आठ बजे बुलाया था। इधर बाज़ार का सौदा लेते-देते टन टन करके नौ बज गये। जल्दी के मारे अच्छा सौदा भी न लेने पाये। सामने जो भला-बुरा, सस्ता या महँगा सौदा नज़र आया उसे झट पट ख़रीद कर तुरन्त घर लौट आये। घर आते ही मालूम हुआ कि उनके इन्तज़ार में नौकरी के उम्मेदवार मित्र महाशय घंटों से बैठे हैं। महाजन भी आया था पर कुछ देर बैठ कर और नाराज़ होकर चला गया। वह जाते वक़्त कहता गया कि जब रुपया देना उन्हें मंज़ूर नहीं है तब इस तरह झूँठ मूठ ठगने की क्या ज़रूरत थी। मुफ़्में मेरा इतना वक़्त बरबाद हुआ। वह कह गया है कि रुपया लेने अब न आऊँगा, उन्हें देना हो तो मेरी कोठी में भिजवा दें। किन्तु बेचारे मित्र अपनी गरज के मारे बैठे थे। लाड़ले बाबू झटपट स्नान करके और उतनी देर में जो अधकच्ची रसोई तैयार हुई थी उसे किसी तरह फूँक फाँक कर आधे पेट खाकर बाहर निकल पड़े। इस शीघ्रता में उनके हाथ से छतरी छुटकर नीचे गिर पड़ी। झुककर ज्योंही छतरी उठाने लगे त्योंही उनके ब्रेस्ट

पाकेट से जेबीघड़ी नीचे गिर पड़ी। उसका काँच का ढँपना फूट गया और उसकी गति भी रुक गई। दफ़्तर जाने का समय बीता जा रहा है, यह सोच कर उन्होंने इन बातों की ओर ध्यान न दिया। वे मित्र महाशय से क्षमा-प्रार्थी होकर बड़ी तीव्र गति से दफ़्तर में जा पहुँचे। इतनी जल्दी करने पर भी दफ़्तर में ठीक समय पर नहीं पहुँच सके। आफ़िस के मालिक, जो उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे उन्होंने इस विलम्ब पर बाबू साहब को दो-चार कड़वी मीठी बातें कह सुनाईं। लाड़ले बाबू के तो, दूर ही से मालिक की रोषपूर्ण गम्भीर मूर्ति देख कर, होश उड़ गये थे। उस पर फटकार पड़ने से उन्हें बड़ी ही ग्लानि हुई। मन ही मन क्लर्की को धिक्कार देते हुए कार्य-क्षेत्र में प्रवृत्त हुए। सामने बहुत ज़रूरी काम पड़े देख घबरा उठे। उधर जिस प्रतिष्ठित व्यक्ति से नौ बजे मुलाकात करने की बात तय हो गई थी वे अपना दूसरा काम छोड़ कर इनके आने की राह देखते रहे। आख़िर वे रुष्ट होकर किसी दूसरे काम को चल दिये। देखो, समय की अनिष्ठा से लाड़ले बाबू उस प्रतिष्ठित व्यक्ति के निकट, अपने एक मित्र के निकट और महाजन के निकट सत्यभ्रष्ट हुए, तथा घर से लेकर बाहर तक सभी के क्रोध और अविश्वास के पात्र बने। यद्यपि किसी को जान बूझ कर रुष्ट करने या धोखा देने का उनका हार्दिक भाव नहीं था तथापि समय की परवा न करने से विवश होकर उन्हें ऐसा करना पड़ा। दफ़्तर में देर करके गये थे

इसलिए काम को पूरा करके घर लौट आने में भी उन्हें देर हो गई। पाँच बजे घर आकर देखा कि टेबल पर एक चिट्ठी उनके नाम की रक्खी है। खोल कर उसे पढ़ा, चिट्ठी बहुत ज़रूरी थी। उसका जवाब तुरन्त न भेजने से हानि होने की सम्भावना थी। वे जिस वेष में दफ़्तर से आये थे उसी वेष में उत्तर लिखने बैठे। कारण यह था कि झटपट चिट्ठी लिख कर डाक में न डालने से फिर उस दिन चिट्ठी न जाती। साढ़े पाँच बजे डाक चली जायगी, यह सोच कर वे बिना हाथ-मुँह धोये ही चिट्ठी लिखने को प्रस्तुत हुए। किन्तु जैसे उनके समय का कोई नियम न था वैसे ही उनकी किसी चीज़ का भी कुछ ठौर ठिकाना न था। उन्होंने चिट्ठी लिखने के कागज़ और लिफ़ाफ़े के लिए बक्स खोला। बक्स में कागज़ इस बेतरतीब से रक्खे थे कि दो तीन बार उलटने-पलटने पर भी चिट्ठी का कागज़ नहीं मिला। आख़िर ग़ुस्से में आकर सारे कागज़ों को नीचे डाल दिया और एक एक कागज़ देखने लगे। तब, इतनी देर में जाकर श्रम सफल हुआ। चिट्ठी का कागज़ तो मिला पर दावात क़लम वहाँ मौजूद न थी, कहीं दूसरी जगह रक्खी थी। इससे दावात क़लम लाने गये। हड़बड़ी में दावात हाथ से फिसल कर नीचे गिर पड़ी। रोशनाई चारों तरफ़ बह चली। रोशनाई के कुछ छींटे उनके कपड़ों पर भी पड़े जिससे कुछ कपड़ा भी ख़राब होगया। समय तो नष्ट हुआ ही उसके साथ उनका मिजाज़ भी भिन्ना गया। वे रुष्ट से होकर और जल्दी में पड़कर कितनी ही आवश्यक बातें चिट्ठी में

लिखना भूल गये। चिट्ठी लेकर डाकघर को ओर दौड़े। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि डाक रवाना होगई। वह चिट्ठी उस डाक से न भेजी जाने पर उन्हें क्षतिग्रस्त होना पड़ता, इसलिए गाड़ी भाड़ा करके स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ दूना डाकमहसूल देकर और चिट्ठी रवाना कर घर लौटे। उस दिन केवल एक 'समय' के व्यतिक्रम से उन्हें कितना ही शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाना पड़ा, लाञ्छना सहनी पड़ी और गाड़ी-भाड़ारूप अर्थ-दण्ड देना पड़ा तब उनका उस दिन का कर्म-फल भोग पूरा हुआ। यह कुछ एक ही दिन की बात नहीं, उनके यहाँ रोज़ ऐसीही नई नई घटनायें होती थीं। उनका आलस्य, दीर्घसूत्रता, समय का अपव्यवहार और वाक्यनिष्ठा का अभाव, उन्हें इस प्रकार विपद्स्थ कर लोगों के निकट उपालम्भभाजन बनाता था, और घर में अशान्ति स्थापित करके उनके मन को व्यग्र बनाये रहता था। फिर भी न मालूम उनका कैसा स्वभाव था जो इन आलस्य आदि दुर्गुण रूपी शत्रुओं को दूर कर समयनिष्ठा, नियम-निष्ठा और वाक्य-निष्ठा रूपी सन्मित्र के पाने की चेष्टा न करते थे। इस अनिष्ठा का परिणाम यह हुआ कि ये अकाल में ही काल-ग्रस्त हो कर अपने परिवार को दुःख-सागर में निमग्न कर गये। सामान्य गृहस्थ की जब समय आदि की अनिष्ठता से यह दशा होती है, तब जो समाज के सुधारक हैं, जो लाखों प्रजा के अभिभावक हैं, जो बड़े बड़े कारखानों के परिचालक हैं और जो शिक्षक, सम्पादक, ग्रन्थकर्ता आदि हैं या संसारिक कार्य से जिनका गुरुतर

सम्बन्ध है, उनकी अवस्था कैसी भयानक हो सकती है यह अनुभव के द्वारा जानी जा सकती है। यदि लोग उक्त तीन निष्ठाओं से रहित हों तो संसार का कितना बड़ा अमङ्गल हो सकता है, यह कोई नहीं कह सकता। जो अपने समय को ठीक नहीं रख सकते वे अपने काम के सिलसिले को भी ठीक नहीं रख सकते। ऐसे अनिष्ठ व्यक्तियों की बात का कोई विश्वास भी नहीं करता और न उनको किसी काम का भार सौंपकर निश्चिन्त ही रहता है। अनिष्ठ लोग नहीं समझते कि यह समय कितना बहुमूल्य है, इसीसे वे अपने समय को तो वृथा नष्ट करते ही हैं किन्तु दूसरों के भी अमूल्य समय को नष्ट करने में ज़रा भी संकोच नहीं करते। जो लोग समय के अनुसार काम नहीं करते हैं उनकी दिन पर दिन अवनति होती है। जो गृहस्थ ठीक समय पर खेती नहीं करेगा उसकी अच्छी उपज न होगी। जो दूकान-दार ठीक समय पर दूकान नहीं खोलेगा उसके ग्राहकों की संख्या घट जायगी। यदि कोई ख़रीदार उधार सौदा लेकर ठीक समय पर मूल्य अदा न करेगा तो फिर उसे दूसरी चीज़ उधार न मिलेगी और उसका विश्वास उठ जायगा। व्यवसायियों के लिए समय-निष्ठा से बढ़ कर कोई गुण नहीं। जो व्यवसायी सभी काम समयानुसार करते हैं उन पर लोगों का विश्वास दिन ब दिन बढ़ता जाता है और इससे उनके कारबार की भी दिनों दिन तरक्क़ी होती है। जो महाजन समय का पाबन्द नहीं रहता उस पर से लोगों की श्रद्धा और विश्वास उठ जाता है। एक वणिक्

विद्वान् का कथन है कि "वाणिज्यरूपी पहिये को अच्छी तरह चिकना रखने का तेल समय-निष्ठा ही है। जो लोग किसी को वचन देकर ठीक समय पर अपने वचन को पूरा नहीं करते वे सिर्फ़ अपना ही नुक़सान नहीं करते किन्तु दूसरों को भी क्षतिग्रस्त करते हैं। इसलिए जो भाग्यवान् पुरुष हैं वे समय की मर्यादा का कभी उल्लङ्घन नहीं करते। द्रव्य की सदुपयोगिता से समय की सदुपयोगिता किसी प्रकार न्यून नहीं है। मितव्ययी फ्रैङ्कलिन कहा करते थे—"समय ही सोना है" क्योंकि सोने की प्राप्ति समय के ही सद्व्यवहार से हो सकती है। प्रत्येक कार्य का समय ठीक रहना चाहिए और सभी काम ठीक समय पर होने चाहिएँ। व्यवसायियों को तो भूल कर भी समय की अवहेला न करनी चाहिए। समय का सदुपयोग करके कितने ही लोगों ने कितनी ही उन्नति की है और कर रहे हैं। डाक्टर मेसन् गुड प्रति दिन जिस समय रोगियों को देखने जाते थे उस समय वे गाड़ी में बैठे बैठे "लूक्रिशिया" का अनुवाद लिखा करते थे। यों ही उन्होंने घूमते फिरते ही, समय को व्यर्थ न गवाँकर, अनुवाद का अच्छा ग्रन्थ लिख डाला। डाक्टर डार्विन जिस वक्त गाड़ी पर चढ़ कर घूमने जाते थे उस वक्त वे विज्ञान-विषय पर कविता लिखते थे। दी क्यामेलो डी.ऐन्ड एला की स्त्री उन्हें मध्याह्नकाल के भोजन के पहले पन्द्रह मिनट बैठा रखती थी। उन्होंने उस समय को वृथा न गवाँकर प्रति दिन उसी समय में थोड़ा थोड़ा करके ग्रीक के धर्म-ग्रन्थ का सम्पूर्ण

अनुवाद कर डाला। चार्ल्स किंग्सली और बेंजमिन् फ्रैङ्कलिन् आदि सभी समय को अमूल्य समझ उसका सद्व्यवहार करते थे। वे लोग कभी समय की उपेक्षा नहीं करते थे। जिस समय जो काम उचित समझते थे उसे उसी समय कर डालते थे। जो काम आज के करने का था उसे कल पर नहीं छोड़ते थे। एक विद्वान् का कथन है कि "आगामी कल कभी नहीं आता, जो आता है वह या तो बीता हुआ कल है या आज है।" "समय चला गया, अब समय न रहा, समय नष्ट होगया" इस प्रकार कह कर कालक्षेप करने से कुछ फल नहीं होता। जो लोग समय पर ध्यान नहीं रखते उन्हीं का समय हाथ से निकल जाता है जो फिर हज़ार कोशिशें करने पर भी हाथ नहीं आता। किन्तु जो लोग सावधान रहते हैं वे समय को वृथा नहीं जाने देते। कुछ न कुछ काम उससे ज़रूर लेते हैं। संसार के जितने काम हैं सभी का सम्बन्ध एक मात्र समय से है। जो लोग काम करना चाहते हैं उन्हें समय भी मिलता है और काम करने का उपाय भी सूझ पड़ता है। जो लोग यह कहा करते हैं कि "हमें काम करने का समय ही नहीं मिलता" समझना चाहिए कि वे काम करने से जी चुराते हैं अथवा समय का सदुपयोग करना नहीं जानते। सर हेनरी काक ह्वाइट जब वकील के मुहर्रिर थे तब कचहरी में जो कुछ थोड़ा सा समय मिल जाता था उसमें वे ग्रीक भाषा सीखते थे।

इस समय-निष्ठा, नियम-निष्ठा और वाक्य-निष्ठा का परस्पर

ऐसा कुछ सम्बन्ध है जिससे एक के अभाव से शेष दो का भी अभाव हो जाता है और एक का अभ्यास करने से उन दोनों का भी अभ्यास अवश्य हो जाता है। जो नियत समय पर नियमित काम करना नहीं भूलते वे जिस समय में जो काम करने की प्रतिज्ञा करते हैं उसे उसी समय में करते हैं। जो अपनी आवश्यक वस्तुओं को सिलसिले के साथ रखना चाहते हैं वे हरेक चीज़ के लिए जगह निर्धारित करते हैं। वे जिस जगह से जो चीज़ उठाते हैं उसे फिर उसी जगह रखते हैं। इससे उन्हें समय का बड़ा ही सुभीता होता है। किसी चीज़ के मिलने में दिक्क़त नहीं होती। उन्हें जब किसी चीज़ की ज़रूरत होती है तुरन्त मिल जाती है। चिट्ठी लिखने का काग़ज़ दवात या क़लम ढूँढ़ने के लिए उन्हें आकाश-पाताल एक नहीं करना पड़ता। किसी एक चीज़ को निकालने में उन्हें घंटों माथा-पच्ची नहीं करनी पड़ती। जिनके समय और काम की शृङ्खला बँधी रहती है वे जिस समय पर जो काम करने की ठानते हैं, करते हैं और अपनी प्रतिज्ञा पालने में समर्थ होते हैं। ऐसे व्यक्तियों पर लोगों का विश्वास भी दिनों दिन बढ़ता है। बैंजमिन् फ्रैङ्कलिन् छापेखाने के काम में बहुत दिनों तक नियुक्त थे। वे अपनी इन्हीं निष्ठाओं के बल से सबके विश्वास-भाजन और देशमान्य हुए थे। उन पर सर्वसाधारण का विश्वास ही उनकी उन्नति का कारण हुआ था। जो इन तीन गुणों को अपनाते हैं वे संसार में सुखी होकर समाज में आदर पाते हैं और देश में प्रतिष्ठित गिने जाते हैं।

वाक्य-निष्ठा में किसी समय भारतीय आर्य अद्वितीय थे। उन लोगों के समान सत्यपरायण दूसरी जाति न थी। इसी एक सत्य-निष्ठा के बल से हिन्दू जाति सभ्यतम, समुन्नत, स्वाधीन और ब्रह्मज्ञानी बनी थी। उन दिनों वाक्य-निष्ठा की इतनी मर्यादा थी कि पिता का सत्य पालन करने के लिए श्रीरामचन्द्रजी ने सब सुखों को त्याग कर वनवास के विविध क्लेशों को सिर पर उठा लिया था। वाक्य-निष्ठा के लिए ही महापराक्रमी भीष्म आदर्शस्वरूप हुए हैं, जिन्होंने यावज्जीवन कौमार-व्रत धारण कर प्रतिज्ञा का पालन किया। ऐसे ही और भी कितने ही दृढ़-प्रतिज्ञ हो गये हैं जिनका नाम पूर्व कालिक इतिहास में अङ्कित है।

रेगुलस नाम का एक रोमक अन्यान्य रोम-वासियों के साथ कार्थेज में क़ैद हुआ। उस समय रोम के साथ कार्थेज का भयङ्कर युद्ध हो रहा था। कार्थेजवासी बहुत दिनों तक लड़ाई करते रहने के बाद रोम के साथ सन्धिस्थापन की चेष्टा करने लगे। यह पैग़ाम लेकर कई राजदूत रोम भेजे गये। उन रजदूतों के साथ रेगुलस भी क़ैद से छुट कर सन्धिस्थापन के सहायतार्थ गये। किन्तु रेगुलस को यह प्रतिज्ञा करके जाना पड़ा कि "यदि हम सन्धिस्थापन में समर्थ न होंगे तो रोम से लौट कर फिर कार्थेज के कारागार में बद्ध होंगे"। रेगुलस यह जानते थे कि यदि हम अकृतकार्य होंगे तो कार्थेज लौट आने पर शत्रुगण बुरी तरह से हमारी हत्या करेंगे। किन्तु उन्होंने रोम पहुँच कर अपने देश-वासियों को पूर्ण उत्साह और अध्यवसाय के साथ कार्थेज-

वासियों के साथ लड़ने के लिए उत्तेजित किया। इसके बाद रोमवासियों से हज़ार रोके जाने पर भी अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए वे कार्थेज के क़ैदख़ाने में लौट आये। जिस अमानुषिक अत्याचार, जिस भीषण कठोरता, जिस पैशाचिक निर्दयता से उनकी हत्या की गई, यह इतिहास के पाठकों को विदित ही होगा। रेगुलस अब नहीं हैं; किन्तु उनकी वाक्य-निष्ठा, उनकी स्वदेश-भक्ति, उनकी स्वाधीन-चित्तता और उनकी कठिन प्रतिज्ञा पालन करने की बात अब भी लोगों के हृदय में विद्यमान है। इस सत्यनिष्ठा ने जिस तरह एक दिन भारत को उन्नत और भारतवासियों को गौरवान्वित किया था उसी सत्य-निष्ठा ने वाक्य-निष्ठ रेगुलस के जाति-समुदाय को लोक-मान्य; किया; और उन्नति के अन्तिम सोपान तक पहुँचाया था।

सिद्धि का मूल मन्त्र साधुता है

"वह साधुता वास्तव में कुछ नहीं जो प्रलोभन की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सके।"

साधुता ही सिद्धि का मूल मन्त्र है। इसे सभी लोग मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं। किन्तु वाणिज्य-व्यवसाय के विषय में भी "साधुता ही सिद्धि का मूल मन्त्र है" इस बात को कुछ लोग

भ्रमात्मक मानते हैं। किसी किसी नीतितत्त्व-वेत्ता ने तो यहाँ तक कह डाला है कि "जो लोग थोड़े दाम में कोई चीज़ ख़रीद करके अधिक मूल्य पर बेचते हैं उन लोगों का साधुता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है"। जिन लोगों का ऐसा कथन है, जो लोग ऐसा चाहते हैं कि जिस दर से जो चीज़ ख़रीदी जाय उसी दर पर बेची भी जाय, तभी साधुता की रक्षा हो सकती है: उनकी इस मनःकल्पित साधुता के अवलम्बन करने वाले व्यवसायियों को चाहिए कि वे अपनी दूकान समेट लें और वणिक्-गण अपने वाणिज्य की बड़ी बड़ी कोठियों को बन्द कर के चुपचाप बैठ रहें। ख़रीदी हुई चीज़ें थोड़े बहुत मुनाफ़े के साथ बेची जाती हैं यह प्रायः सभी को मालूम रहता है। यह लाभ और कुछ नहीं, केवल व्यवसायियों के परिश्रम का मूल्य है। ख़रीदार देशी या विदेशी चीज़ों को अपनी आवश्यकता के अनुसार बनियों की दूकान से मुनासिब दाम देकर ख़रीदते हैं, इसमें असाधुता की कौन सी बात है ? किन्तु चीज़ों का दाम बेतरह बढ़ाना, अर्थात् चीज़ पर ड्यौढ़ा दूना दाम कसना, एक ही चीज़ को कई दर से बेचना, नक़ली चीज़ों को असली बता कर लोगों को धोखा देना, या और ही किसी तरह से ग्राहकों को ठगना अवश्य असाधुता है। जो व्यवसायी लोभवश साधुता को उठा देते हैं उनका अवश्य पतन होता है। थोड़े ही दिनों में उनकी वञ्चकता की बात सर्वत्र फैल जाती है और कोई ग्राहक उनकी दूकान की ओर झाँकता तक नहीं। बिक्री कम पड़

जाने के कारण उनकी दूकान की कितनी ही चीज़ें ख़राब हो जाती हैं जिससे थोड़ा लाभ उठाने के बदले उन्हें ज़्यादा घाटा सहना पड़ता है। जो वणिक् साधुता का अवलम्बन कर मुनासिब दाम पर सौदा बेचते हैं उनकी दिन पर दिन वृद्धि होती है। इसलिए "साधुता सिद्धि का मूल मन्त्र है" यह वाक्य जैसे और लोगों के लिए चरितार्थ होता है वैसा ही व्यवसायियों के लिए भी चरितार्थ होता है।

कोई चीज़ ख़रीदने, बेचने या बदलने में विश्वास ही कार्य-सिद्धि का आधार है। विश्वास के बिना व्यवसाय चल नहीं सकता। विश्वास उठ जाने से साधुता नहीं रहती और साधुता का अभाव अधःपात का कारण होता है। व्यवसायियों के लिए विश्वास से बढ़ कर कोई दूसरी पूँजी नहीं। जिस व्यवसायी ने विश्वासरूपी पूँजी को खो दिया है उसका व्यवसाय कितने दिन ठहर सकता है? इस देश में, बनज-व्यापार की वृत्ति में, विश्वासरूपी मूल धन का अधिकतर अभाव देखने में आता है इसीसे श्रीवृद्धि का पथ सङ्कीर्ण हो गया है। यह अविश्वास ही का फल है कि कोई ख़रीदार एक चीज़ ख़रीदने के लिए दस दूकानों में मोल तोल करता फिरता है। बिना दस दूकानें देखे उसे असली दाम का पता नहीं लगता। किन्तु इस प्रकार एक मामूली चीज़ के लिए इस दूकान से उस दूकान में घूमते फिरने में जो समय नष्ट होता है इसकी पूर्त्ति किसो तरह नहीं हो सकती। दूकानदारों की बात का अविश्वास करने से ख़रीदार का तो यों

समय नष्ट होता है, दूकानदारों का भी समय इसी तरह नष्ट होता है। दस तरह की दस चीज़ें निकाल कर उन्हें ग्राहकों को दिखलानी पड़ती हैं। ग्राहकों में अधिक तो केवल दाम की आज़माइश करने ही वाले रहते हैं, उन्हों ने चीज़ें निकलवाई, दाम पूछा और दूकानदार ने मुनासिब दाम बतलाया फिर भी "ना पसन्द है" कह कर ग्राहक महाशय दूसरी दूकान में जा डटे। दूकानदारों का समय अधिकतर मोल-तोल ही में नष्ट होता है। इसका कारण केवल अविश्वास है। जो दूकानदार अपने को विश्वासपात्र बना कर अपने ऊपर लोगों का विश्वास प्राप्त कर लेते हैं और मुनासिब नफ़ा लेकर सौदा बेचते हैं उनकी चीज़ें और दूकानदारों की अपेक्षा अधिक बिकती हैं और बहुत शीघ्र वे अपनी उन्नति करने में समर्थ होते हैं। इन दिनों यह अविश्वास ख़रीदार और दूकानदार दोनों के लिए शोच का विषय हो रहा है, इसमें सन्देह नहीं। इसलिए दोनों में सत्य-निष्ठा की विशेष आवश्यकता है।

कीर्णाहार (स्थान विशेष) के प्रसिद्ध कपास के व्यापारी रामानन्द राय दरिद्र की सन्तान थे। उन्होंने (पूँजी) न रहने के कारण ऋण लेकर कपास की तिजारत करना प्रारम्भ किया। वे मुर्शिदाबाद के एक प्रसिद्ध महाजन की दूकान से रुई ख़रीदते थे। एक दफ़ा उनके ज़िम्मे महाजन का कुछ ज़्यादा रुपया रुक गया। कुछ दुष्ट लोगों ने छिपे छिपे यह गप्प उड़ादी कि रामानन्द का दिवाला निकल गया। यह ख़बर जब महाजन

के कानों तक पहुँची तब उन्होंने अपने माल का कुल रुपया एकमुश्त उनसे माँगा। सत्यनिष्ठ रामानन्द तुरन्त मुर्शिदाबाद गये और महाजन का कुल रुपया चुका कर अपनी ओर से पाँच हज़ार रुपया और जमा कर आये। दुष्टों की चालबाज़ी समझ कर और रामानन्द की साधुता देख कर महाजन बड़े ही लज्जित हुए। उन्होंने अपनी कोठी के प्रधान कर्मचारी को आज्ञा दे दी कि अब से रामानन्द को सस्ते भाव से रुई दी जाय और वे जितने रुपये की उधार चीज़ लेना चाहें उन्हें दी जाय। यह सुविधा पाकर रामानन्द ने अपने कारबार को बढ़ा दिया और पूर्ण लाभ उठाया। साधुतापूर्वक व्यापार करने के प्रभाव से रामानन्द थोड़े ही दिनों में ऐश्वर्य्यशाली होकर स्वयं महाजन बन गये। इन्हीं ने महेश्वर दास की साधुता और सत्यनिष्ठा देख कर उन्हें दो हज़ार रुपया पुरस्कार दिया था। यही रुपया महेश्वर दास के अतुलऐश्वर्य का कारण हुआ।

बहुत दिनों की बात है, फ़रीदपुर ज़िले के शिरुवाइल गाँव का मृत्युञ्जय विश्वास नामक एक दरिद्र व्यक्ति रोज़गार की तलाश में कलकत्ते गया। वहाँ एक चीनी आदमी से उसकी मित्रता हुई। इस चीनी मित्र के द्रव्य-साहाय्य से और उसकी सलाह से उसने बड़े बाज़ार में लोहे की दूकान खोली। पहले ही व्यवस्था हो चुकी थी कि लाभ का आधा भाग मृत्युञ्जय लेगा और आधा अपने मित्र को देगा। मृत्युञ्जय की सत्यनिष्ठा और साधुता से उसकी दूकान का इतना पसारा बढ़ गया

कि वह लाभ के अर्धांश सहित मूलधन अपने मित्र को देकर लाभ के अर्धांश से स्वतन्त्रता-पूर्वक दूकान चलाने लगा। विलायत के सौदागर ने एक दफ़ा माल भेजते समय भूल से अपनी चीज़ों का दाम तीन सौ रुपया कम करके चालान दिया। किन्तु सत्यनिष्ठ मृत्युञ्जय ने उसके हिसाब में यह भूल देख कर तुरन्त उस के बीजक से तीन सौ रुपये अधिक उसके पास भेज दिये। इस साधुता से सौदागर को मृत्युञ्जय पर इतना विश्वास हो गया कि वह बिना रुपया पाये भी मृत्युञ्जय के पास माल भेजने लगा। साधुता ने सर्वसाधारण में उसे ऐसा विश्वास-भाजन बना दिया था कि उसके कारबार से एक समय कलकत्ते का बड़ा बाज़ार भर गया था।

करोड़पती रामदुलाल सरकार जब दस रुपये की नौकरी करते थे तब एक दिन उनके मालिक ने उन्हें कोई एक नीलामी जायदाद ख़रीदने के लिए भेजा। आफ़िस में पहुँच कर रामदुलाल सरकार ने सुना कि वह जायदाद किसी ने ख़रीद कर ली किन्तु एक जलमग्न जहाज़ नीलाम होनेवाला है। उन्हें उस जहाज़ का हाल कुछ कुछ मालूम था। उन्होंने सोचा कि उस जहाज़ को ख़रीदने से विशेष लाभ होगा। इसलिए उन्होंने मालिक से बिना ही हुक्म लिये १४ हज़ार रुपये में उस नीलामी जहाज़ को ख़रीद लिया। पीछे से एक साहब ने उनका बहुत निहोरा करके एक लाख चौदह हज़ार रुपये में वह जहाज़ उनसे मोल ले लिया। वे चाहते तो चौदह हज़ार रुपया मालिक को

वापस देकर एक लाख रुपया बेखटके हज़म कर जाते। किन्तु भविष्य में जिन्हें श्रीमान् होना लिखा है, सत्यनिष्ठा जिन्हें वाणिज्य के द्वारा ऋद्धिपथ पर ले जानेवाली है, वे दरिद्र होने पर भी ऐसा काम क्यों करेंगे? दस रुपये के वृत्तिभोगी रामदुलाल ने लाख रुपये के लोभ को रोक कर सब रुपया मालिक के सामने रख दिया और सारा हाल उनको आद्योपान्त कह सुनाया। सत्यता का पुरस्कार क्या कभी अप्राप्त हो सकता है? उनके उदार मालिक मदनमोहन ने वह रुपया न लेकर सत्यनिष्ठ राम-दुलाल को पुरस्कार में दे दिया। यही लाख रुपये की पूँजी पाकर वे व्यवसाय में प्रवृत्त हुए और सर्वदा सत्य के ऊपर कायम रहकर अतुल ऐश्वर्य्य के अधिकारी बने। क्या यह एक लाख रुपया मूलधन पाकर ही वे इतने बड़े ऐश्वर्य्यशाली बन गये? नहीं, यदि उनके ऐश्वर्य्यशाली होने का कारण यह रुपया ही मान लिया जाय तो फिर लाख ही क्या, करोड़ों रुपये की सम्पत्ति पाकर कितने ही धनाढ्यों के नवकुमार थोड़े ही दिनों में उसे उड़ा कर कोरे बाबाजी क्यों बन जाते? रामदुलाल सरकार का जो असल मूलधन था उसका नाम **साधुता** या **सच्चरित्रता** था। मान लो, यदि रामदुलाल सरकार सच्चरित्र न होते तो यह एक लाख रुपया पुरस्कार ही क्योंकर पाते?

महता शैशा ने सिंहलद्वीप के एक दरिद्र वैद्य के घर जन्म

लिया था। पिता की मृत्यु होने पर इन्हें पिता की परित्यक्त सम्पत्ति-स्वरूप ३६) रुपये, ४७ बोतलें, २६ शीशियाँ, १२ मिट्टी के बर्तन, तीन जोड़ा धोती, एक कार्पेट, पाँच चटाईयाँ और और दो तकिये मिले। इसके सिवा और कुछ नहीं। शैशा ने अपने बाप की वृत्ति अवलम्बन की, किन्तु उन्होंने जब देखा कि सिर्फ़ उस वृत्ति से अपने विस्तृत परिवार का निर्वाह होना कठिन है तब वे पड़ोसियों के फटे हुए कपड़ों को रफ़ू करके और टेबल तथा कुरसी आदि की मरम्मत करके भी कुछ पैसा कमाने लगे। उनकी बहनें और छोटे भाई पढ़ कर जब पाठशाला से घर आते थे तब वे फूलों की सुन्दर सुन्दर माला बनाते थे। उन मालाओं को बाजार में बेचने से जो पैसा मिलता था वह उन्हें लाकर देते थे। इस प्रकार अत्यन्त कष्ट से जीवन का समय बिताना जब उन्हें असह्य हो गया तब शैशा ने व्यवसाय का अवलम्बन किया। पर एक दिन के लिए भी उन्होंने साधुता के मार्ग से अपना पाँव विचलित न होने दिया। शैशा ने साधुता का अव लम्बन करके व्यवसाय के द्वारा इतना धन पैदा किया जिसकी कुछ तादाद नहीं। जिस साधुता से उन्होंने धन उपार्जन किया उस साधुता का वे अपने अनेक सत्कार्यों के द्वारा परिचय भी दे गये हैं। व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने का मूलमन्त्र साधुता है, यह सैकड़ों उदाहरणों के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है; किन्तु जो लोग व्यवसाय में जघन्य उपाय (ठगपनी) का अवलम्बन करते हैं, जो लोभ के वशीभूत होकर लोगों को धोखा देकर धन

बटोरना चाहते हैं, जो हृदय के सद्भाव को त्याग कर किसी तरह धन कमाने ही को जीवन का सार समझते हैं उनका अधः-पात कुछ ही दिनों में हो जाता है और वे अपनी असाधुता का फल हाथों हाथ चखते हैं। ऐसे लोग प्रचुर धन और प्रतिष्ठित कारबार का आधिपत्य पाकर भी उसकी रक्षा करने में असमर्थ होते हैं। जिन स्वरूपचन्द्र वसु ने अपने उद्योग-बल से महाजनी कारबार में पूरी सफलता प्राप्त की और जो मृत्यु के समय में प्रचुर धन और वृहत् कारबार छोड़ गये, सुना जाता है उनके उत्तराधिकारी और साझेदारों ने असत् उपाय का अवलम्बन करके दस वर्ष में सब कारबार चौपट कर दिया।

असाधुता से सिद्धि प्राप्त न होने के भी अनेक दृष्टान्त हैं। ज्याबेज बैलफ़ोर एक महामान्य, असाधारण बुद्धिमान्, उच्च श्रेणी के व्यवसाय-बुद्धि-सम्पन्न, उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे और विलायत की पार्लमेन्ट महासभा के सभ्य थे। उनकी ईश्वरभक्ति और धर्मानुराग की बात लोगों में विख्यात थी। क्या धनी क्या दरिद्र सभी का उन पर अन्धविश्वास था। जब उन्होंने लिबरेटर बिल्डिंग सुसाइटी (Liberator Building Society) के लिए सर्वसाधारण के सञ्चित धन को अमानत रखना चाहा तब सभी लोग मुक्तहस्त होकर इनको रुपया देने लगे। बैलफ़ोर एक तरफ़ तो लाखों रुपयों से अपना घर भरने लगे और दूसरी तरफ़ लोगों का विश्वास क़ायम रखने के लिए बनावटी हिसाब-पत्र भी प्रकट रूप से रखने लगे। क्रमशः समाज के धनभाण्डार की

अवस्था जितनी ही शोचनीय होने लगी उतना ही ये महाशय महासभा में अपने को साधु प्रमाणित करने के लिए सिर ऊँचा करके बड़ी निष्ठा के साथ धर्मभवन में जाने लगे और महासभा का कार्य तथा अन्यान्य सभा-समितियों का कार्य बड़े आग्रह के साथ करने लगे। किन्तु धर्म धर्म ही है। धूर्तता या असाधुता की बात कब तक छिपी रह सकती है? बैलफ़ोर का कृत्रिम धर्म, कृत्रिम साधुता और चालाकी की सारी बातें सब पर ज़ाहिर हो गईं। जब उन्होंने देखा कि अब छल से काम न चलेगा तब एक दिन वे, जितना रुपया ले सके उतना लेकर, चुपचाप अर्जेन्टाइन रिपब्लिक को भाग गये। किन्तु जिन लोगों का रुपया लेकर भाग गये थे वे कब मानने वाले थे। वे उन्हें वहाँ से पकड़ कर लन्दन ले आये और उन पर नालिश दायर की। बैलफ़ोर का अपराध साबित हुआ। विचाराधीश ने चौदह वर्ष के लिए उन्हें कारागार का दण्ड दिया। बैलफ़ोर का धन, मान, धर्मनिष्ठा, विद्या, बुद्धि और उच्चपद का गौरव आदि सब एक साथ उनकी असाधुता के समुद्र में निमग्न हो गये। बैलफ़ोर की असाधु बुद्धि उन्हें किसी प्रकार विपत्ति से नहीं बचा सकी।

अवसर को हाथ से न जाने देना चाहिए

"अवसर बार बार नहि आवै"

(श्रीसूरदासजी)

"जितने काम हैं सब सुयोग पाकर ही होते हैं। जो लोग सुयोग की अपेक्षा करते हैं उन्हें प्रायः फिर सुयोग नहीं मिलता"।

सभी लोगों के जीवन-काल में कभी कभी सुयोग आता रहता है। किन्तु जो लोग सुयोग का सदुपयोग करना नहीं जानते उन्हें पीछे बड़ा ही खेद होता है। कारण यह कि सुयोग बार बार हाथ नहीं आता, यदि कभी आता भी है तो बहुत थोड़ी देर के लिए। कहावत है कि "चोर के भागने पर बुद्धि बढ़ती है" अर्थात् चोर जब घर का माल असबाब चुरा कर ले जाता है तब लोग सोचने लगते हैं कि यदि इस तरह सावधान होकर रहते, खिड़की के किवाड़ खूब मज़बूत रहते, यदि रुपया घर में न रख कर बैंक में जमा कर आते तो चोर कभी न आता और आता भी तो उसके कुछ हाथ न लगता इत्यादि। इस प्रकार अपनी सावधानी और चोर पकड़ने के कितने ही कौशल और बुद्धि का आविष्कार होने लगता है किन्तु उस समय का सारा आविष्कार वृथा होता है "चौरे गते वा किमु सावधानम् ?" चोर के भाग जाने पर सावधान होने ही से क्या ? जो सुयोग हाथ से चला गया, वह क्या फिर सहज ही हाथ आ सकता है ?

पढ़ने लिखने के दिनों में कितने ही छात्र उन्नति के स्वर्णमय सुयोग की अवहेला करके अपनी किशोर अवस्था को हँसी-खेल, रङ्ग-रहस्य में ही बिता डालते हैं और परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर विफल-मनोरथ होते हैं। अपनी अयोग्यता के कारण जब वे उच्च पद पाने में असमर्थ होते हैं तब उन्हें अपने अध्ययन-कालीन सुयोग का स्मरण हो आता है और हृदय में मर्मान्तिक अनुताप होने लगता है। किन्तु तब अनुताप होने ही से क्या हो सकता है? वह अवसर तो उन्हें फिर मिल नहीं सकता। किसी तरह अल्प वेतन ही पर उन्हें अपने जीवन का समय बिताना पड़ता है। कितने ही लोग ऐसे हैं कि उच्च पद का सुयोग मिलने पर भी वे ज़रा ज़रा सी बातों में भूल कर सुयोग को खो बैठते हैं। पीछे हाथ मलकर रह जाते हैं। कितने ही आदमी ठीक समय पर उपस्थित न होने के कारण और कितने ही लोग बार बार पूछे जाने पर भी समय पर उचित उत्तर न देने के कारण सुयोग को गवाँकर क्षतिग्रस्त होते हैं। कितने ही लोगों के मुँह से यह कहते सुना है कि "उस समय यदि मैं यह बात कह देता, उस समय यदि यह काम कर लेता तो उसी समय मेरा काम सिद्ध हो जाता, अब क्या।" इस पश्चात्ताप का कारण केवल सुयोग को अपने हाथ से गवाँ देना ही है। गोसांईजी ने क्या ही अच्छा कहा है "का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि फिर का पछिताने।" बनज-व्यापार में सुयोग का सदुपयोग ही उन्नति की पहली सीढ़ी है। जो दूकानदार सस्ते दर पर माल ख़रीद

कर मँहगे भाव पर बेचने का सुयोग खो बैठते हैं उनकी उन्नति नहीं होती। कितने ही समझदार महाजन अपनी ख़रीदी हुई चीज़ों को सुयोग पाकर बेच डालते हैं और विलक्षण लाभ उठाते हैं। इस सुयोग की बदौलत कितने ही लोग दरिद्र से लखपती हो जाते हैं। महता शैशा ने एक बार किसी पत्र में पढ़ा कि यूरप में शीघ्र ही महासंग्राम होने वाला है। वे समझ गये कि इसके लिए हड्डियों की बहुत ज़रूरत होगी। उन्होंने पहले पहल विलायत में हड्डी भेजने का सुयोग पाकर उस व्यापार में १८७०००) प्राप्त किया था। इसी से उन्होंने व्यापार का कारबार बढ़ा दिया और व्यवसाय में बराबर सुयोग पर ध्यान रख कर करोड़ों रुपया पैदा कर लिये। कई लाख रुपया उन्होंने लोकोपकारी कामों में दे डाला, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। बीरभूमि ज़िले के कीर्णाहार गाँव का रहने वाला पान का व्यवसायी साधुचरण नामक एक दरिद्र व्यक्ति अपने नवयुवक पुत्र महेश्वर को गृहस्थी सौंप कर आप संसार से चल बसा। महेश्वर का ब्याह हो चुका था। उस दरिद्रावस्था में उसके ऊपर आश्रम का भार क्या पड़ा, मानो दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। किन्तु महेश्वर उच्चाभिलाषी और सुयोगग्राही थे। तीस वर्ष की उम्र में वे पान का व्यवसाय छोड़ कर विशेष लाभजनक रुई के व्यापार में प्रवृत्त हुए। वे रामानन्द राय के गोदाम से रुई लेकर बाज़ार में बेचने लगे और बड़े हिसाब किताब के साथ ख़र्च करके कुछ कुछ संचय भी करने लगे। इस प्रकार व्यवसाय करते

करते एक बार उन्हें अच्छा सुयोग मिल गया। रामानन्द राय ने एक दफ़ा रुई ख़रीदने के लिए उन्हें मुर्शिदाबाद भेजा। वहाँ उन्होंने ८) के भाव से रुई ख़रीदी। जब रुई ख़रीद कर वे आ रहे थे तब रास्ते में उन्होंने सुना कि रुई की दर १६) होगई है। उस सुयोग को उन्होंने हाथ से न जाने दिया। एक साहब के हाथ कुल रुई सोलह रुपये की दर से बेंच डाली। मूलधन का दूना रुपया इनके हाथ आ गया। इन्होंने सत्यनिष्ठ रामदुलाल सरकार की तरह कुल रुपये महाजन को दे दिये। महाजन ने इनकी साधुता से प्रसन्न होकर २०००) इन्हें पुरस्कार दिया। महेश्वर ने इस पूँजी से स्वयं रुई का कारबार प्रारम्भ कर दिया। इस व्यवसाय के द्वारा उन्हें इतना लाभ हुआ कि उन्होंने कई एक ज़मीदारियाँ ख़रीद लीं और वे अच्छे ज़मीदारों में गिने जाने लगे। एक दफ़ा वे तीर्थ-यात्रा के लिए घर से बाहर निकले। वृन्दावन जाने के रास्ते में उन्होंने देखा कि इस तरफ़ रुई के व्यापार में विलक्षण लाभ हो सकता है। उनके पास चार हज़ार रुपये थे। उन्होंने झट इन रुपयों से रुई ख़रीद ली और सुयोग पाकर उसे बेंच डाला। इसमें उन्हें ख़ासा लाभ हुआ। तीर्थ में जाकर उन्होंने उन रुपयों को दान पुराय में ख़र्च कर दिया।

सुयोग का सदुपयोग करने पर नौकरी करते हुए भी लोग अपनी उन्नति के साथ साथ समाज का और देश का किस तरह हित-साधन कर सकते हैं, इसके दृष्टान्तस्वरूप श्रीयुत बाबू हेमचन्द्र मित्र वर्तमान हैं। कलकत्ते के समीपवर्ती काशीपुर-

कृषिशाला के संस्थापक और प्रेसीडेन्ट हेमबाबू रेलीब्रदर्स का पाट ख़रीदने पर नौकर थे। मालिक का काम करके जो समय बचता था उसी में इन्होंने बड़े परिश्रम से कृषिशाला स्थापित की। छुट्टी के अवसर में ये उसकी देख भाल और उचित प्रबन्ध किया करते थे। दिन भर दफ़्तर में काम करने के बाद घर आकर मेहनत का काम करना कौन चाहता है? किन्तु जो लोग सुयोगग्राही हैं वे अवसर को कभी नष्ट होने नहीं देते। हेमबाबू कृषिशाला स्थापन करके कृषि-सम्बन्धी अनेकानेक शिक्षाओं के द्वारा देश का उपकार कर रहे हैं। यदि वे सुयोगग्राही न होते तो क्या इतना बड़ा काम कर सकते?

जी० एस० पराँजपे नामक एक दरिद्र विद्यार्थी, कुलकर्णी का नौकर होकर, जापान गया था। वहाँ जाकर वह रसोई बनाने या कुलकर्णी का इधर उधर का काम करने ही में समय नहीं बिताता था। जब उसे अपने मालिक के काम से छुट्टी मिलती थी तब वह शिल्प, रसायनविद्या और उसके साथ ही साथ साबुन आदि बनाने की तरकीब सीखता था। पैरेल नामक स्थान में जो "डायमंड सोप-वर्क्स" नाम का साबुन का कार-ख़ाना खुला है, वह इसी दरिद्र युवक की सुयोग-ग्राहिता का फल है।

निकलसन साहब ने "जापान में खेती" नाम की एक अच्छी शिक्षाप्रद, लोकोपकारी पुस्तक बनाई है। उन्हें मद्रास की गवर्नमेन्ट ने जापानी रीति से मछलियाँ पकड़ने और उसके व्यवसाय की बातें जानने के लिए जापान भेजा था। जिस काम

के लिए वे भेजे गये थे वह तो उन्होंने किया ही, इस के सिवा कृषि-सम्बन्ध की जापानी-प्रथा संग्रह करने का सुअवसर पाकर उसका सद्व्यवहार करना भी वे नहीं भूले। उन्होंने उस विषय की सब बातें लिख डालीं। जिन लोगों ने अपने पुरुषार्थ से धन सम्पत्ति प्राप्त कर मनुष्यत्व का उच्चासन प्राप्त किया है वे सभी सुयोगग्राही थे। सफलता प्राप्त करने का उपाय सुयोग के सदुपयोग से बढ़कर दूसरा नहीं है।

यह कुछ निश्चय नहीं कि कोई आदमी विविध विद्याओं के पढ़ने ही से व्यवसायकुशल होगा। कितने ही व्यक्ति विद्वान् होकर भी व्यवसाय-बुद्धि से विहीन होने के कारण अत्यन्त कष्टसे जीवन निर्वाह करते हैं। किन्तु जो लोग कुछ भी लिखे पढ़े नहीं हैं, उनमें कितने ही व्यवसाय-बुद्धि और सुयोग-तत्परता के द्वारा ख्यातिपूर्वक सम्पत्ति-लाभ करते हैं और सुख से जीवन बिताते हैं।

एक विद्वान् जिस सुयोग को अकिञ्चित्कर समझ उपेक्षा करता है उसी सुयोग को एक व्यवसाय-कुशल व्यक्ति हाथ से जाने नहीं देता। कितने ही व्यवसाय-चतुर व्यक्ति सुयोग की प्रतीक्षा में घात लगाये बैठे रहते हैं। सुयोग आने पर वे झट उसका सद्व्यवहार कर लाभान्वित होते हैं। इस प्रकार सुयोग पर न चूकने वाले व्यक्ति को ही व्यवसाय-कुशल कह सकते हैं। जो लोग सुयोग का उपयोग करने में असमर्थ हैं उन्हीं लोगों के मुँह से प्रायः यह सुना जाता है कि "समय बड़ा ही ख़राब बीत रहा है, मेरे ऊपर आज कल शनीचर की दृष्टि है; मुझ पर बुरे ग्रह की

दशा बीत रही है"। किन्तु जो लोग दृढ़-प्रतिज्ञ, व्यवसाय-कुशल और सुयोग-ग्राही हैं वे ख़राब समय या बुरे ग्रह-दशा आदि की बात कभी मन में नहीं लाते। वे संकट के समय में भी नहीं घबराते; वे सर्वनाश के अवसर में भी भावी कल्याण का बीज ढूँढ़ निकालते हैं। विपदस्थ होने पर भी उनका दिमाग़ गरम नहीं होता। किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह वे सिर पकड़ कर नहीं बैठे रहते। लिमरिक शहर में लंडीफूट नामक एक व्यक्ति तम्बाकू का व्यवसाय करते थे। उनकी एक छोटी सी दूकान थी। वे साधारण दूकानदार होने पर भी व्यवसाय में कुशल और दूरदर्शी थे। दैवयोग से एक रात को उन की दूकान में आग लगी और दूकान की सब चीज़ें जल गईं। दूसरे दिन प्रातःकाल वे सन्तप्त-हृदय से अधजली चीज़ों की देख-भाल करने लगे। उन्होंने देखा कि कई एक दरिद्र पड़ोसी जली हुई तम्बाकू को सूँघ सूँघ कर प्रसन्न होते हैं और राख की ढेरी में से जितनी जली हुई तम्बाकू पाते हैं ले जाते हैं। यह घटना अत्यन्त सामान्य होने पर भी लंडीफूट की दृष्टि से बाहर न जा सकी। उन्होंने तुरन्त उस दग्ध तम्बाकू को परीक्षा करके देखा। अधिक ताव लगने के कारण बहुत सी तम्बाकू में इतनी सुमधुर सुगन्धि आ गई थी कि वह नास (सुँघनी) के उपयुक्त हो गई थी। इस जाँच से उन्हें एक नवीन व्यवसाय का संकेत मिल गया और उन्होंने ब्लैकयार्ड नामक स्थान में किराये पर एक मकान लेकर उसमें एक तन्दूर (बड़ा चूल्हा) बनवाया। उस तन्दूर में तम्बाकू जला जला कर वे

परीक्षा करने लगे। जो तम्बाकू परीक्षा में नास (सुँघनी) के योग्य अच्छी निकली उसी आदर्श पर उसी तरकीब से वे और भी तम्बाकू जला जला कर सुँघनी बनाने लगे। थोड़े ही दिनों में लिपूटन की चाय की तरह उनकी ब्लैकयार्ड की सुँघनी मशहूर हो गई। उसी नास के व्यापार से लंडीफूट मालामाल हो गये। उनकी ऐसी उन्नति देख दुष्ट लोग लम्बी साँस छोड़ कर बोल उठे "सब लोग अपनी क़िस्मत की कमाई खाते हैं। नहीं तो जो गृहदाह लोगों के सर्वनाश का कारण होता है वही लंडीफूट को श्रीवृद्धि का पथ-प्रदर्शक क्यों हुआ"। जो इशारा पूर्वसंग्रहकारी दरिद्र पड़ोसियों के लिए कुछ भी लाभप्रद न था, उस इङ्गित को पाकर दरिद्र लंडीफूट ने सर्वनाश के बीच से भविष्य-कल्याण क रास्ता निकाल लिया। जो लोग इस तरह सावधान हो कर सुयोग का सद्व्यवहार करते हैं उनकी उन्नति बहुत शीघ्र होती है।

दूरदर्शी राबर्टहल साहब का कथन है—जो लोग एकदम मुँह छिपाये रहते हैं, अपने प्राप्य के लिए प्रार्थना करने में कुण्ठित होते हैं, जो सभा समाज में सिर नीचा करके बैठते हैं, तथा लोगों के सामने लज्जा के मारे जिन के मुँह से बात नहीं निकलती मानों उनसे बहुत बड़ा अपराध हो गया है जिससे वे सर्वदा भयभीत बने रहते हैं, वे मनुष्य-रूपधारी विचित्र जीव हैं,। जो लोग सुयोग पाकर भी काम करने में समर्थ नहीं होते और जो उचित अवसर जान कर भी अपने हृदय का भाव प्रकट नहीं कर सकते, वे मनुष्य-रूपधारी एक अद्भुत जीव हैं। वे और युग के लिए निश्छल, साधु, शान्त और प्रशंसित कहे जा सकते हैं किन्तु इस बीसवीं शताब्दी में ऐसे लोगों का निर्वाह होना बड़ाही कठिन है।

छठा अध्याय

आदर्श का अभाव नहीं है

संसार में अपने उद्योग-बल से जो लोग उन्नत और महान् हुए हैं उनमें कोई ऐसा नहीं जो बिना आदर्श का रहा हो। सभी एक न एक आदर्श के अनुसार ही चलते थे। कविश्रेष्ठ माइकेल मधुसूदन दत्त, नव्वाब अबदुललतीफ़ और मान्यवर भूदेव मुखोपाध्याय तीनों सहपाठी थे। किसी समय तीनों आदमी एक साथ बैठ कर भविष्य जीवन के सम्बन्ध में बात चीत कर रहे थे। प्रत्येक ने अपने अपने जीवन का उद्देश प्रकाशित किया। मधुसूदन दत्त ने कहा—"मेरी इच्छा बैरन के तुल्य कवि होने की है"। नव्वाब साहब ने कहा—"मैं चाहता हूँ कि मुझे ख़ूब ऊँचा ओहदा मिले"। भूदेव बाबू ने कहा—"देश के कल्याण-साधन में मेरा जीवन व्यतीत हो, यही मेरी अभिलाषा है"। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तीनों ने अपने अपने आदर्श के आधार पर ही अपना जीवन बिताया।

जो लोग अपनी उन्नति करते हैं वे मानो दूसरों की उन्नति का रास्ता खोलते हैं। कारण यह है कि एक को उन्नत दशा में देख अन्यान्य लोग भी उन्नत होने की चेष्टा करते हैं। एक उन्नतिशील व्यक्ति दूसरों के उन्नति-पथ का प्रदर्शक होता है। अतएव जो

लोग अपने उद्योग, परिश्रम, साधुता, सुयोग-ग्राहिता, मित-व्ययिता और सञ्चयशीलता आदि गुणों के द्वारा सामान्य अवस्था से क्रमशः उन्नति करके सुप्रसिद्ध और श्रीमान् हुए हैं वे लोग वास्तव में ऋद्धि-पथ के पथिकों के लिए लक्ष्यस्थल हैं। इसी कारण ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामदुलाल सरकार, कृष्णदास पाल, कृष्णपान्ती, ताता, गारफ़ील्ड, बेञ्जमिन् फ्रैङ्कलिन्, प्यालिसी, कार्नेगी, राकफेलर और टामस लिप्टन आदि अनेक आदर्शस्थानीय हुए हैं। जो ईश्वरचन्द्र विद्या में विद्यासागर, दया में दया-सागर, धन में अभावरहित, सुयश में लोक-विख्यात, गौरव में सबके शीर्षस्थानीय और परोपकार में अद्वितीय होकर पूज्य हुए थे; जो प्रतिभा के अवतार माने जाते थे और जो उन्नति को चरमसीमा तक पहुँच कर सबके आदर्शस्थल हो गये हैं; वे पहले किस अवस्था में थे? कैसे कैसे कष्टों से उनके जीवन का प्रथम समय व्यतीत हुआ था, इस बात को कोई सोच कर नहीं देखता। जब वे आठ वर्ष के थे तब उनके दरिद्र पिता बीरसिंह गाँव से पैदल ही उन्हें अपने मालिक के यहाँ कलकत्ते ले आये थे। आठ वर्ष के ईश्वरचन्द्र स्वयं बाज़ार से सौदा ख़रीद लाते थे और अपने हाथ से रसोई बनाते थे। रसोई बनाने के समय एक हाथ से वे चूल्हे में लकड़ी लगा देते थे और दूसरे हाथ में पुस्तक ले कर अपना पाठ याद करते थे। इसके बाद रसोई परोस कर सबको खिला पिला कर पाठशाला जाते थे। पाठशाला से घर आकर भोजन आदि करने के बाद प्रायः सारी रात जाग कर

एकाग्र मन से अध्ययन करते थे। उनके इस परिश्रम, इस निष्ठा और इस स्वावलम्बन ने ही उन्हें सरस्वती और लक्ष्मी दोनों का कृपापात्र बना दिया। उन्होंने कौन कौन से पुरुषार्थ के काम किये, यहाँ उनको हम लिखना नहीं चाहते। कर्मवीर पुरुषों के सत्कर्मों को कोई कहाँ तक गिना सकता है। किन्तु वे कैसे कर्मवीर हुए-कर्मवीर होने के पहले उनका शील स्वभाव कैसा था, हम इस पर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। इस समय इस महापुरुष के बाल्यकाल की दुरवस्था और दुःख की कहानी सुन कर क्या कोई उन पर अश्रद्धा थोड़े ही प्रकट करेगा? यदि धनवान् के पुत्र धनवान् हुए तो इसमें उनके गौरव की कोई बात नहीं। बल्कि धनवान् के पुत्र का निर्धन होना ही अप्रतिष्ठा की बात है। किन्तु यदि दरिद्र अपने उद्योग और सच्चरित्रता के बल से धनी हों तो उनका जीवन अवश्य गौरवमय और प्रशंसनीय है। असंख्य धन के अधिकारी कार्नेगी अपनी जीवनी में अपनी हीन अवस्था की बात लिखने में ज़रा भी सङ्कुचित नहीं हुए। ग्लैडस्टन लिवरपूल के एक व्यवसायी के पुत्र थे। ब्राइट कार्पेट का व्यापार करते थे। निकलस पीसीन ग्राम्य-पाठशाला के गुरु थे; चैनट्री दाल-चावल की दूकान खोल कर परचूनी का पेशा करते और विलियम ब्लैक घोड़े का साज़ बना कर बेचते थे।

रानाघाट के पाल-चौधरी वंश की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले धन-कुबेर महाप्राण कृष्णपान्ती किसी समय चावल की गठरी सिर

पर रख कर बेचने के लिए ले जाते थे। इसके बाद सामान्य श्रमजीवी की तरह बैल पर माल लाद कर बाज़ार में बेचते थे। सम्पत्तिशाली होने पर वे मुक्तकण्ठ से इन बातों को स्वीकार करने में अपनी अप्रतिष्ठा नहीं समझते थे। वे अपनी बीती हुई दुरवस्था का हाल प्रकट करना लज्जा का विषय नहीं समझते थे। शिक्षा पाने की उनके मन में इतनी उत्कट वासना थी कि जब उन्होंने देखा कि दरिद्रता के कारण पाठशाला में पढ़ना असम्भव है तब वे विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा से प्रसन्न करके उनसे कुछ कुछ शास्त्रीय विषय की शिक्षा प्राप्त करने लगे। वे स्वयं लोगों से कहते थे कि—मैं इस गाँव के विद्वान् ब्राह्मणों के घर जाकर उनकी सेवा करता था और उनसे ज्ञान की बातें सीखता था।

बहुत लोगों की यह धारणा थी और कुछ कुछ अब भी है कि "परिश्रम करना दरिद्र, मज़दूर और बालकों ही के पक्ष में श्रेष्ठ है। यदि दरिद्र परिश्रम न करें तो उनका जीवन-निर्वाह कठिन हो जायगा और यदि बालक श्रम न करेंगे तो उन्हें विद्या न आवेगी; किन्तु जो लोग धनी हैं उनके लिए परिश्रम करना लज्जा का विषय है। क्योंकि न वे बालक हैं और न दरिद्र, फिर वे परिश्रम क्यों करें? जिन्हें नौकर रखने की शक्ति नहीं है वही अपने हाथों सब काम करते हैं। जिसके पास धन है वह अपने हाथ से कोई काम क्यों करे? धनी हो कर भी जब काम करना पड़ा तब वह धनी काहे का"? मतलब यह कि जो धनी हैं उन्हें

काष्ठ-पाषाणवत् दिन भर गद्दे पर पड़ा रहना चाहिए। इस तरह जीवन बिताने ही में सुख है और मर्यादा की रक्षा है। इस प्रकार की धारणा करनेवालों और इस पर चलनेवालों का भारत में अभाव नहीं है। कितने ही धनवानों के लड़के जो इस मत के अनुयायी हैं, स्वयं हाथ पैर हिलाना भी मानहानि का विषय समझते हैं। वे जब चारपाई से उठेंगे तब नौकर के कन्धों पर हाथ का सहारा देकर ही उठेंगे, मानो पुराने मरीज़ हैं। सोने के वक्त जब तक नौकर कपड़ा न उढ़ा देगा आप अपने हाथ से न ओढ़ेंगे। इतना परिश्रम करना भी वे मर्यादा से बाहर की बात समझते हैं। ऐसा वे क्यों समझते हैं! इसलिए कि कहीं उनकी अमीरी में बट्टा न लग जाय। इन अमीरों की देखादेखी कितने ही मध्यम श्रेणी के लोग बाज़ार से दो अनार ख़रीद कर अपने हाथ से घर ले आने में लजाते हैं। हम नहीं कह सकते कि भारतवासी इस भ्रम-जाल में कब तक पड़े रहेंगे? पूरब में जापानी, और पश्चिम में अफ़ग़ान-कुल के भूषण अमीर अबदुर्रहमान ख़ाँ का उदाहरण क्या इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए यथेष्ट नहीं है? प्रायः सभी पर प्रकट है कि जापानी लोग कैसे परिश्रमशील और उद्यमी हैं अतएव यहाँ जापान के इतिहास का उल्लेख करना बाहुल्य मात्र है। अमीर साहब अपनी नीति-निपुणता, श्रमशीलता, और वीरता आदि गुणों से पाश्चात्य देश-वासियों को भी चकित कर गये हैं। उन्होंने अपने बुढ़ापे में भी जिस परिश्रम, कर्तव्य-परायणता, और सुशासन से प्रजा

की भलाई का काम किया था वह चिरकाल तक इतिहास में चमकता रहेगा। वे नित्य २४ घण्टों में सिर्फ़ पाँच छः घण्टे अपने दैहिक कामों में लगाते थे। शेष समय सामाजिक. धार्मिक और राजनैतिक कार्य्य तथा शास्त्रावलोकन में व्यतीत करते थे। उन्होंने अपने असाधारण उद्योग और नैतिक बल से इक्कीस वर्ष के भीतर अज्ञानरूपी अन्धकार से ढके हुए अफ़ग़ानिस्तान को प्रकाशमान कर दिया। इनके कार्य-कौशल से अफ़ग़ानिस्तान की शोभा पलट गई। जगद्विख्यात पर्यटन-कर्ता डाक्टर लिविंग-स्टन द्रव्य के अभाव से उच्चशिक्षा पाने की सुविधा न देख कर प्रति दिन बारह घण्टे के परिश्रम से जो पैसा कमाते थे उसमें से कुछ कुछ बचाते जाते थे उसी के द्वारा उनका अभीष्ट सिद्ध हुआ।

सर टाइटस शल्ट एक दरिद्र किसान के पुत्र थे। इन्होंने बड़े कष्ट से बाल्यावस्था बिताई। जब वे युवा हुए तब शिल्प और वाणिज्य में प्रवृत्त हुए। इन्होंने अपने सद्गुणों और व्यवसाय-कौशल से करोड़ों रुपये पैदा किये। इनका बृहत् शिल्प-भवन इस समय हज़ारों मनुष्यों को भोजन दे रहा है। ये कर्म-चारियों के रहने के लिए एक बहुत बड़ा स्वास्थ्यकर मकान, विद्यालय, ख़ैराती दवाख़ाना, धर्म-भवन और कितने ही कार्या-लय और उद्यान आदि स्थापित कर गये हैं। उन्होंने लोगों के उपकारार्थ बहुत सा धन दान कर दिया था। उनमें सब गुणों से बढ़ कर विशेष गुण यह था कि धनकुबेर होने पर भी उनमें आलसी अमीरों की सी आराम-प्रियता, अध्ययनविमुखता और

अहङ्कार आदि छू तक न गया था। उन्होंने अपने कोमल व्यवहार से क्या छोटे क्या बड़े, सभी को अपने अधीन कर लिया था। वे अपने इन गुणों के कारण कई एक राजकीय उपाधियों से विभूषित हुए थे।

जो होरेस ग्रीली जगद्विख्यात हुए थे उन्हें जानते हो वे कौन थे? वे निउ हैम्पशायर के पहाड़ी प्रदेश में एक अत्यन्त दरिद्र किसान के घर उत्पन्न हुए थे। मैं यहाँ उनकी उन्नत अवस्था का उल्लेख न कर उनकी प्रथम अवस्था का कुछ वृत्तान्त लिखना ही आवश्यक समझता हूँ। वे बाल्यकाल में दिन भर खेत का काम करके यथाशक्ति पिता की सहायता करते और रात में अपनी माँ के पास बैठ कर पढ़ते थे। वे पढ़ने के लिए अड़ोस पड़ोस के लोगों से किताब मँगनी माँग लाते थे। दिया जलाने तक के लिए तेल न मिलता था, इसलिए वे जङ्गल से लकड़ियाँ ले आते थे और उन्हीं को जला कर रोज़ रात को एकाग्र मन से पुस्तक पढ़ते थे। होरेस जब दस वर्ष के हुए तब उनके बाप का घर-द्वार, खेती-बारी आदि जो कुछ था सब नीलाम हो गया। गिरफ़्तार होने के डर से उनके बाप दूसरी जगह भाग गये। होरेस के दुःख का अन्त न रहा तो भी उन्होंने पढ़ना नहीं छोड़ा। वे लकड़ियाँ बेंच कर जो पैसा लाते थे उसी में से कुछ कुछ बचाते थे और उससे शेक्सपीयर तथा हेमेन्स के काव्यग्रन्थ ख़रीद कर पढ़ते थे। इस प्रकार कष्ट उठा कर उन्होंने विद्या पढ़ी और अपने माँ-बाप तथा भाई-बहनों का कष्ट न देख किशोर

अवस्था में ही छापेखाने की नौकरी कर ली। वे सब प्रकार के भोग विलास की वासना को त्याग कर दिन रात अपनी उन्नति की चेष्टा में लगे रहते थे। छापेखाने में नौकरी करने के समय उनको दरिद्र वेश में देखकर छापेखाने के कितने ही अशिक्षित नवयुवक हँसते थे और उनको चिढ़ाने के लिए अनेक चेष्टा करते थे। किन्तु वे ऐसे मनस्वी थे कि उन लोगों के उपहास पर कुछ ध्यान न देकर स्थिरभाव से अपना काम करते थे; और वे लोग जब इन्हें बहुत दुतकारते थे तब ये उसके उत्तर में बड़ी कोमलता से इतना ही कहते थे कि " नई पोशाक के लिए क़र्ज़दार होने की अपेक्षा मेरे लिए पुराना कपड़ा पहनना अच्छा है ।" होरेस इस तरह अनेक क्लेश सहकर अपने माँ-बाप के पास ख़र्च के लिए रुपया भेजते थे। इनकी जीवनी से हम लोगों को यही शिक्षा मिलती है कि अनिवार्य इच्छा और असाधारण उद्योग से एक छोटा सा बालक भी ऋद्धिशाली हो सकता है।

जिन महाप्राण लिप्टन की चाय संसार में सर्वत्र व्याप्त हो रही है, जिन्होंने अनेकानेक कल-कारख़ाने स्थापित कर असंख्य नर-नारियों के भोजन-वस्त्र का अवलम्बन खड़ा कर दिया है, जो लोगों के उपकारार्थ बड़े उदार भाव से धन देकर राजा और राजमन्त्रियों के प्रीतिपात्र बने थे तथा उच्च उपाधि से भूषित हुए थे, वे सर टामस लिप्टन ग्लासगो नगर के एक दरिद्र के बेटे थे। ग्लासगो के एक दूकानदार के यहाँ वे पत्र-वाहक का काम करते थे और इसी के द्वारा अपने दरिद्र माँ-बाप का भरण

पोषण करते थे। वे अपने माता-पिता की दरिद्रता दूर करने के लिए अपनी जान तक दे देने को उद्यत थे। यह उच्चाभिलाषी पन्द्रह वर्ष का बालक मार्किन जाकर किसी कारख़ाने में काम करने लगा। कारख़ाने का काम करते करते और थोड़ी बहुत चीज़ों को ख़रीदने बेचने से वह व्यवसाय की सभी बातों में निपुण हो गया। व्यापार-सम्बन्धी शिक्षा अच्छी तरह प्राप्त करके लिपटन साहब वाणिज्य में प्रवृत्त हुए और उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की। लिप्टन के उपदेश यही हैं—

(१) परिश्रम से कभी मुँह न मोड़ो।

(२) व्यवसाय में लोभवश साधुपथ का त्याग कर कभी असाधुता का काम न करो।

(३) काम छोटा हो या बड़ा, ख़ूब सोच समझ कर करो।

(४) जिस बात को तुमने अच्छी तरह बुद्धि और विवेचना के द्वारा सोच लिया है उसे तुम बेख़ौफ़ लोगों में प्रकट कर सकते हो। बिना सोचे किसी बात का विज्ञापन मत दो।

(५) मातहत कर्मचारियों से इस कौशल से काम लो जिसमें वे तुम्हारे काम को अपना समझ कर करें; तुम्हारे कोमल व्यवहार से तुम पर प्रेम रक्खें और तुम्हारी निष्ठा देख कर कर्तव्यनिष्ठ होना सीखें।

(६) लोगों का चरित्र परखने की प्रवीणता प्राप्त करो। उस प्रवीणता से तुम सच्चे सुयोग्य कर्मचारी को नियुक्त करने में समर्थ हो सकोगे।

(७) निष्प्रयोजन किसी काम में प्रवृत्त न होओ। इसमें कुछ लाभ न होगा ! जो कोई उद्देश्य स्थिर करके व्यवसाय में प्रवृत्त होता है और बराबर उसमें लगा रह कर साहस और अध्यव-साय के साथ धीरे धीरे अग्रसर होता है उसका उद्देश्य अवश्य सिद्ध होता है।

व्यक्ति विशेष की तरह जातीय आदर्श को भी सामने रख कर लोग अपने देश की उन्नति कर सकते हैं। जापानियों ने जो देखते ही देखते अपनी इतनी बड़ी उन्नति कर ली, इसका कारण क्या है? वहाँ हीरे सोने की खान तो नहीं है? वहाँ जवाहिरात भी तो पेड़ में नहीं फलते। रत्न-प्रसविनी भारत-भूमि के शतांश के बराबर भी तो जापान में धन नहीं, जापान की भूमि ऐसी उपजाऊ भी तो नहीं। तब जापान इतना उन्नत कैसे हुआ? कारण यह कि जापनी लोग सिर पर हाथ रख कर सोचना नहीं जानते, केवल उद्योग करना जानते हैं। भाग्य के भरोसे न बैठ कर वे पुरुषार्थ करते हैं और अपनी उन्नति का केवल स्वप्नमात्र न देख उसके साधन में सर्वदा तत्पर रहते हैं। यदि कोई कहे कि जापान में एक भी मनुष्य अकर्मण्य किंवा विलास-प्रिय नहीं है तो यह अत्युक्ति न होगी। जापानी लोग परिश्रमी, कार्यकुशल, मितव्ययी और संचयशील हैं। जापान ने एशिया का आदर्श न ग्रहण कर सुदूरवर्ती अमरीका और इँगलैंड जाकर अपने उप-युक्त आदर्शों को ढूँढ़ लिया और उन आदर्शों का अनुकरण करते करते स्वयं आदर्श बन गया। यह उसी साहस और उद्योग

का फल है कि जापान इन दिनों प्रधान शक्तियों में गिना जा रहा है। जिस जापान में दस वर्ष के भीतर एक कपड़े की रफ़्नी दो लाख से डेढ़ करोड़ हो गई है, इसी से वहाँ की वाणिज्य-वृद्धि का अनुमान किया जा सकता है। यदि भारत में कोई जाति वाणिज्य-कुशल है तो वह है मारवाड़ी। मारवाड़ियों का वाणिज्य-विषयक श्रम, कष्टसहिष्णुता, मितव्ययिता आदि सभी प्रशंसनीय हैं। ये लोग बालुकामय मारवाड़ देश के रहने वाले हैं। यद्यपि मारवाड़ देश मरुभूमि होने के कारण मनुष्यों के रहने योग्य नहीं है, क्योंकि वहाँ के निवासियों को अन्न-जल का कष्ट और ग्रीष्म का प्रचण्ड उत्ताप विशेष रूप से सहना पड़ता है तथापि "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" के कारण वह कष्टमय देश अब भी जनशून्य नहीं है। अब भी वह देश जन-सङ्कीर्ण हो रहा है। मारवाड़ी लोग इस दुःसह देश में जन्म ग्रहण कर वहाँ के जल वायु से परिवर्द्धित होकर अत्यन्त क्लेश-सहिष्णु और परिश्रमी होते हैं। आजकल उन लोगों ने अपनी जीविका का प्रशस्त क्षेत्र और ऋद्धि-प्राप्ति का मुख्य साधन वाणिज्य-व्यवसाय देश-विदेश में सर्वत्र ही फैला दिया है। जो मारवाड़ी आज कलकत्ते के करोड़पती महाजनों में गिने जाते हैं उनमें कितने ही जन्मस्थान से सिर्फ़ एक लोटा और एक डोरी लेकर बङ्गदेश में आये थे। जो प्रारम्भ में कपड़े की गठरी या बर्तन आदि सिर पर रखकर गली गली में बेचते फिरते थे, जिनके पास एक कौड़ी भी पूँजी न थी, वही फेरी वाले धीरे

धीरे श्रम, साहस और सञ्चयशीलता आदि गुणों से महाजन बन बैठे और करोड़ों का कारबार करने लगे। इस व्यापार कौशल के साथ यदि उनमें शिक्षा, ज्ञान और सहृदयता आदि गुण भी होते तो वे अवश्य भारत के अन्यान्य प्रदेशवासियों के आदर्श बन जाते। किन्तु भारत में एक जाति और ऋद्धिशाली है जो हम लोगों के लिए अवश्य अनुकरणीय है। यह भारत की प्रसिद्ध जाति पारसी है। पारसी लोग परिश्रम, मितव्यय और संचय में मारवाड़ी हैं, उद्योग और साहस में वे जापानी हैं, तीक्ष्णबुद्धि और शिक्षा में बङ्गाली हैं, कर्तव्यनिष्ठा में युरोपियन और वाणिज्य में वे मार्किन के बराबर हैं। ये लोग मुहर्रिरी आदि सामान्य नौकरी करके जातीय शक्ति का नाश करना नहीं चाहते। वाणिज्य ही इन लोगों के जीवन का प्रधान लक्ष्य है। भारतीय वाणिज्य-समुद्र के मानों ये लोग कर्णधार हैं। इसी पारसी-कुल में सर जमशेदजी जीजीभाई, सर दिनशा मानिकजी, सर मङ्गलदास नाथू भाई और वाणिज्यवीर तथा दानशील नौशेरवानजी ताता का जन्म हुआ था। भारत के ५२ लाख भिखारियों में पारसी जाति का कोई भी व्यक्ति कहीं पाया जाता है? शिक्षा के साथ मिल कर व्यवसायबुद्धि और श्रम-शीलता के साथ मिल कर उच्चाभिलाष ने पारसी जाति को धन-सम्पन्न बना दिया है। कोई जाति हो, कोई समाज हो, या कोई व्यक्ति हो जो अध्यवसाय के साथ व्यवसाय करेगा वह ऋद्धि-साधन में सफलता प्राप्त करेहीगा। यदि मार्किन, जापान, इंग-

लैंड और जर्मनी आदि उन्नतिशील देश अतिदूरस्थ होने के कारण अनुकरणीय न समझे जायँ, उन देशवासियों को कोई आदर्श न माने, तो भारत के ही अन्न-जल-वायु से परिवर्द्धित ऋद्धिशाली पारसी जाति तो भारतवासियों के घर ही के पास विद्यमान है। आँखों के सामने ऐसा सुन्दर आदर्श रहते आँख मूँद कर अन्धों का स्वाँग करना शोभा नहीं देता। तुम ईश्वर और धनेश्वर दोनों की सेवा एक ही समय में नहीं कर सकते। "या तो धन की पूजा करो या भगवान् का भजन करो", इस बात की दुहाई देकर कितने ही भजनानन्दी लोग ऋद्धिपथ का अवलम्बन अच्छा नहीं समझते। वे लोग ऋद्धि-प्राप्ति के प्रयत्न को मनुष्यत्व और देवत्व की प्राप्ति के रास्ते में विघ्न मानते हैं। ऋद्धि प्राप्ति और धन की पूजा एक बात नहीं है। दोनों में बड़ा विभेद है। ऋद्धि किसे कहते हैं, इसका वर्णन पहले ही हो चुका है। ईश्वर-भक्ति, चित्तशुद्धि और सार्वजनिक प्रियता आदि जितने सद्गुण हैं सब इसी ऋद्धि के अन्तर्गत हैं। यह भी कहा जा चुका है। लक्ष्मी के कृपापात्र होने पर भगवद्भक्ति अनायास ही प्राप्त होती है। जो लक्ष्मी की सेवा करना चाहेगा वही भगवद्भक्ति का भी अधिकारी होगा। जिस पर लक्ष्मी का कोप रहेगा उस पर भगवान् क्योंकर प्रसन्न होंगे? अतएव जो भगवद्भक्ति के अभिलाषी हैं उन्हें भी प्रथम लक्ष्मी का ही आश्रय करना चाहिए। लोगों का भी कथन है कि—"जहाँ लक्ष्मी वहाँ नारायण"। ऋद्धि और लक्ष्मी में कुछ भी अन्तर नहीं है। जो ऋद्धि-

मान् हैं वही लक्ष्मीवान् हैं। एक ही समय में कोई भोग और योग दोनों करना चाहे तो यह नहीं हो सकता। सभी काम अपने अपने निर्दिष्ट समय पर ही होते हैं, किन्तु जो लोग कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं उन्हें न अत्यन्त भोगी होना चाहिए और न अत्यन्त कर्मत्यागी ही। इन दोनों के मध्यवर्ती मार्ग का आश्रय करना उत्तम है। जैसे एकदम भोग में लिप्त होना ठीक नहीं, वैसे ही भजनानन्दी होकर भोजन के लिए घर घर भीख माँगना भी ठीक नहीं है। जो लोग दूरदर्शी हैं वे भोग और भजन दोनों पर समान दृष्टि रखते हैं। किन्तु जिनकी दोनों आँखें किसी एक ही विषय पर उलझ पड़ती हैं, जिनका मन किसी एक ही विषय में लग जाता है, जो सारी शक्ति को अपने किसी एक इष्ट विषय की प्राप्ति में ही ख़र्च कर डालते हैं वे इसकी ख़बर तक नहीं रखते कि संसार में कुछ और भी देखने, सुनने, कहने, सोचने, समझने और करने का विषय है। उनक यह निष्ठा, यह एकाग्रता, यह साधना उन्हें इष्ट वस्तु की प्राप्ति में समर्थ करती है सही, किन्तु वह सुख के मार्ग में काँटा ज़रूरी बनती है। जो लोग किसी एक विषय के वशीभूत हो जाते हैं, वे सोते-जागते उसी को सोचते हैं; उनका ध्यान अनुक्षण उसी पर रहता है। उन्हें भूख, प्यास, नींद, कुछ भी नहीं; है केवल हाथ में एक मात्र सितार; वे सितार से बढ़ कर कुछ नहीं समझते। सितार ही उनका सर्वस्व है। जो कवि हैं वे दिन रात काव्य में ही डूबे रहते हैं, जो वैज्ञानिक हैं वे तत्त्व की

जिज्ञासा और नई चीज़ों की खोज में ही अपने समस्त जीवन को बिता डालते हैं। जो कृपण हैं वे सर्वदा एकाग्र मन से धन की पूजा में ही लगे रहते हैं। जो विलास-प्रिय हैं अर्थात् विषयी हैं वे दिन रात भोग-विलास में ही मग्न रहते हैं। इन लोगों को और विषयों पर ध्यान देने के लिए अवसर कहाँ? किन्तु जो लोग मध्यवर्ती पथ के पथिक हैं वे सभी ओर समान दृष्टि रखते हैं,—भुक्ति और मुक्ति दोनों का अधिकार प्राप्त करते हैं। वे भुक्ति के लिए मुक्ति का त्याग नहीं करते और न मुक्ति के लिए भुक्ति पर छुरी फेरते हैं। बिना संयमी हुए कोई भुक्ति-मुक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। संयम (जितेन्द्रियता) भुक्ति-मुक्ति के पारस्परिक असमञ्जस को मिटा कर संयमी को समञ्जस के आसन पर बैठा कर भुक्ति-मुक्ति दोनों का अधिकारी बना देता है। इसी संयम गुण से कितने ही लोग विद्वान् होकर भी व्यवसायी होते हैं; वणिक् होकर भी दानशील होते हैं; धनवान् होकर भी कार्यक्षम होते हैं और कवि होकर भी व्यवहार-कुशल होते हैं। सुप्रसिद्ध पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति अनेक शास्त्रों के विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत-कालिज में छः वर्ष पढ़ कर वाचस्पति की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद वे उसी कालिज में व्याकरण के प्रधान अध्यापक नियुक्त हुए। उन्होंने संस्कृत के बहुत से प्राचीन ग्रन्थ छपवाये। शब्दकल्पद्रुम के आधार पर उन्होंने एक बृहत् 'वाचस्पत्य अभिधान' (कोष) निर्माण कर के अपनी कीर्ति स्थापित की। इस ग्रन्थ के निर्माण करने में

बारह वर्ष लगे थे और अस्सी हज़ार रुपया खर्च हुआ था। ये असाधारण विद्वान् तारानाथ जो वाणिज्य में लिप्त थे, इसे क्या सर्वसाधारण लोग विश्वास करेंगे? किन्तु वे व्यवसाय ज़रूर करते थे और उसके द्वारा जो लाभ होता था उससे अपने परिवार और आश्रित विद्यार्थियों का भरण-पोषण करते थे। उनके वाणिज्य में कपड़े और चावल आदि की बिक्री भी जारी थी। इस व्यवसाय ने तारानाथ तर्क-वाचस्पति की साहित्यसेवा में या उनके पाण्डित्य में अथवा उनके महत्व में विघ्न पहुँचाया था, ऐसा कहने का साहस किसे होगा? विद्वान् हो चाहे मूर्ख, व्यवसाय करने का अधिकार सभी को है। यदि वाणिज्य निन्द्य कर्म होता तो तारानाथ तर्क-वाचस्पति कभी इस वृत्ति का अवलम्ब न करते।

एक बी० ए० पास विद्वान् की दुकानदारी

चौबीस परगना के अन्तर्गत खाँटुरा गाँव में १२६२ साल में स्वर्गीय भूतनाथ पाल का जन्म हुआ था। उनके पिता मङ्गल-चन्द्र पाल साधारण श्रेणी के गृहस्थ थे। उन्होंने एक मामूली मोदी की दूकान भी खोल रक्खी थी। किन्तु भूतनाथ के मामा सृष्टिधर कोंच अतुल ऐश्वर्यशाली थे। उनके कई दूकानें थीं और

कारबार भी खूब फैला हुआ था। जब भूतनाथ की उम्र ग्यारह बारह वर्ष की हुई तब उनके पिता का देहान्त होगया। भूतनाथ को पितृहीन होते देख उनके मामा उन्हें और उनकी माँ आदि सबको अपने घर ले आये। सृष्टिधर कौंच ने अपने भानजे के पढ़ने का प्रबन्ध कर दिया। ये कौंच महाशय बड़े दयालु और परोपकारी थे। जो दरिद्र बालक द्रव्य के अभाव से पढ़ नहीं सकते थे उन्हें ये अपने पास से खर्च देकर पढ़ने का प्रबन्ध कर देते थे। वे व्यवसाय के द्वारा केवल धन उपार्जन करना ही नहीं जानते थे किन्तु उसका सद्व्यय करना भी जानते थे। भूतनाथ बाबू मामा के आश्रय में रह कर बी० ए० तक पढ़ गये। बी० ए० पास होने के बाद मामा का गलग्रह हो कर रहना उचित न समझ, उनसे गुप्त रूप से, उद्योग करके वे कटक के रौवेंसा कालिज के एक अध्यापक नियुक्त हुए। वे डिपुटी मैजिस्ट्रेटी की परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए थे। किन्तु उनके मामा ने जब उनकी नौकरी की बात सुनी तब उन्होंने इसमें अपनी असम्मति प्रकट कर के कहा—"इस देश में अब पहले की तरह देशी लोगों के साथ व्यवसाय का सम्बन्ध नहीं रहा, अब व्यवसाय-सम्बन्धी सभी कारबार प्रायः अँगरेज़ों के ही साथ करना होता है। हमने जो तुम्हें बी० ए० तक पढ़ाया है सो व्यवसाय करने ही के लिए, नौकरी करने के लिए नहीं। पढ़े-लिखे लोगों का नौकरी करना हम अच्छा नहीं समझते। इस देश के लोग जो अँगरेज़ी पढ़कर वकील, बारिस्टर, जज,

मैजिस्ट्रेट और डाक्टर होते हैं; यह छोटी नौकरी की अपेक्षा अच्छा है। किन्तु सच पूछो तो हम इन ओहदों को भी हृदय से पसन्द नहीं करते। हमारी यही एकान्त इच्छा है कि अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोग भी व्यवसायी हों। हम तुम्हें दूकानदार बनाना चाहते हैं।" भूतनाथ बाबू ने मामा की बात मान कर कोई काम माँगा। उनके मामा ने पहले उन्हें एक सन के प्रवीण व्यवसायी के पास काम सीखने के लिए भेजा और "चेल एंड पाल" नाम से एक सन का कारख़ाना खोल दिया।

१२८६ साल में भूतनाथ बाबू एक और व्यक्ति को साथ ले कर्मक्षेत्र में प्रविष्ट हुए। उनके साथी का नाम था रासविहारी चेल। ये चेल भी कोंच महाशय के भानजे थे और उन्हीं के खर्च से बी० ए० तक अँगरेज़ी पढ़कर परीक्षोत्तीर्ण हुए थे। चेल और पाल दोनों की एक ही विद्या थी, एक ही व्यवसाय था और लाभांश भी बराबर ही था। तथापि भूतनाथ बाबू का श्रम और साहस प्रशंसनीय था। जो विद्यालय में सब छात्रों में प्रथम गिने जाते थे, जिन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से प्रत्येक बार परीक्षा में उत्तीर्ण होने के साथ साथ वृत्ति पाई थी, उनका स्वभाव रासविहारी बाबू के स्वभाव से कैसे मिलेगा? भूतनाथ बाबू व्यवसाय के सभी कामों की अच्छी तरह देख भाल करने लगे। वे रासविहारी बाबू को आफ़िस की शीतल छाया और पंखे की हवा में बैठाये रख कर आप कड़ी धूप में इधर उधर घूम फिर कर काम करते थे। सबेरे उठ कर सन

ख़रीदते, दस बजे भोजन कर आफ़िस जाते और शाम तक सन की बिक्री करते थे। रात को अपने घर पर बैठ कर जमाख़र्च की बिगत मिलाते थे। किन्तु इस प्रकार जी तोड़ परिश्रम करके भी भूतनाथ बाबू यशस्वी नहीं हुए। इस व्यवसाय में उन्हें प्रति-वर्ष हानि होने लगी। मामा इनके अतुल सम्पत्तिशाली थे, इसी से उन्होंने हानि सहकर भी व्यवसाय का काम जारी रक्खा। वह इस आशा पर कि इस साल घाटा लगा तो लगा, अगले साल लाभ होगा। इसी आशा पर सात वर्ष तक सन का व्यवसाय होता रहा, पर सिवा हानि के किसी साल कुछ लाभ न हुआ। १२९५ साल में हिसाब करके देखा गया तो इस सात वर्ष के व्यवसाय में लगभग एक लाख की क्षति हुई। भूतनाथ बाबू उदास होकर बोले—अब हम यह व्यवसाय न करेंगे। जब इसमें कुछ लाभ ही न होगा तब इस व्यवसाय से हमारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा। हर साल घाटा सहने पर इतना रुपया हम कहाँ से ला कर देंगे।

सृष्टिधर बाबू ने कहा—घबराने की कोई बात नहीं। हम यह एक लाख रुपया तुम लोगों के इस सात वर्ष के सन के व्यव-साय की शिक्षा का ख़र्च समझते हैं। सोचने की बात है, जिस शिक्षा में एक लाख रुपया ख़र्च हुआ है उस शिक्षा के द्वारा उस ख़र्च की अपेक्षा अवश्य ही विशेष लाभ होगा। जो लोग मन में यह ठान कर व्यवसाय करते हैं कि "इस एक सौ रुपये में लाभ हो चाहे हानि, इससे अधिक रुपया व्यवसाय में न लगावेंगे", ऐसे

लोगों का जीवन उसी एक सौ रुपये के हेर फेर में रह जाता है। व्यवसाय में निरुत्साह न होना चाहिए। सात वर्ष में एक लाख का घाटा हुआ है, इस दफ़ा ऐसा बढ़ा कर कारबार करो जिससे सात साल की हानि को एक ही साल के लाभ से पूर्ण कर सको। कटिबद्ध हो कर जब व्यवसाय के पीछे लग पड़ोगे तब अवश्य ही लाभ होगा। कोई सहज ही में बड़ा आदमी नहीं बन जाता। बड़ा आदमी बनने के लिए पहले लाखों रुपये खर्च करने पड़ते हैं, लाभ की लाखों बातों से दिमाग़ लड़ाना पड़ता है, और लाखों विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है। तुम लोग हताश मत हो। हम अब भी तुम्हारे पृष्ठ-पोषण के लिए तैयार हैं। तुम व्यवसाय करते रहोगे तो इसी में हमारी मानमर्यादा की रक्षा होगी। जो लाख रुपये की हानि हुई है उसका सोच न करके भविष्य के लाभ का सोच करना चाहिए। हमने तुम लोगों का सुन्दर शील स्वभाव देख कर ही ये बातें कही हैं। तुम लोगों में असाधुता का कोई लक्षण दीख नहीं पड़ता, इसलिए निश्चय है कि ईश्वर तुमको सफल-मनोरथ करेंहींगे। जब तुम धन-प्राप्ति के लिए जी-जान से परिश्रम करोगे तब ईश्वर तुम्हें धन क्यों न देगा?

भूतनाथ बाबू इस प्रकार मामा के मधुर उत्साह-वर्धक उपदेश की बातों से उत्साहित होकर फिर बड़ी तत्परता के साथ काम करने लगे। यद्यपि उन्हें फिर भी कई बार घाटा सहना पड़ा तथापि वे व्यवसाय से पराङ्मुख नहीं हुए। अन्त में ईश्वर ने उन्हें सफलता प्रदान की। क्रमशः व्यवसाय में अधिकाधिक लाभ होने लगा।

भूतनाथ बाबू हृदय के बहुत उदार थे। वे उचित और आवश्यक व्यय करने में कभी लोभ नहीं करते थे। समय-निष्ठा, कर्मनिष्ठा और वाक्यनिष्ठा ने एक साथ मिल कर उन्हें अद्वितीय व्यवसायी बना दिया। वे दरिद्रों के परम सहायक थे। उनके परिवार में स्त्री और दो पुत्रों के सिवा और कोई न था। किन्तु इतने अल्प परिवार में हर महीने ग्यारह मन चावल खर्च होता था। जो सैकड़ों निरुपाय दरिद्र काम करने में अक्षम थे उन्हें पा त बाबू के घर दोनों समय भोजन मिलता था। उनका नियम था कि जो वे आप खाते थे वही अतिथि-अभ्यागतों को भी खिलाते थे। जिस महल्ले में भूतनाथ बाबू का मकान था उस महल्ले में कोई दरिद्र न था। कारण यह कि वे महल्ले के जिस व्यक्ति को बेकार देखते उसे अपने कारखाने के किसी काम में भरती कर लेते थे। किसीको जब किसी काम में ग़फ़लत करते देखते तब वे उस पर अत्यन्त क्रोध करते थे। वे सर्वदा लोगों से कहा करते थे कि "जो काम में असावधानी दिखलाता है वह अपनी उन्नति का मार्ग रोकता है।" वे स्वयं कभी कोई मुक़द्दमा नहीं लड़ते थे किन्तु ग़रीबों को मुक़द्दमा लड़ने के लिए वे यह कह कर रुपयों के द्वारा सहायता देते थे कि "तुम मुक़द्दमा ज़रूर लड़ो। तुम्हारी जायदाद कोई अन्याय से क्यों ले ले"? दरिद्र विद्यार्थियों के लिए इनके भंडार का द्वार बराबर खुला रहता था। वे विद्यार्थियों के रहने के लिए घर, भोजन, शयन और स्कूल की फ़ीस आदि सभी बातों का अपनी तरफ़ से प्रबन्ध कर देते थे और बी० ए०

तक पढ़ने का खर्च देते थे। विलास-प्रियता उनमें नाम मात्र को भी न थी। वे मद्य आदि नशीले पदार्थों से बड़ी घृणा रखते थे यहाँ तक कि हुक्के को भी हाथ से न छूते थे। वे तम्बोली-समाज के संस्थापक थे। इस समाज से एक मासिक-पत्रिका निकलने लगी जो अब तक जीवित है। उस पत्रिका के और उक्त सभा के सम्पादक आप ही थे। सभा से प्रतिमास ५०) रुपया दरिद्रों में बाँटा जाता था। उन्होंने ८० हज़ार अशिक्षित सुप्तप्राय तम्बोलियों को जागृत किया, और वे लोग जो कई दलों में विभक्त थे उन्हें तोड़ कर सबको एक में मिला दिया। अब सभी दल के तम्बोलियों का खान पान और शादी ब्याह परस्पर होता है। पुरुषार्थ-शील लोग जो कहते हैं उसे कर दिखाते हैं। भूतनाथ बाबू जो इतना काम कर गये हैं, उसका कारण उनकी शिक्षा और सच्चरित्रता ही थी। हम लोगों को उनकी जीवनी से जो शिक्षायें मिलती हैं उनका विवरण संक्षेप से नीचे लिखा जाता है—

(१) भारत में उच्चशिक्षा प्राप्त-व्यवसायियों की बड़ी आवश्यकता है। कृषि, शिल्प और वाणिज्य आदि का शिक्षा से सम्बन्ध होना मानों मणिकाञ्चन का मेल होना है।

(२) व्यवसाय में प्रवृत्त होने के पहले कुछ दिन व्यवसाय-सम्बन्धी कार्य्य की शिक्षा ज़रूर प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(३) आलस्य, नैराश्य आदि अवगुणों को त्याग कर अपने वाणिज्य का काम अपने हाथ से करना चाहिए। जो दूसरों के भरोसे व्यवसाय का काम छोड़ते हैं उन्हें हानि सहनी पड़ती है।

(४) दैवयोग से यदि व्यवसाय में हानि हो तो भी हताश न होना चाहिए। उस हानि को हानि न समझ सतर्कता और कार्यशिक्षा का व्यय मात्र समझना चाहिए। जो काम लाख रुपया ख़र्च करके सीखा जायगा उस काम का पुरस्कार लाख से अवश्य ही अधिक मिलेगा।

(५) जो वणिक् शिक्षित और सच्चरित्र हैं उन्हें वाणिज्य में विफलमनोरथ होने की सम्भावना नहीं। दैवयोग से कहीं उनका आयास विफल हुआ तो वे फिर अध्यवसायपूर्वक व्यवसाय में प्रवृत्त होजाते हैं।

(६) जो लोग ऋण के भरोसे व्यवसाय चलाते हैं, अथवा मितव्यय पर ध्यान नहीं रखते, वे सब बातों का सुभीता रहते हुये भी अकृतकार्य होते हैं।

(७) जो लोग व्यवसाय-सम्बन्धी बातों से अनभिज्ञ हैं वे प्रचुर मूलधन, उच्चशिक्षा और श्रमशक्ति आदि गुणों के रहने पर भी व्यवसाय में लाभ नहीं उठा सकते। जो जिस काम के लायक़ हों उन्हें उसी काम में हाथ डालना चाहिए। व्यवसायियों के लिए व्यवसाय-बुद्धिही प्रधान गुण है। व्यवसाय-बुद्धि के बिना व्यवसाय चल नहीं सकता।

(८) व्यवसाय में तो एक बार सफलता प्राप्त होने पर लोगों की आँखें खुल जाती हैं, फिर क्रमशः व्यापार बढ़ने लगता है।

(९) व्यवसायियों का हृदय प्रौढ़ होना चाहिए। जो लोग व्यवसाय में प्रवृत्त होकर हानि होते ही हताश हो जाते हैं और

लाभ होने पर फूल उठते हैं, ऐसे लोग व्यवसाय में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। साहस, सहिष्णुता, आशा और उच्चाभिलाष ये चारों व्यवसाय के स्तम्भ हैं। इन्हीं स्तम्भों पर व्यवसाय की इमारत खड़ी है। ये पाये जितने ही सुदृढ़ रहेंगे व्यवसाय उतना ही सुदृढ़ और चिरस्थायी बना रहेगा। इन पायों में जहाँ एक भी कमज़ोर हुआ तहाँ व्यवसाय की दशा शोचनीय हो चली। इसलिए इन पायों को कभी कमज़ोर न होने देना चाहिए।

(१०) जो लोग विलास-प्रिय हैं, निष्ठाहीन हैं, स्वार्थी हैं और व्यवसाय के कामों का भार दूसरों को सौंप कर आप निश्चिन्त रहते हैं उन्हें व्यवसाय का कोई फल हाथ नहीं आता।

(११) उच्चशिक्षा पाकर वकालत, डाक्टरी, प्रोफ़ेसरी या और भी बड़ी नौकरी करनी ही चाहिए यह कुछ आवश्यक नहीं। उच्चशिक्षा प्राप्त करने का फल है मनुष्यत्व। जो यथार्थ में मनुष्य है वही मनुष्यों का उपकार करता है। शिक्षित व्यक्ति जो काम करेगा, मूर्ख की अपेक्षा अवश्य ही अच्छा करेगा। अतएव शिक्षित लोगों के द्वारा सिद्धि-लाभ की विशेष सम्भावना है। कितने ही महाजन भूतनाथ बाबू से बढ़कर धनवान् हुए हैं और हैं, किन्तु समाज को जितना लाभ इस बी० ए० पास दूकानदार से पहुँचा उतना किसी और से नहीं। कितने ही अशिक्षित महाजन करोड़ों रुपये का कारबार कर रहे हैं और लाखों रुपया दान करके अपनी उदारता से मानों दाता कर्ण को भी लजा

रहे हैं किन्तु उस दान से देश का क्या उपकार होता है, यह हम नहीं जानते। इसी भारत में एक ताता भी हो गये हैं जिनका नाम क्या स्वदेश, क्या विदेश, सर्वत्र विख्यात है। कौन उनके नाम से परिचित नहीं है? ताता का ही नाम इतना मशहूर क्यों हुआ? कारण यह है कि व्यवसाय-बुद्धि ने उच्चशिक्षा के साथ मिल कर उन्हें वाणिज्य में सफलता प्रदान कर लोगों में प्रसिद्ध कर दिया और उनके हाथ से मनुष्योचित अनेक अच्छे काम कराये। इससे सर्वसाधारण लोग ताता को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

सिद्धि की प्राप्ति

"तुमने जो सत्कर्म करने का संकल्प किया है उसे सिद्ध करो, साधना बिना कोई काम सिद्ध नहीं होता"।

सिद्धि का कोई एक निर्धारित आदर्श नहीं है। भक्त को आराध्य, प्रेमिक को प्रेमपात्र, ज्ञानेच्छु को ज्ञान, मानाभिलाषी को सम्मान, कृपण को धन, और योद्धा को विजय मिल जाने पर सिद्धि प्राप्त होती है। अभिप्राय यह कि जो लोग जिस वस्तु को चाहते हैं उन्हें यदि वह मिल जाय तो उनके लिए वही लाभ कहलावेगा। यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सभी व्यक्ति जो चाहते हैं, क्या उन्हें वह मिल जाता है? दरिद्र लोग

धन-सम्पत्ति चाहते हैं पर सभी दरिद्र तो धन नहीं पाते। कृष्ण पान्ती तो दरिद्र थे, उन्हें उतना अधिक धन कैसे मिला? कारण यह कि उनकी वासना के साथ साधना भी थी। जिनके पास यह साधना नहीं, वे सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते। योगी लोग शुद्ध साधना के बल से ही सिद्धि प्राप्त करते हैं। विद्यार्थिगण जो बड़ी बड़ी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं वह किस बल से? इसी साधना-बल से। जिन्हें साधना का अभाव है वे अकृतकार्य होते हैं। इसी से कहा गया है—"साधकः सिद्धिमाप्नुयात्"। संसार में जितने लोग हैं सब अपने किसी न किसी काम की धुन में ज़रूर लगे रहते हैं। बिना उद्देश्य का जीवन किसी काम का नहीं। जब उद्देश्य नहीं तब फिर साधना कैसी? उद्देश्यहीन लोगों का जीवन भारवत् प्रतीत होता है; अतएव वे अधिक दिन जीवन धारण नहीं कर सकते। अच्छा या बुरा जीवन का कोई एक उद्देश्य अवश्य होना चाहिए। उद्देश्य ही जीवन का अवलम्ब है। निरवलम्ब जीवन कितने दिन ठहर सकता है? बुद्ध, शङ्कराचार्य, चैतन्य देव, नानक आदि महात्माओं का जीवन उद्देश्यहीन न था। राममोहन, विद्यासागर, भूदेव और मधुसूदन आदि जितने सुप्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं उन का भी अपना अपना एक उद्देश्य था। रघुनाथ, विश्वनाथ आदि डकैत भी उद्देश्यरहित न थे। सभी लोग अपने उद्देश्य या आदर्श को गुप्त रखते हैं, साधना के द्वारा वह आप से आप प्रकट हो जाता है। साधना का मूल्य सिद्धि के

अनुसार निरूपित होता है और साधना के अनुरूप ही सिद्धि प्राप्त होती है। जिनकी साधना अच्छी है वे अच्छे साधकों में गिने जाते हैं। छोटा, बड़ा, कायर, वीर, कृपण, उदार, मूर्ख और ज्ञानी; ये सभी अपनी अपनी साधना से सम्बन्ध रखते हैं। मनुष्य का जीवन ही साधनामय है। भेद इतना ही है कि कोई अच्छी साधना करके मीठा फल चखता है और कोई बुरी साधना कर के विषमय फल पाता है। ऐसा भी देखा गया है कि जो लोग अपने जीवन में अधिक अधिक अभिलाषा करते हैं और उनकी एक एक कर प्रायः सारी वासनायें पूरी होती भी हैं, किन्तु जीवन के अन्त समय में उन व्यक्तियों को यह कहते भी सुना गया है—"हाय, हमारा जीवन व्यर्थ हुआ, हमने मनुष्य-जन्म ले कर क्या किया ?" उनके मुँह से यह बात क्यों नहीं निकलती कि "हमारा जीवन सफल हुआ, हमारा जन्म सार्थक हुआ"। इष्ट-सिद्धि पाकर के भी जब कितनों ही को इस प्रकार अनुताप करते सुना जाता है तब स्वीकार करना होगा कि जीवन की सफलता और विफलता के सम्बन्ध में अवश्यही कोई गूढ़ रहस्य है। वह रहस्य जीवन के उद्देश्य से बाहर की बात नहीं, वह भी उद्देश्य के अन्तर्गत ही है। क्या धन-धान्य से घर भरने, विश्वविद्यालय की उच्चतम परीक्षा पास करने, वक्तृता-बल से हजारों मनुष्यों को मुग्ध कर देने अथवा स्वास्थ्य-पूर्ण सुन्दर शरीर पाकर अपने वंश की मर्यादा बढ़ाने ही से जीवन का उद्देश्य पूरा हो जाता है ? नहीं। जीवन का मुख्य

उद्देश्य इन बातों से कहीं बड़ा है। जिस उद्देश्य को पूरा करके मनुष्य यथार्थ में मनुष्य* कहलाने योग्य होता है और लोगों में कभी कभी देवता कहलाने का भी अधिकार प्राप्त करता है वही जीवन का श्रेष्ठ उद्देश्य है। जो जीवन के इस महान् उद्देश्य को पूरा करते हैं वे यह कहने का भी साहस कर सकते हैं कि—हमारा जन्म लेना सार्थक हुआ, या हम अपने जीवन को सफल कर सके।

अपने किसी विशेष विषय में कृतकार्य होने की अपेक्षा सर्वसाधारण के हितकर कामों में सफल-प्रयत्न होना अधिक श्रेष्ठ है। जो लोग जन-समुदाय के कामों में सफलता प्राप्त करते हैं वे अन्यान्य उद्देश्यों में अकृतकार्य होने पर भी अपने जीवन को सफल समझते हैं। और लोग भी ऐसे पुरुषों के जीवन की सराहना करते हैं। किन्तु जो लोग स्वार्थ-सम्बन्धी अनेक विषयों में सिद्धि प्राप्त करते हैं उनसे यदि परोपकार का कोई काम सिद्ध न हो सका तो वे अपने जीवन की बात को सोच कर अवश्य अपने ऊपर घृणा करेंगे और दूसरा भी कोई उनके जीवन को अनुकरणीय न समझेगा, बल्कि यही कहेगा कि वे ज़िन्दगी भर अपने ही कामों के पीछे हाय हाय करते रहे; भलाई का एक भी काम उनसे न बन पड़ा।

जो लोग अपने रहस्यमय जीवन के अन्तर्गत धर्म और शक्ति

---

* मेरे बनाये "चरित्रगठन" में 'मनुष्यता' शीर्षक प्रबन्ध देखने योग्य है। ग्रन्थकर्त्ता

के ऊपर ध्यान न देकर और समाज के साथ कोई सम्पर्क न रख कर अपने जीवन को स्वार्थ-साधन के पीछे बिता डालते हैं, वे अन्तकाल में अपने बहुकष्टोपार्जित धन को सामने रख कर भी सुख नहीं पाते और अपने को सर्वजनत्यक्त तथा सहानुभूति-रहित देखते हैं। किसी विद्वान् का कथन है कि—उद्यान के सभी पेड़-पौदे बराबर नहीं होते। कोई लम्बा होता है कोई छोटा, कोई फलने वाला होता है और कोई फूलने वाला, कोई हरा भरा होता है और कोई सूखा सा; अर्थात् सभी पेड़-पौदे उद्यान की शोभा बढ़ाने में समर्थ नहीं होते। किन्तु वह वृक्षलतामय उद्यान यदि दर्शकों के नेत्र को तृप्त कर सके, तो सभी लोग उद्यान को सुन्दर कहेंगे। मनुष्य का जीवन भी उद्यान के समान है। यदि अल्प अवस्था से ही मनुष्य अपने जीवन-उद्यान को इस तरह से सजायें जिसमें वह सभी को आनन्द-प्रद हो और उसकी छाया, फल तथा फूलों से सभी लाभ उठावें और उसको आदर्श मान कर सभी लोग अपने जीवन-उद्यान को सजाने का अभिलाष करें तो जीवन की अवश्य सफलता या सार्थकता है।

मनुष्य को पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। केवल आमोद-प्रमोद या हास्य-परिहास करके ही कोई सुखी नहीं हो सकता। भोग-विलास जीवन के चिरसंगी होकर भी बुढ़ापे में सुखदायक नहीं होते। किन्तु साहित्य, सांख्य, वेदान्त और मीमांसा आदि शास्त्रों का विचार नित्य संगी होकर मृत्यु समय तक सुख, शान्ति और आनन्द देता है। जिस धनी को धन से बढ़ कर कुछ प्रिय नहीं,

धन-वृद्धि के अतिरिक्त जिसे दूसरा कोई आनन्द नहीं उस व्यक्ति के जीवन को जब बुढ़ापा घेर लेता है तब उसका मन धन से उचट जाता है; तब उसे वह धन आनन्दप्रद नहीं होता। मनुष्ययोनि में जन्म लेकर क्या हानि-लाभ की बातों में ही जीवन को बिता डालना चाहिए? क्या मनुष्यता का चरम फल यही है कि सस्ते दामों कोई चीज़ ख़रीद कर मँहगे भाव से बेचना और पूर्ण लाभ उठा कर अपने जीवन को कृतकृत्य मानलेना? क्या मनुष्य-जीवन की सृष्टि केवल लाभ के लिए, केवल धन-कुबेर होने के लिए, केवल अपने शरीर को सुख देने ही के लिए है? क्या जीवन का और कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है? यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि मनुष्य-जीवन का उद्देश्य बहुत बड़ा है। मनुष्यों का जैसा यह शरीर है वैसेही उनके मन और आत्मा भी तो हैं। क्या वे शारीरिक सुख, आयु, वृद्धि और आरोग्य मात्र से ही सन्तुष्ट होंगे? मनुष्य जैसे शरीर को सुखी रखने की चेष्टा करते हैं वैसेही उन्हें मन और आत्मा को भी तृप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य का अपने मन और आतमा को सुखी करने के लिए धर्म और ज्ञान की साधना नितान्त आवश्यक है। जैसे धर्म की साधना से मन को सुख मिलता है वैसे ही ज्ञान की साधना से आत्मा की तृप्ति होती है। केवल प्रचुर धन की प्राप्ति से ही कोई मन और आत्मा को सच्चा सुख नहीं दे सकता। जो लोग उच्चशिक्षा, शिल्प, साहित्य, दर्शन और विज्ञान की बातों में निपुणता प्राप्त कर गौरवान्वित हो गये हैं उन लोगों के

सम्मान में स्मारकरूप उनकी प्रतिमूर्ति स्थान स्थान में देखी जाती है। किन्तु जिन लोगों ने केवल धन पैदा करने ही के पीछे अपना सारा जीवन बिता दिया है उन लोगों की प्रतिमूर्ति कहीं देखने-सुनने में नहीं आती। स्वार्थ सम्बन्धी कामों में जीवन बिताने से जीवन की सार्थकता नहीं होती। जीवन की सार्थकता तभी होती है जब समाज के उपकार का कोई काम किया जाय। इस लिए जीवन के अन्यान्य उद्देश्यों के साथ साथ समाजहित-साधन का ध्यान रखना भी बहुत ज़रूरी है। सभी लोग बाल्यकाल से ही जब समाजहित-साधन को अपने जीवन का एक प्रधान उद्देश्य समझेंगे तब उसकी सिद्धि के लिए वे साधना भी अवश्य करेंगे। जो समय पर चूकते हैं वे ही पीछे पछताते हैं। जिनसे अपने जीवन में कोई अच्छा काम करते नहीं बनता वही बुढ़ापे में यह कह कर आँसू बहाते हैं कि हाय हमने जन्म लेकर क्या किया? इस दुर्लभ मनुष्य-जीवन को हमने व्यर्थ ही बिता दिया।

सातवाँ अध्याय

सिद्धि का गुप्त मन्त्र

रामधन बाबू एक प्रसिद्ध महाजन थे। ये बड़े ही उदार और सज्जन थे। इनके निःशुल्क विद्यालय में इन्हीं के खर्च से एक विद्यार्थी, जिसका नाम शचीन्द्र था, पढ़ता था। रामधन बाबू इसे मातृ-पितृ-हीन जान कर और इसका सुन्दर स्वभाव देख कर इस पर बड़ी दया रखते थे। शचीन्द्र दरिद्र होने पर भी उच्चाभिलाषी और सुयोगग्राही था। एक दिन वह रामधन बाबू की बैठक में गया। वहाँ उसकी दृष्टि एक नोटबुक पर पड़ी। उसकी पीठ पर बड़े बड़े मोटे अक्षरों में लिखा था—"नित्य सङ्गी"। उसके नीचे छोटे छोटे अक्षरों में लिखा था—"जिसके हाथ यह नोटबुक लगे उसी की हो जाय।" शचीन्द्र बैठ कर उस नोटबुक के पन्ने उलटने लगा। दो चार पन्ने उलटने के बाद उसने देखा कि लाल रोशनाई से बड़े बड़े अक्षरों में एक पन्ने के शीर्ष स्थान में लिखा है—"सिद्धि का गुप्त मंत्र"। शचीन्द्र ने उसके नीचे महाजन के हाथ की लिखी हुई कितनी ही उपदेश की बातें देखीं जो उसे बहुत पसन्द आईं। उसने उनमें से कुछ बातें चुनकर अपनी नोटबुक में लिख लीं। उसने उस नोट बुक को हज़म करना ठीक न समझा। वे बातें ये हैं—

(१) सिद्धि का मूल मन्त्र साधुता है।

(२) संचय का मूल मितव्यय है और स्वाधीनता का मूल संचय है।

(३) अपव्यय की देख रेख स्वयं करनी चाहिए। दूसरे के भरोसे पर निश्चिन्त होकर बैठ न रहना चाहिए।

(४) मूलधन, व्यवसाय-बुद्धि और परिश्रम, यही तीन वाणिज्य के पाये हैं। इस तिपाये वाणिज्य का जहाँ एक भी पाया टूटा तहाँ वाणिज्य गिर पड़ता है।

(५) जब तक सहिष्णुतासहित मनोनिवेशपूर्वक जी तोड़ परिश्रम नहीं किया जाता तब तक सिद्धि प्राप्त नहीं होती। केवल ज़बानी जमाखर्च करने से कुछ नहीं होता।

(६) जिस समय जो काम करो उस समय उसी पर ध्यान रक्खो। जो लोग एक काम करने के समय दूसरे काम का ध्यान मन में लाते हैं उनकी कार्य-सिद्धि में बाधा पड़ जाती है। सिद्धि का अधिकांश एकाग्रता पर निर्भर है। सब काम यदि एक ही समय में कोई करना चाहे तो एक भी काम सम्पन्न न होगा।

(७) व्यवसाय के छोटे बड़े सभी कामों पर दृष्टि रखनी चाहिए। व्यवसाय-सम्बन्धी ऐसा कोई काम नहीं जो स्वयं देखने का न हो। कैसा ही साधारण से साधारण काम क्यों न हो उसकी देख रेख आपही करना ठीक है। जब अपने हाथ से कोई काम करोगे तभी सिद्धि प्राप्त होगी। जो नाव खेना जानते हैं वे बिना कर्णधार के भी नाव को किनारे लगा सकते हैं।

(८) जो काम करना हो उसे खूब सफ़ाई से करो जिस में लोग तुम्हारे काम की तारीफ़ करें । यदि रास्ते में झाड़ू देना है तो इस तरह झाड़ू दो कि वैसा साफ़ रास्ता दूसरा दिखाई न दे।

(९) जब तक काम सिद्ध न हो तब तक जी-जान से उस में लगे रहो। जितनी ही तीव्र साधना करोगे उतनी ही शीघ्र सफलता प्राप्त होगी।

(१०) हँसी खेल में समय को व्यर्थ नष्ट न करो। कितनेही लोग युवावस्था में अपने अमूल्य समय और धन को भोग-विलास के पीछे बरबाद करके सभ्य मण्डली में मुँह दिखलाने योग्य भी नहीं रहते।

(११) जिसका लक्ष्य सबसे ऊपर है वह कुछ दिनों में सब का शीर्षस्थानीय बन कर उच्च आसन का अधिकारी होता है।

(१२) जो लोग सीधी सड़क छोड़ कर टेढ़ी राह से चलते हैं, सम्भव को छोड़ कर असम्भव की तरफ़ दौड़ते हैं, उन लोगों का एक भी उद्देश्य सफल नहीं होता। पानी को मथ कर घी कोई कैसे निकाल सकता है ?

(१३) जो लोग किसी तरह का रोज़गार करते हैं उन्हें सत्यता, मितव्यय, सहिष्णुता, समय पर कर्तव्य-पालन और गृहव्यवस्था इन पाँच बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। यद्यपि और भी अनेक नियम मानने के योग्य हैं किन्तु ये पाँच अनिवार्य हैं। जो इन पाँच बातों पर दृष्टि नहीं रखते उनके

उपार्जित धन की स्थिरता नहीं होती। वैसे ही कारबार के सम्बन्ध में इन तीन बातों का स्मरण रखना चाहिए, (१) जिस कारबार में कोई प्रवृत्त होना चाहे उसमें उसे हृदय से अनुराग होना चाहिए। ऐसा नहीं कि कारबार चल रहा है, पर उसमें कुछ अनुराग नहीं है। (२) कैसा ही कोई काम हो स्थिरचित्त से करना चाहिए। जो काम जल्दी में किया जाता है वह अच्छा नहीं होता। (३) कारबार में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित हो तो हताश होकर बैठ न रहना चाहिए, बल्कि उसको जिस तरह हो दूर करके आगे बढ़ने की चेष्टा करनी चाहिए।

(१४) जो लोग धनोपार्जन करना चाहें उनके लिए कालिज की शिक्षा किसी तरह हानिकारिणी नहीं है। किन्तु व्यवसाय में प्रवृत्त होनेवालों के लिए, कालिज में अधिक समय नष्ट न करके, स्कूल की साधारण शिक्षा ग्रहण कर लेना ही काफ़ी है।

(१५) जिनका स्वभाव अच्छा है, जिनकी सूझ अच्छी है, वे थोड़ी पूँजी से भी बहुत धन प्राप्त कर सकते हैं। बङ्गदेश के एक सच्चरित्र पुरुष ने एक अधेली से कई लाख रुपये पैदा किये। मार्किन के सुप्रसिद्ध महाजन रसेलसेज के पास क्या पूँजी थी? किन्तु उन्होंने अपनी सच्चरित्रता से तीस करोड़ रुपया जमा कर लिया।

(१६) जिसने कम से कम ६०००) रुपया जमा कर लिया है, समझना चाहिए कि वह लक्ष्मीलाभ के पथ में दूर तक अग्र-

सर हो चुका है। छः हज़ार रुपया कुछ बड़ी रक़म नहीं है किन्तु इन रुपयों के जमा करने में उसे जो अध्यवसाय करना पड़ा है, जो मितव्ययिता का अभ्यास करना पड़ा है वही उस सञ्चय-कारी को धनप्राप्ति की साधना में सिद्धि प्रदान करेगा।

(१७) व्यवसाय-बुद्धि या महाजनी कारबार का कौशल किसी को एक दिन में प्राप्त नहीं हो सकता। न वह केवल मानसिक तर्क-वितर्क से प्राप्त हो सकता है, न छोटे ख़याल से और न क्षणिक उत्तेजना से हो। किन्तु सावधानीपूर्वक क्रमशः महाजनी कारबार करते करते ही उसका अभ्यास होता है। जब तक अभ्यास के द्वारा वाणिज्य-कौशल प्राप्त नहीं होता तब तक उन्नति का रास्ता नहीं खुलता।

(१८) तुम्हें क्या करना होगा, यह बुद्धि बतला देगी; पर उसे किस तरह करना चाहिए यह कौशल बतलावेगा। बुद्धि धन है, कौशल नक़द रुपया है। कौशल किसी को शीघ्र प्राप्त नहीं होता। जब तक बारंबार विचार पूर्वक एकाग्र मन से कोई काम न किया जाय तब तक कौशल उपलब्ध नहीं होता। सभी कौशल अनुशीलन-साध्य हैं।

(१९) संसार में सभी लोग धनी नहीं हैं और न ऐसा कुछ नियम है कि संसार के सभी लोग धनाढ्य हों। हाँ, इतना अवश्य है कि अपनी ज़रूरतों को रफ़ा करने के लिए सभी लोग अपनी आय से कुछ न कुछ सञ्चय कर सकते हैं। यदि इसमें किसी तरह का विघ्न आखड़ा हो तो सुयोग को दोष न देकर प्रवृत्ति और

प्रतिज्ञा को ही दोष देना चाहिए। प्रवृत्ति और प्रतिज्ञा के अभाव से ही सञ्चय नहीं होने पाता। सुयोग का अभाव कभी नहीं होता।

(२०) हम लोगों को कभी कभी किसी काम में अकृतकार्य होने पर खेद न मानना चाहिए, बल्कि उससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अकृतकार्य होने पर लोगों को अपनी त्रुटि की बात सूझती है, विवेचनाशक्ति बढ़ती है और अन्तःकरण की आँखें खुलती हैं। बारंबार धक्का खाने पर जो शक्ति और ज्ञान प्राप्त होता है वही इस जीवन का महा रहस्य है।

(२१) संसार में सम्मान माँगने से किसी को नहीं मिलता। सम्मान के लिए केवल लालायित होने से वह प्राप्त नहीं होजाता। किन्तु प्रशंसनीय काम करते देख कर वह आप से आप लोगों के पास आखड़ा होता है। यदि तुम सम्मान चाहते हो तो प्रशंसा का काम करो। जब तुम अच्छा काम करोगे तो बिना ही कहे लोग तुम्हारा सम्मान करेंगे।

शचीन्द्र के घर का सुप्रबन्ध

"जिस घर में अपव्यय नहीं होता उस घर में आवश्यक वस्तुओं का अभाव नहीं होता"।

"अप्राप्त और अनिश्चित आय के भरोसे ऋण लेकर खर्च करना मूर्खता है। गृहस्थों को ऐसा कभी न करना चाहिए"।

"गृहिणी को चाहिए कि घर का जो ख़र्च अनावश्यक जान पड़े उसे रोक दे"।

"जो काम हम स्वयं कर सकते हैं उसके लिए दूसरों का सहारा लेना उचित नहीं"।

एक महाजन फेरी करते करते अपने व्यवसाय-कौशल से करोड़पती हो गये थे। वे कभी कभी नीतिनिपुण रामधन बाबू से मिलने आते थे। रामधन बाबू से उन्हें हार्दिक प्रेम था। शचीन्द्र का विनय और सुन्दर स्वभाव देख कर उक्त महाजन उस पर बड़े ही प्रसन्न थे। जब वे कभी रामधन बाबू के यहाँ आते तब शचीन्द्र की ज़रूर खोज करते थे और उसके परोक्ष में रामधन बाबू से उसके शील-स्वभाव की प्रशंसा करते थे। शचीन्द्र अब बालक नहीं है। युवावस्था में पदार्पण कर चुका है। रामधन बाबू को शचीन्द्र के व्याह की चिन्ता बढ़ने लगी। उनकी प्रबल इच्छा थी कि शचीन्द्र का विवाह उनके सामने हो जाय। यद्यपि अपनी दरिद्रता के कारण शचीन्द्र व्याह करना नहीं चाहता था तथापि रामधन बाबू के आग्रह से वह विवाह करने के हेतु बाध्य हुआ।

रामधन बाबू ने महाजनी करके यथेष्ट धन कमाया है, सत्कर्म में मुक्तहस्त से प्रचुर धन दान करके उदारता दिखलाई है, इस पर भी उनके पास ख़ूब रुपया है। रामधन बाबू अपने सद्व्यवहार और साधुता के कारण सभी लोगों को प्रिय हो गये थे। सर्वत्र उनका आदर होता था। सुशिक्षित शिष्ट लोगों में

जितने गुण होने चाहिएँ, सभी उनमें थे। किन्तु जैसे चन्द्रमा में लाञ्छन है वैसे ही इनमें भी एक भारी दोष रह गया था। वह यह कि इन्होंने सन्तान की शिक्षा के प्रति उदासीनता और उनके चरित्र-सुधार की उपेक्षा की थी। रामधन बाबू ने सभी कामों में अपने बुद्धिबल से काम लिया किन्तु इस विषय में वे अन्यान्य व्यवसायी महाजनों की तरह भकू बने रहे। इस बात पर उन्होंने कभी विचार न किया कि हम जो इतना अतुल धन रक्खे जाते हैं वह क्या होगा? हमारे चरित्रहीन, अल्पशिक्षित, व्यवसाय-बुद्धिरहित पुत्र दो ही दिन में बहुक्लेशार्जित धन को उड़ा देंगे, इस पर तो उन्हें एक बार विचार करना चाहिए था। अन्यान्य देशों के महाजन ऐसा नहीं करते। वे जैसे व्यवसाय के द्वारा अपने मूलधन को बढ़ाते हैं वैसे ही अपनी सन्तान की शिक्षा और चरित्रगठन के लिए बड़ी उदारता से धन खर्च करते हैं। इसीसे उनके कल-कारखाने और वाणिज्य-व्यवसाय की स्थिति बिगड़ने नहीं पाती, बल्कि उत्तरोत्तर वृद्धिङ्गत होती है। किन्तु इस देश में शिक्षा और चरित्रगठन के अभाव से प्रायः धन एक पुश्त तक रहता है। अतुल ऐश्वर्य्यशाली महाजन के बेटे को भिखारी बनते देर नहीं लगती। जो धनी अपनी सन्तान की शिक्षा पर ध्यान नहीं रखते या उसे सच्चरित्र बनाने का प्रयत्न नहीं करते उन्हें अधिक धन-संचय करने की क्या आवश्यकता? उनका वही संचित अर्थ किसी दिन अनर्थ का कारण हो जाता है।

जो बात सोची गई थी आख़िर वही हुई। रामधन बाबू अब संसार में नहीं हैं। उनके उद्दण्ड स्वभाव के अशिक्षित पुत्र, दुश्चरित्र लोगों की सङ्गति पाकर, बुरे कामों में पानी की तरह रुपया उलीचने लगे। थोड़े ही दिनों में रामधन बाबू का सारा सञ्चित धन स्वाहा हो गया। इसके बाद वे लोग स्थायी सम्पत्ति पर कर्ज़ लेकर यथेच्छ ख़र्च करने लगे। रामधन बाबू का देहान्त होने के कई वर्ष बाद एक दिन महाजन ने शचीन्द्र को देखने के लिए आ कर सुना कि वह अपने कुटुम्ब को साथ ले यहाँ से चले गये। रामधन बाबू के पुत्रों की खोज करने पर मालूम हुआ कि उनका ज्येष्ठ पुत्र जेलख़ाने में है; मँझले ने आत्महत्या कर डाली है और छोटा ख़ैराती दवाख़ाने में पड़ा कराह रहा है। रामधन बाबू की कोठी नीलाम हो गई।

घर का ख़र्च चलाने योग्य आय का उपाय किये बिना गृहस्थाश्रम में प्रवृत्त होने की इच्छा शचीन्द्र को कभी न थी, किन्तु अपने पितृतुल्य प्रतिपालक रामधन बाबू की आज्ञा भङ्ग कर उनके मन में कष्ट देना भी वह नहीं चाहता था। जब शचीन्द्र के ब्याह की बात स्थिर हुई तब उस ने रामधन बाबू के निकट अपने मन का भाव प्रकट किया। रामधन बाबू की इच्छा थी कि शचीन्द्र का ब्याह किसी धनवान् की लड़की से हो और इस का वे प्रबन्ध भी कर चुके थे। किन्तु शचीन्द्र ने किसी के मुँह से सुना था कि उस महल्ले के पास ही एक गाँव में एक अनाथा स्त्री है, जो ब्याहने योग्य एकलौती कन्या को लेकर

बड़े संकट में पड़ी है। लड़की का पिता ऊँचे पद पर नियुक्त था और रुपया भी अच्छा कमाता था किन्तु अपरिमित व्यय और अदूरदर्शिता के कारण वह अपने परिवार के लिए एक कौड़ी भी नहीं छोड़ गया। उसकी विधवा स्त्री और अविवाहिता कन्या ने गहने और घर की अन्यान्य सामग्री एक एक कर सभी बेंच डाली। अब उसके पास कुछ नहीं है, इससे वे दोनों बड़े कष्ट से जीवन बिता रही हैं। लड़की सयानी हो गई है, पर दरिद्र की लड़की से ब्याह कौन करेगा? इस लिए भविष्य की बात सोच कर उस अनाथिनी की आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है। उसके जीवन का एक भी अवलम्ब नहीं, सब प्रकार से वह असहाया है। उसके इस कष्टमय जीवन-वृत्तान्त ने शचीन्द्र के हृदय को द्रवित कर दिया। यह किसी की इच्छा न थी कि शचीन्द्र उस दरिद्रा की लड़की से ब्याह करे, किन्तु शचीन्द्र ने रामधन बाबू को राज़ी करके उस विपद्ग्रस्त परिवार का उद्धार किया। जो शचीन्द्र बिना जीविका प्राप्त किये गृहस्थधर्म में प्रवृत्त होने के घोर विरोधी थे, आज उनके समस्त विरुद्ध मत को एक निरपराधिनी अनाथिनी की अश्रुधारा ने धो बहाया। यहाँ इतना जान लेना भी आवश्यक है कि शचीन्द्र में यदि चरित्र बल न रहता तो वे कदापि यह भार अपने ऊपर लेने का साहस न करते। जिनमें चरित्र-बल न हो, जिन्हें अपने बाहुबल का भरोसा न हो, उनके पक्ष में इस दृष्टान्त का अनुसरण करना युक्तियुक्त नहीं है। विवाह होने के बाद शचीन्द्र बड़े संकट में पड़े। रामधन बाबू की मृत्यु

होने के बाद उनके लड़कों के साथ उनकी न बनी। यदि शचीन्द्र उनके दल में मिल कर मुसाहबी कर सकते तो मेल मिलाप हो जाना सम्भव था, किन्तु शचीन्द्र भिन्न प्रकृति के मनुष्य थे। उन्होंने देखा कि अब यहाँ रहने में कुशल नहीं है, इसलिए सुयोग पाकर वे सकुटुम्ब वहाँ से चल दिये और जहाँ अपनी नौकरी की बात पहले ही से ठहरा ली थी वहाँ जा पहुँचे। कई वर्ष तक उन्हें तीस रुपया मासिक मिलता रहा। आज कल तीस रुपये में एक गृहस्थ का खर्च चलना कितना कठिन है, यह अनुमान के द्वारा लोग सहज ही समझ सकते हैं। किन्तु युवक शचीन्द्र खूब सोच विचार कर अपनी आय के अनुसार खर्च की व्यवस्था करके चलने लगे। यह नहीं कि बीच बीच में उन्हें कोई क्लेश का प्रसंग न आता हो, किन्तु वे उसे धीरतापूर्वक सह लेते थे। यदि उनके घर में स्त्री के सिवा और कोई न रहता तो इस सामान्य आय से भी किसी तरह चल जाता, परन्तु शचीन्द्र के छोटे बालकों के अतिरिक्त उनकी सास भी उनके आश्रय में थी। कई वर्ष के बाद उनके वेतन में पाँच रुपये की तरक्क़ी हुई। जिस दिन शचीन्द्र को ३५) मिले उसी दिन उन्होंने अपनी डायरी में लिखा—आज ३०) की जगह ३५) हाथ आये। आय में ५) वृद्धि होने से खर्च भी कुछ बढ़े, यह कुछ बात नहीं। ३०) रुपया मासिक में जिस प्रकार इतने दिन खर्च चला उसी तरह अब भी चलेगा और चलाना होगा। पाँच रुपये से कुछ विशेष सुख मिलने की भी सम्भावना नहीं, अतएव यदि इसे व्याज पर न

लगा कर एक जगह रख दिया करेंगे तो भी पाँच वर्ष में ३००) रुपया जमा हो जायगा।

घर का ख़र्च बढ़ जाने पर भी शचीन्द्र किसी तरह उसी तीस रुपये में सब काम चला लेते थे। लोगों को आश्चर्य होता था कि इतना बड़ा गृहस्थी का ख़र्च ३०) मासिक में क्योंकर सम्पन्न होता है! शचीन्द्र सादा भोजन और साधारण वस्त्र के अतिरिक्त और ख़र्च को आवश्यक नहीं समझते थे। घर के सभी अभावों का दूर करना उनके सामर्थ्य से बाहर की बात थी। यदि वे दूरदर्शी न होते, अपनी अवस्था के अनुसार ख़र्च करना न जानते तो जीवन भर ऋणी बन कर कष्ट उठाते। जिन कामों को अपने हाथ से करने में कितने ही २०) २५) वेतन पानेवाले बाबू लोग संकुचित होते हैं उन्हें वे अपने हाथ से कर लेते थे। वे ख़ुद बाज़ार से सौदा ख़रीद लाते थे। चार पैसे की तरकारी लाने के लिए दो पैसे मज़दूर को न देकर स्वयं ले आते थे। घर के सभी काम उनकी गृहिणी स्वयं सँभाल लेती थी। बच्चों के पहनने के कपड़े घर ही में सी लिये जाते थे। शचीन्द्र का मुख्य सिद्धान्त यही था कि वे ऋण लेकर धनी का अनुकरण कभी न करेंगे। वे अपनी अवस्था पर बराबर ध्यान रखते थे। शौक़ीनी उन्हें जी से पसन्द न थी। उनकी स्त्री भी ऐसी समझदार और सुशीला थी कि दूसरी स्त्रियों के बहुमूल्य वस्त्र या भूषण देख कर कभी अपने साधारण वस्त्र या भूषण पर खेद प्रकट न करती और न कभी इनके लिए अपने पति को चिन्ता में डालती थी। शचीन्द्र

सभी चीज़ नक़द दाम देकर ख़रीदते थे, इससे उन्हें चीज़ सस्ती और अच्छी मिलती थी। वे कोई चीज़ कभी उधार न लेते थे। न वे अपने लड़कों के लिए रोज़ रोज़ नया खिलौना मोल लेते थे। शचीन्द्र के घर में मादक पदार्थों का व्यवहार न होता था।

शचीन्द्र को शायद ही कभी तरकारी ख़रीदने की ज़रूरत पड़ती थी क्योंकि उन्होंने अपने घर के पास की ज़मीन में तरह तरह के फल-फूल और साग-भाजी लगा रक्खी थी। उनकी गृहिणी उन पेड़ों की बड़ी हिफ़ाज़त करती थी। उससे गृहस्थी के कितने ही काम चल जाते थे। किसी घर में तरकारी ही के पीछे न मालूम महीने में कितना ख़र्च हो जाता है। जब तक पाँच तरह की तरकारियाँ आगे न आवें तब तक कितने ही लोगों का पेट नहीं भरता। किन्तु शचीन्द्र भोजन का उद्देश्य केवल क्षुधा का निवारणमात्र समझते थे। वे जिह्वा की तृप्ति के लिए विविध सुस्वादु तरकारियों की अपेक्षा भूख लगने पर भर पेट स्वच्छ भोजन कर लेने ही को यथेष्ट समझते थे। उन्होंने अपने घर के सभी लोगों में थोड़ा थोड़ा काम बाँट दिया था, जिसे वे लोग बड़े उत्साह से करते थे। बिना परिश्रम के कोई काम पूरा नहीं होता, अतएव परिश्रम करने से उनके घर के सभी लोगों का स्वास्थ्य ठीक रहता था। जो लोग परिश्रम करते हैं उन्हें भूख लगती है, खाना अच्छी तरह हज़म होता है, और नींद अच्छी आती है। परिश्रमी लोगों को प्रायः वैद्य की विशेष आवश्यकता

नहीं पड़ती। इसीसे शचीन्द्र को भी प्रायः कभी डाक्टर को फीस देने का प्रसङ्ग न आता था।

शचीन्द्र को पुस्तक संग्रह करने की विशेष अभिरुचि थी। धीरे धीरे उन्होंने बहुत पुस्तकों का संग्रह कर लिया। विशेषता यह थी कि उन पुस्तकों में एक भी बुरा उपन्यास या नाटक न था। जितनी पुस्तकें थीं, सभी काम की थीं। ऐसी एक भी पुस्तक न थी जिसके पढ़ने से चित्त पर बुरा असर पड़े। उपन्यास-नाटकों का एक दम अभाव न था, किन्तु वही उपन्यास-नाटक थे जिनका उद्देश्य अच्छा था। शचीन्द्र की स्त्री पढ़ी लिखी थी। वह अपने हाथ से सब पुस्तकों को सजा कर आलमारी में रखती थी और उसने संख्या-निर्देशपूर्वक एक सूचीपत्र भी बना लिया था।

एक व्यवसाय-कुशल पक्का दूकानदार जिस तरह अपने व्यवसाय के प्रत्येक विषय से परिचित रहता है और स्वयं सब कामों को देखता है उसी तरह शचीन्द्र पक्का गृहस्थ बनकर और उनकी स्त्री सुघर घरनी बनकर दोनों, घर के सभी कामों पर सर्वदा ध्यान रखते थे। बाहर का काम शचीन्द्र सँभालते थे और भीतर का काम उनकी स्त्री सँभालती थी। शचीन्द्र अपने छोटे छोटे बालक-बालिकाओं से भी उनकी शक्ति के अनुसार हलका काम लेते थे। वे अपनी सन्तान को अपरिश्रमी बना कर भाग्यहीन बनाना नहीं चाहते थे। शचीन्द्र की स्त्री ऐसी कार्य-कुशला थी कि घर के सभी काम यथा—घर का

झाड़ना-बुहारना, बर्तन साफ़ रखना, रसोई बनाना, बच्चों का प्रतिपालन आदि अकेली कर लेती थी; केवल वे दोनों छोटे बालक उसके सहायक थे। वे उसकी आज्ञा पालने के लिए चारों तरफ़ दौड़ते फिरते थे। जब कभी उनसे कोई चीज़ लाने या कोई और ही काम करने के लिए कहा जाता था तब वे मारे ख़ुशी के उछल पड़ते थे। जिस दिन वे कुछ अपराध करते थे उस दिन उनसे कोई काम न लिया जाता था। यही उनको भारी सज़ा थी। इस सज़ा से उन बालकों के मन में जो मर्मान्तिक क्लेश होता था वह उनके सूखे मुँह और आँसू भरी आँखों से अच्छी तरह विदित होता था। माता-पिता के आज्ञापालन में इस प्रकार अभ्यस्त होकर और इस प्रकार हँसी ख़ुशी से थोड़ा थोड़ा परिश्रम करके वे बालक बिना औषधादि सेवन किये ही तन्दुरुस्त रहने लगे। खुली हवा में इधर उधर दौड़-धूप करने से उन बालकों का स्वास्थ्य ऐसा अच्छा बना रहता था कि कभी सिर में दर्द तक न होता था। ये बालक हमेशा सर्दी, (ज़ुकाम) खाँसी, ज्वर और पेट-पीड़ा आदि रोगों से व्यथित होकर अपने माँ-बाप को तकलीफ़ न देते थे।

गृहिणी के सुप्रबन्ध से शचीन्द्र के घर के सभी काम बड़ी सफ़ाई से होते थे। हरेक चीज़ ठिकाने के साथ रक्खी रहती थी। घर की कोई चीज़ मैली या गन्दी न होने पाती थी। कपड़े फट जाने पर व्यवहार में लाये जाते थे, पर वे मैले न होने पाते थे। उनकी गृहिणी सर्वदा यही चाहती थी कि मैला कपड़ा

घर में कोई न पहने। स्नान, भोजन और शयन आदि सभी काम समय के अनुसार होते थे। शचीन्द्र की स्त्री "शरीर-पालन", "स्वास्थ्य-रक्षा", "शिशुपालन", "स्त्री-शिक्षा", "गार्हस्थ्य धर्म" आदि पुस्तकों के उपदेशों का यथासाध्य पालन करती थी। स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियम सुखसाध्य होने पर भी कितने ही घरों में उनका पालन नहीं होता। इसका एक मात्र कारण आलस्य है। शचीन्द्र के घर में कोई आलसी न था। इसीसे उनके घर का एक भी काम बिगड़ने न पाता था।

शचीन्द्र के घर में जैसा शान्तिभाव छाया रहता था वैसा कहीं अन्यत्र देखने में न आता था। आपस में लड़ना-झगड़ना कैसा होता है—यह शचीन्द्र के घर में कोई न जानता था। स्वप्न में भी कभी किसी के साथ कोई विवाद न करता था। शचीन्द्र घर का जो प्रबन्ध करना चाहते थे उसमें उनकी धर्म-पत्नी कभी अनिच्छा प्रकट न करती थी। किसी किसी विषय में तो दोनों मिलकर विचार करके कोई एक बात स्थिर कर लेते थे। उनकी स्त्री अबूझ की तरह कभी उनसे कोई अनुचित अनुरोध करके उनका जी नहीं दुखाती थी। इस कारण उनके घर में सर्वदा आनन्द ही आनन्द रहा करता था। थोड़ी आय में इतने बड़े गृहस्थाश्रम को सुख-शांतिपूर्वक चलाना शचीन्द्र और उनकी धर्मपत्नी के सुप्रबन्ध का ही फल समझना चाहिए।

---

*

आठवाँ अध्याय

महाजन के साथ शचीन्द्र का पत्र-व्यवहार

शचीन्द्र यद्यपि नौकरी करके अपनी उन्नति कर रहे थे तथापि उनके उच्च अभिलाष ने उन्हें नौकरी ही में सारा जीवन बिता देने का परामर्श न दिया। वे अपने नियत काम से छुट्टी पाकर प्रतिदिन एक महाजन की कोठी में महाजनी कारबार सीखने के लिए जाते थे। उन्होंने यत्न-पूर्वक वाणिज्य-सम्बन्धी शिक्षा में मन लगाया। धीरे धीरे वे वाणिज्य की सभी बातों से परिचित होगये। किन्तु अधिक परिश्रम करने से उन का स्वास्थ्य बिगड़ गया। औषध और पथ्य आदि के सेवन से थोड़े ही दिनों में उनका स्वास्थ्य फिर ठीक हो गया। किन्तु नौकरी और व्यवसाय की शिक्षा ये दोनों काम एक साथ होना शचीन्द्र के लिए कठिन सा हो गया, इसलिए उन्होंने नौकरी छोड़ देने ही का सङ्कल्प किया। इस विषय में उन्होंने अपने पूर्वपरिचित हितैषी महाजन से सलाह लेना उचित समझा। वे उनसे पत्र-व्यवहार करने लगे। शचीन्द्र और महाजन के कई एक आवश्यक पत्रों की नक़ल यहाँ उद्धृत की जाती है।

महाजन का पत्र

कल्याणभाजन श्रीशचीन्द्र बाबू,

तुम्हारा पत्र आया। तुम्हारा उद्योग प्रशंसनीय है। इसमें सन्देह नहीं कि तुम एक उच्च विचार और उन्नत हृदय के मनुष्य हो। तुमने व्यवसाय-सम्बन्धी जो कुछ शिक्षा प्राप्त की है उससे तुम विश्वास रक्खो, किसी न किसी दिन अवश्य कृत-कार्य्य होगे। किन्तु तुमसे यह कहना है कि जो ज्ञान सुन कर या पुस्तकें पढ़ कर प्राप्त होता है वह सुदृढ़ नहीं होता। कभी कभी वह ज्ञान भ्रमोत्पादक होकर कार्य्यसिद्धि में बाधा पहुँचाता है। काम करने पर जो शिक्षा प्राप्त होती है वही निर्भ्रान्त होती है।

तुम पहले कुछ दिन किसी व्यवसाय-कुशल वणिक् के पास रह कर वाणिज्य करना सीखो। जब जी लगा कर कुछ दिन वाणिज्य-सम्बन्धी काम करोगे तब तुम्हें व्यवसाय का कुछ अनु-भव हो जायगा। इस प्रकार वाणिज्यकला में शिक्षित होकर थोड़ी पूँजी से साधारण व्यवसाय में प्रवृत्त हो जाना। इस बात का सर्वदा स्मरण रखना कि तुम जो काम करना नहीं जानते उसमें भूल कर भी हाथ न डालना। कितने ही प्रतिभाशाली नवयुवक बिना व्यवसायशिक्षा प्राप्त किये ही "लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये" इसी एक वाक्य का अवलम्बन कर झट पट दूकान खोल देते हैं। इसका परिणाम यही होता है कि लाभ के बदले वे अपनी पूँजी भी खो बैठते हैं तब उनकी आँखें खुलती हैं

और तब वे अपनी भूल स्वीकार करते हैं। किन्तु अपना सर्व-स्वान्त करके भूल स्वीकार करना ही किस काम का। क्योंकि मूलधन नष्ट हो जाने पर भूल-संशोधन के लिए रास्ता नहीं रहता। देखता हूँ, व्यवसाय करने की तुम्हारी प्रबल इच्छा है, पर स्मरण रक्खो, केवल मनोविनोदार्थ व्यवसाय करना बड़ी भूल है। जो लोग अपनी स्वाभाविक सहिष्णुता, शिक्षा, श्रमशीलता और योग्यता पर दृष्टि न देकर केवल पराधीनता-जनित दुःख से कातर होकर या वाणिज्य के द्वारा दूसरों को धनवान् होते देख कर बिना विचारे व्यवसाय में प्रवृत्त होते हैं उन्हें पछताना पड़ता है।

मेरा यह उद्देश्य नहीं है कि तुम्हें इस काम में निरुत्साह करूँ, किन्तु काम करने के पहले एक बार आगे-पीछे की बात सोच लेना क्या उचित नहीं है? तुम पहले अपनी शक्ति को अच्छी तरह तौल लो; तदनन्तर जो लिखना हो, मुझे लिखो।

शुभाभिलाषी

श्री......

महाजन का पत्र

कल्याणास्पद श्रीशचीन्द्र बाबू,

तुम्हारा पत्र पाकर हम प्रसन्न हुए। तुमने जो व्यवसाय-सम्बन्धी कितनी ही आवश्यक शिक्षा प्राप्त की है, यह जान कर तुम्हारे कृतकार्य्य होने की हमें कुछ कुछ आशा हो रही है। हम

तुम्हारे अध्यवसाय और श्रमशक्ति से भली भाँति परिचित हैं। किन्तु अभिज्ञता एक ऐसी चीज़ है जो शीघ्र किसी को प्राप्त नहीं होती। कोई मनुष्य किसी एक काम में असाधारण श्रम और एकाग्रता दिखला सकता है, इससे वह सभी विषयों में ऐसा करने को समर्थ होगा, इसका कोई निश्चय नहीं। कोई आदमी दस रुपया आपही खर्च करके उसका हिसाब ज़बानी बतला सकता है; किन्तु कल उसने कहाँ क्या सुना, वह उसे आज भली भाँति याद नहीं है इससे वह कल की सभी बातें ठीक ठीक नहीं बता सकता। तुम्हारा अध्यवसाय, श्रमशीलता और सहिष्णुता आदि गुण जो इस समय कई कामों में देखे जा रहे हैं, वे उसी तरह व्यवसाय में भी स्थिर रहेंगे इसका क्या प्रमाण? तुमसे हम यह सच सच कह रहे हैं कि सामान्य दूकानदार से लेकर बड़े भारी महाजन तक को इतना परिश्रम करना पड़ता है और इतना दिमाग़ लड़ाना पड़ता है जो सबसे होना कदापि सम्भव नहीं। इसके सिवा व्यवसायियों को अपने आराम और भोग विलास की वस्तुओं से भी किनारा करना पड़ता है। जिनमें व्यवसायोचित श्रम करने की शक्ति नहीं, साहस नहीं, अभिज्ञता नहीं और त्यागशक्ति नहीं उनका इस काम में प्रवृत्त न होना ही भला।

शुभाभिलाषी

श्री......

शचीन्द्र का पत्र

श्रीचरणों में निवेदन,

आपने अपने कृपापत्र में जो उपदेश लिख भेजे हैं, तदनुसार ही सब काम होंगे। आपका लिखना सब सही है, किन्तु मैंने बहुत दिन नौकरी करके देखा, मेरे जीवन का आधा हिस्सा नौकरो ही में कट गया फिर भी मेरी दरिद्रता दूर न हुई। यदि मैं अपने जीवन का चौथाई भाग भी व्यवसाय में खर्च करता तो आज धनी न होने पर भी दारिद्र्य से किसी तरह ज़रूर छुटकारा पा जाता। मान लीजिए, कदाचित् मैं व्यवसाय में अकृतकार्य्य भी होता तो उससे जो शिक्षा प्राप्त होती वही मेरे भविष्य कारबार के मूलधन का काम देती। मैं जो काम करूँगा बहुत सोच विचार करके ही करूँगा। आपकी पूर्ण सहानुभूति पाने ही पर कर्तव्य स्थिर करूँगा।

कृपाकांक्षी

शचीन्द्र

महाजन का पत्र

कल्याणभाजन,

तुम्हारा पत्र पाकर हम प्रसन्न हुए। शिक्षित व्यक्तियों का उत्साह आशाजनक होता है। इतने दिन नौकरी करके भी जो तुम्हारे मन में इतना बड़ा साहस और उत्साह बना है, इतने दिनों तक दारिद्र्य के साथ युद्ध करके भी जो तुम अपने उच्चा-

भिलाष को रक्षित रख सके हो, इससे हम और अधिक प्रसन्न हैं। तथापि हम एकाएक यह नहीं कह सकते कि तुम नौकरी करना छोड़ दो। सिवा सलाह देने के और किसी तरह की सहायता हम अभी तुम्हें नहीं दे सकते। उपयुक्त समय देखकर हम तुमसे मिलेंगे।

शुभेच्छु
श्री......

महाजन का पत्र

मङ्गलालय श्रीशचीन्द्र बाबू,

तुम्हारे पत्र से विदित हुआ कि तुमने अपने ज्येष्ठ पुत्र के नाम से दूकान खोली है। व्यवसाय को तुम जितना सहज समझ बैठे हो सच पूछो तो वह उतना सहज नहीं है। देखो, अभी आरम्भ ही में तुम एक भारी भूल कर बैठे हो। तुमने जिन चीज़ों की दूकान खोली है, वे वहाँ के लिए विशेष प्रयोजनीय नहीं हैं। वहाँ के लोगों को किन चीज़ों की विशेष आवश्यकता है, किन चीज़ों की खपत वहाँ ज़ियादा होती है इसका विचार माल ख़रीदने के पहले ही तुम्हें कर लेना चाहिए था। तुम्हें यह पहले ही सोच लेना चाहिए था कि—

(१) जहाँ दूकान खोली जायगी वहाँ लोगों की संख्या कितनी है? उनकी अवस्था कैसी है? वे लोग किन चीज़ों को ज़ियादा पसन्द करते हैं?

(२) स्थानीय लोगों को किस वस्तु की विशेष कमी रहती है ? किस चीज़ का ख़रीदना उन्हें बहुत ज़रूरी है ?

(३) जिस चीज़ की दूकान खोली जा रही है उसकी वहाँ के रहनेवालों को कैसी ज़रूरत है ? वह चीज़ वहाँ के लोगों के काम की है या नहीं ?

दूकान का भाड़ा तुमको नाम मात्र का देना पड़ता है यह हमने माना, किन्तु जहाँ बिक्री कम है, वहाँ की बे भाड़े की दूकान से अधिक भाड़े की दूकान—जो घनी आबादी में है और जिसकी चीज़ें हाथों हाथ बिकती हैं—अच्छी है। मान लो, तुम्हें दूकान का कुछ भाड़ा न देना पड़े, किन्तु दूकान की चीज़ें बिकें ही नहीं तो ऐसी दूकानदारी से क्या फल ? छोटी दूकान मजे में तब चलती है जब उसमें थोड़ी थोड़ी काम की सभी चीज़ें हों और उनकी बराबर बिक्री होती रहे। नई आमदनी से फिर ग्राहकों के पसन्द की नई नई चीज़ें ख़रीदी जायँ। जहाँ दूसरी दूकान नहीं है और दूकान भी कुछ बहुत बड़ी नहीं है वहां दूकान में ऐसा ही सौदा रखना चाहिए जिसके ख़रीदे बिना लोगों का काम न चले। परचूनी और पन्सारी की दूकान इसी श्रेणी के अन्तर्गत है। पर तुम्हारा उच्चाभिलाष इस साधारण दूकानदारी ही में न छिप रहे इसका भी स्मरण रखना।

शुभाभिलाषी

श्री......

महाजन का पत्र

कल्याणभाजन,

बहुत दिन से तुम्हारा पत्र न पाने के कारण चित्त चिन्तित था। तुम्हारी दूकान का काम अच्छी तरह नहीं चलता, यह जान कर खेद हुआ। अगर कोई बाबू दूकान ख़रीदना चाहते हैं तो उनके हाथ दूकान बेच दो, कुछ अधिक हानि होने पर भी हताश न हो। व्यवसाय से हाथ न खींचो। चुप चाप बैठ रहने से संसार का काम नहीं चलता। व्यवसाय में हानि होने से भविष्य के लिए अच्छी शिक्षा मिलती है। हानि होने ही पर लोग सावधानी से काम करना सीखते हैं। अब नई दूकान खोलने के पहले इन सब बातों पर ज़रूर ध्यान रखना।

(१) दूकान का सौदा ऐसा होना चाहिए जिसकी ज़रूरत अमीर से लेकर ग़रीब तक सभी को हो।

(२) जो नष्ट होने योग्य न हो।

(३) जो थोक भी बिक सके और फुटकल भी।

(४) दूकान को ख़ूब साफ़ सुथरा रक्खो और बिक्री की चीज़ों को दूकान में इस तरह सजा कर रक्खो जिसमें लोगों की दृष्टि अनायास उस ओर खिंच जाय। दूकान में कुछ ऐसी विशेषता ज़रूर रहनी चाहिए कि उस पर एक बार नज़र पड़ने पर फिर लोगों को दुबारा देखने की ख़्वाहिश बनी रहे।

(५) जो सौदा अधिक दिनों तक रहने पर भी ख़राब न हो

वह सस्ते भाव से ख़ूब अधिक ख़रीद कर रख लेना चाहिए और जब उसका भाव मँहगा हो तब सुयोग पाकर बेच डालना चाहिए।

शुभाभिलाषी

श्री........

महाजन का पत्र

कल्याणभाजन,

तुम्हारा पत्र पाया। अबकी बार तुमने बहुत अच्छी जगह दूकान खोली है। माल भी उपयुक्त रक्खा है। इस दफ़ा तुमने बुद्धिमानों का सा काम किया है। इस कौशल से इतना अवश्य प्रकट होता है कि तुमने व्यवसाय-सम्बन्धी लाभप्रद उपदेशों के अनुसार काम करने की योग्यता प्राप्त कर ली है। इस तरह सोच कर काम करने से सफलप्रयत्न होने की विशेष आशा रहती है। एक बात अभी से ध्यान में रखने योग्य है। थोड़ी पूँजी वाले दूकानदार केवल साधुता और निष्ठा के बल से वाणिज्य के द्वारा बड़े बड़े व्यवसायियों को परास्त करते हैं। बहुधा यह देखने में आता है कि धनी महाजन और बड़े बड़े दूकानदार साधारण ग्राहकों के प्रश्न का अच्छी तरह जवाब तक नहीं देते। मानो साधारण ग्राहकों के साथ बात चीत करना उनके लिए संकोच का विषय है, मानो इससे उनके बड़प्पन में बट्टा लगता है।

किसी किसी समय तो वे साधारण ग्राहकों के साथ ऐसी बेपर-वाही दिखलाते हैं कि कब वे सौदा लेने आये और कब लौट गये, इसकी ख़बर तक नहीं रखते। किन्तु उस घमण्डी मूर्ख महाजन का पार्श्ववर्ती दूकानदार यदि उन उपेक्षित ग्राहकों को सादर अपनी दूकान में बैठा कर और उनके पसन्द लायक़ दो चार तरह की चीज़ें दिखला कर, उनके प्रश्नों का उचित उत्तर देकर, उन्हें आह्लादित करे तो निश्चय है कि वे उसी की दूकान का सौदा ख़रीदेंगे और उस अभिमानी महाजन की दूकान में भूल कर भी कभी पाँव न रक्खेंगे।

ठगी करने से दूकान की कभी उन्नति नहीं हो सकती। जो दूकानदार ग्राहकों को ठगते हैं उनका कारबार शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। ठगे हुए ग्राहक केवल आप ही दूकान के दुश्मन नहीं होते बल्कि दूकान के प्रतिकूल नये नये सैकड़ों शत्रुओं को खड़ा कर देते हैं। कारण यह कि भली-बुरी दूकान का प्रधान विज्ञापन ग्राहक ही होते हैं। जो दूकानदार ग्राहकों को धोखा नहीं देते उनकी दूकान में ग्राहकों की भीड़ लगी रहती है; किन्तु जो चिकनी-चुपड़ी बातों में ग्राहकों को लुभा कर धोखा देते हैं उन वञ्चक दूकानदारों के मुँह की ओर ग्राहक नज़र उठा कर देखते तक नहीं। वाणिज्य-कुशल महाजन रसल्सेज का कथन है कि सदुपाय की अपेक्षा असदुपाय से अधिक धन प्राप्त हो सकता है किन्तु वह धन देर तक ठहरता नहीं। जब जन-समाज में उस असद् व्यवहार की बात फैल जाती है तब उन असद्

व्यवहारावलम्बी महाजनों को प्रथम लाभ की अपेक्षा कहीं बढ़ कर हानि उठानी पड़ती है; हमेशा के लिए लोगों को उनकी दूकान का विश्वास उठ जाता है। किन्तु जो दूकानदार सचाई के साथ सौदा बेचता है उसकी दूकान की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

बन्धु-बान्धवों और आत्मीयगणों की पृष्ठपोषकता पर निर्भर हो कर दूकान न खोलनी चाहिए। उनका मधुरालाप केवल स्वार्थ से भरा होता है। वे यही चाहते हैं कि" कोई मित्र दूकान खोले तो हमारा काम बन जाय", मित्र की दूकान से सभी चीज़ें उधार मिल सकेंगी, रह सह कर दाम चुकावेंगे। अन्यान्य ग्राहकों से उन्हें सस्ते भाव पर चीज़ लेने का मौक़ा मिलेगा और दाम के लिए तक़ाज़ा न सहना पड़ेगा। तक़ाज़ा होनेही से वे बिगड़ खड़े होंगे। साधारण अमनोयोग की बातों में वे अपना अपमान समझेंगे। वे लोग कोई न कोई इल्लत लगा कर कुछ ही दिनों में दूकान से सम्बन्ध तोड़ कर अलग हो जाते हैं, उन में कितने ही आत्मीयगण तो अलग होते समय उधारी चीज़ों का दाम देना भी भूल जाते हैं।

अपने व्यवसाय को आप ही देखना चाहिए। दूसरों के ऊपर सम्पूर्ण रूप से निर्भर हो कर कोई काम न छोड़ देना चाहिए। अपने काम को तुम ख़ुद जी लगा कर जैसा करोगे उस तरह दूसरा न कर सकेगा। जो मालिक के काम को अपना समझ कर करते हैं उनकी संख्या हज़ार में दो एक से अधिक नहीं। ऐसा विश्वासपात्र, सच्चरित्र कर्मचारी दैवात् कभी किसी को मिल जाता है।

दूकान में उतनी ही चीज़ें रखनी चाहिएँ जिनकी हिफ़ाज़त अच्छी तरह हो सके। जो लोग प्रमाण से अधिक चीज़ें दूकान में ला कर रख देते हैं, किन्तु उनकी रक्षा करने में अक्षम होते हैं, उन्हें हानि सहनी पड़ती है। अपनी श्रमशक्ति और तत्त्वावधान की क्षमता देख कर ही दूकान का कारबार फैलाना चाहिए। जैसे दूकान के और और कामों को देखना चाहिए वैसे ही दूकान का हिसाब भी अपने हाथ में रखना चाहिए। यदि समय के अभाव से खुद हिसाब लिखने में असमर्थ हो तो दूसरे के हाथ के लिखे हिसाब को नित्य जाँच लेना बहुत आवश्यक है।

प्रत्येक दूकानदार को समयनिष्ठा, नियम-निष्ठा, और वाक्य-निष्ठा पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रति दिन सवेरे नियमित समय पर दूकान खोलनी चाहिए और दूकान बन्द करने का भी समय निर्धारित रहना चाहिए। सभी ग्राहकों के साथ एक सा व्यवहार रक्खा जाय।

यह बात पहले कही जा चुकी है और फिर भी कही जाती है कि प्रत्येक ग्राहक के साथ सुजनता प्रकट करनी चाहिए। सुजनता या साधुता ही दूकानदारों के कृतकार्य होने का मूलमन्त्र है। कोमल स्वभाव और मीठी बातों में लोगों को आकृष्ट करने की जो शक्ति है वह और किसी में नहीं है। इमर्सन साहब ने कहा है कि सुन्दर स्वरूप की अपेक्षा सुन्दर स्वभाव अच्छा है। क्योंकि चित्र और प्रस्तर आदि-निर्मित मूर्तियों की अपेक्षा सुन्दर

स्वभाव नयनों को विशेष आनन्द देता है। वह फूलों की सुगन्धि की तरह नयनों के अगोचर होकर भी मन को हर लेता है।

शुभाकांक्षी
श्री......

महाजन का पत्र

प्रिय शचीन्द्र !

बहुत दिनों के बाद तुम्हारा एक बृहत् पत्र मिला। हमारा अनुमान सत्य ही निकला। हमने तुम्हें नौकरी छोड़ने को बराबर रोका था किन्तु तुम हमारे रोकने पर भी नौकरी छोड़कर व्यवसाय के पीछे जी-जान से लग पड़े। जितने दिन तुम कृतकार्य न होगे, उतने दिन तुम अव्यक्त होकर ही काम करोगे। हमारे मन में यही भावना उत्पन्न हुई थी और हम इस बात की भी प्रतीक्षा कर रहे थे कि किसी दिन तुम अपनी कृतकार्यता प्रकट कर हमें आश्चर्य्यान्वित और आनन्दित करोगे। जब कई महीने हो गये और हमें तुम्हारा एक भी पत्र न मिला तब तुम्हारे पहले के पते पर हमने तुमको ढूँढ़ा। मालूम हुआ कि अब तुम वहाँ नहीं हो, कहीं अन्यत्र चले गये हो। तुम्हारे रहने का पता किसी ने ठीक ठीक न बतलाया। इससे उद्विग्न होकर हम कुछ दिन तुम्हारी खोज में इधर उधर घूमते रहे। आख़िर बहुत दिनों बाद तुम्हारा पता लगा। तब हम अपने एक

मित्र को तुम्हारा निश्चित वृत्तान्त भेजते रहने का भार सौंप कर चुप चाप लौट आये। इस के बाद आज चार साल हुए। अस्तु, हमारी आशा बहुत कुछ पूरी हुई। तुम इन कई वर्षों में इतना अधिक मूल धन बढ़ालोगे, इसकी कुछ भी आशा हमें न थी।

धन-प्राप्ति के साथ तुममें आलस्य, विलास और अभिमान नाम मात्र को भी नहीं है, यह भी हम सुन चुके हैं। तुम्हारी इस संयमशक्ति का संवाद पाकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्नति के आरम्भ ही में जो असंयमी होकर एकाएक बड़े आदमी बनने और सभ्य समाज में गण्य मान्य होने के लिए आतुर हो उठते हैं वे वैसे हो नहीं सकते।

हमने तुम्हें किसी पत्र में लिखा था कि हम उपयुक्त समय पाकर तुमसे सम्मिलित होंगे। अब वह समय आगया। हम दूसरे पत्र में सब हाल लिखेंगे।

शुभाकांक्षी

श्री......

शचीन्द्र का पत्र

श्रीचरणों में सविनय निवेदन,

लगातार आपके दो पत्र पाकर मैं अत्यन्त अनुगृहीत हुआ। आप दीर्घदर्शी हैं। आपने मेरे अज्ञातवास का जो कारण अनुमान किया है वह ठीक है। आप मेरे साथ सम्मिलित होने की इच्छा करते हैं, मैं इसका भाव न समझ सका। आपका कारबार बहुत

विस्तृत है। आपकी दूकान में सैकड़ों कर्मचारी काम करते हैं। करोड़ों रुपये का व्यापार होता है। मैं एक साधारण गल्ले का व्यापार करता हूँ। जो हो, मुझे अभी इन बातों के विचारने की कोई आवश्यकता नहीं। आपकी आज्ञा ही इस समय सर्वथा शिरोधार्य है। हुंडी मिल गई। यहाँ की दूकान समेट कर मैं शीघ्र ही सकुटुम्ब आपके दर्शनार्थ रवाना हूँगा। आपने यथार्थ ही कहा है, मैंने इतने दिनों में केवल दूकान और आढ़त का काम सीखा है। अभी मुझे वह शिक्षा प्राप्त नहीं हुई कि करोड़ों रुपये के कारबार को योग्यतापूर्वक चला सकूँ। आपकी सेवा में रहकर काम करना सीखूँगा, इससे बढ़कर आनन्द का विषय मेरे लिए और होही क्या सकता है। मैं इस सुयोग को किसी तरह हाथ से न जाने दूँगा।

आपने मुझे जितना वेतन देने की इच्छा प्रकट की है, व मेरी वर्तमान मासिक आय से कम नहीं है अतएव आपकी आज्ञा का पालन करने में मुझे किसी तरह की बाधा नहीं है।

मैं यहाँ से जिस तारीख़ को चलूँगा वह मैं आपको दूसरे पत्र में लिखूँगा।

कृपाकांक्षी,

शचीन्द्र

महाजन के घर शचीन्द्र का आगमन

आज सात आठ दिन हुए, शचीन्द्र सकुटुम्ब आये हैं और महाजन के मकान में ठहरे हैं। यह सुन कर शचीन्द्र बहुत दुखी हुए कि महाजन के न स्त्री है और न कोई सन्तान ही। महाजन का इतना बड़ा महल बिलकुल परिवारहीन है। दास-दासियों को सानुनय आज्ञा के वशवर्ती देख शचीन्द्र की सहधर्मिणी और सन्तान गण बड़ी प्रसन्नता से रहने लगे। मालूम होता है, वृद्ध महाजन की आज्ञा पाकर ही दास और दासियाँ शचीन्द्र के परिवार को अपने मालिक के परिवार की तरह मानने लगीं। दो दिन से महाजन से शचीन्द्र की भेंट नहीं हुई। इससे वे उदास होकर महाजन के इन्द्रालय तुल्य भवन के एक सुसज्जित कमरे में बैठ कर तरह तरह की चिन्ता करने लगे। इसी समय महाजन कागज़ का बंडल हाथ में लिये वहाँ आ पहुँचे। वे शचीन्द्र को चिन्तित देख कर मुसकरा कर बोले "हम दो दिन से तुम्हारी कुछ भी ख़बर न ले सके, इन्हीं कागज़ों की उधेड़बुन में लगे थे। तुम इन कागज़ों को अच्छी तरह पढ़ जाओ। हम कोठी से अभी आही रहे हैं।" यह कह कर महाजन कागज़ का बंडल शचीन्द्र को देकर चले गये।

शचीन्द्र उन आवश्यक कागज़ों को ख़ूब ध्यान से पढ़ने लगे। पढ़ने में वे इस तरह निमग्न हुए कि अपने को भी भूल गये। महाजन जो उनके पास आकर बैठ गये, उसे भी वे नहीं जान सके।

महाजन बड़ी देर तक उनकी तरफ़ देखते रहे। कुछ देर के बाद शचीन्द्र ने एक बार सिर उठाया। महाजन ने पूछा—कहो शचीन्द्र, कागज़ की सब बातें तुम्हारी समझ में आगईं ? शचीन्द्र—समझ में तो आईं पर विषय कुछ साधारण नहीं है। एक बार इसे फिर पढ़ूँगा तब अपना मन्तव्य प्रकट करूँगा।

महाजन—हमारी महाजनी के कारबार का कुल भार कल से तुम्हारे सुपुर्द होगा। तुम जो मन में यह सोच रहे हो कि हरेक काम में हम से आज्ञा लेकर चलोगे, सो यह न होगा। जो सर्वदा दूसरों के उपदेशानुसार चलता है उसके द्वारा सैकड़ों कर्मचा-रियों से काम लेना और लाखों रुपये का कारबार चलाना नहीं हो सकता। हाँ, कोई कठिन प्रश्न आपड़ेगा तो हम तुम दोनों मिल कर अवश्य उसकी मीमांसा करेंगे किन्तु इस कारबार को तुम्हें अपना कारबार समझ कर, हानि-लाभ को अपना हानि-लाभ समझ कर, बिना दूसरे से कुछ सहायता लिये अपने बुद्धिबल और विचार-शक्ति से चलाना होगा। तुमने जो इस कागज़ में कारखाना, कोठी आदि का नक़शा देखा है वह सर्वदा तुम्हारे मानसिक नेत्रों के सामने मौजूद रहना चाहिए। कौन कर्मचारी किस जगह रहता है, किसके सुपुर्द क्या काम है, किस गोदाम में कौन सा माल है, कौन कुली कहाँ बैठ कर क्या काम करता है, कारख़ाने में कौन चीज़ कहाँ रक्खी है, कौन जगह ख़ाली पड़ी है—ये सब बातें तुम्हें इस नक़शे से मालूम हो जायँगी। इन सब पर दृष्टि रखनी होगी। जिन लोगों के साथ तुम्हारा सम्पर्क

होगा उनमें कौन कहाँ रहता है, किसकी कैसी नैतिक अवस्था है, कौन परिश्रमी है, कौन आलसी है, कौन दुष्टस्वभाव का है, कौन झगड़ालू है, कौन नेकचलन है, कौन बदचलन है, कौन क्रोधी है, कौन सहनशील है, कौन तीक्ष्णबुद्धि है, कौन मन्द-बुद्धि है, कौन हृदय से कारबार की उन्नति के लिए सप्रयत्न रहता है, कौन लापरवाही से काम करता है, और कौन आदमी किस काम के उपयुक्त है; इन बातों का बराबर तुम्हें गुप्त-रीति से अनुसन्धान रखना होगा। इन एक हज़ार कर्मचारियों और दो हज़ार मज़दूरों का काम तुम्हें चारों ओर घूम घूम कर देखना होगा। इन हज़ारों कर्मचारियों के काम पर तुम्हें अपनी दृष्टि सर्वदा सतर्क रखनी होगी। जहाँ एक घड़ी के लिए भी तुम अपनी आँख मूँदोगे तहाँ तुम्हारी इस असावधानी का सुयोग लेने में वे कभी न चूकेंगे। उन हज़ार कर्म-चारियों के दो हज़ार नेत्र बराबर तुम्हारे चित्त की गति को देखते रहेंगे। जितना ही तुम उनके कामों को सतर्क दृष्टि से देखोगे उतना ही वे भी तुम्हारी भूल को सतर्क दृष्टि से देखेंगे। भृत्यगण जब तुम्हारी कोई त्रुटि देख पावेंगे तब वे अपनी त्रुटि का संशोधन करना उतना आवश्यक न समझेंगे। यदि कर्म-चारियों से अनजान में कोई भूल हो जाय तो उन पर ज़्यादा कड़ाई न कर मीठी बातों में उन्हें समझा देना जिस में आयन्दा फिर वे ऐसी भूल न करें। छोटे से बड़े तक जितने अधीन कर्मचारी हों सभी के साथ सुजनता प्रकट करनी चाहिए।

जब उनके साथ तुम कोमल व्यवहार करोगे तब वे अपने कामों से स्वयं तुम्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करेंगे। जैसे मालिक अपने को भद्र समझे वैसे ही उसे अपने अधीन कर्मचारियों को भी समझना चाहिए। वे लोग मासिक वेतन के बदले काम करने आये हैं न कि अपनी इज़्ज़त गवाँने या बेचने को। अतएव कर्मचारियों के यथोचित सम्मान का ख़याल अवश्य रखना चाहिए। उनसे असम्मान-सूचक कोई ऐसी बात न कहनी चाहिए जिससे उनके हृदय में कड़ी चोट पहुँचे। नौकरों के निकट एकदम नम्र हो कर भी रहना ठीक नहीं और न अपने काम में आलस्य दिखलाना ही ठीक है। इससे सम्भव है कि नौकर भी अपने कामों में सुस्ती दिखलाने लग जाय। मालिक की प्रकृति कुछ कठोर देख कर उन्हें अपने मालिक के नाराज़ होने का भय बना रहता है, इससे बड़ी सावधानी के साथ अपना काम करते हैं। मालिक को पक्षपातरहित और न्यायपरायण होना चाहिए क्योंकि पक्षपात-शून्य न्यायशील मालिक की सेवा में सभी रहना चाहते हैं। किन्तु अन्यायी मालिक के आश्रय में रहना कोई पसन्द नहीं करता। यहाँ एक बात का स्मरण हो आया। एक बहुदर्शी व्यवसाय-कुशल महाजन का कथन है कि "तुम अपने हाथ में चाबुक बराबर लिये रहो किन्तु उसका व्यवहार न करो, तभी अच्छा है।" हमने स्वयं इस वाक्य की परीक्षा लेकर देखा और सत्य पाया।

शचीन्द्र—इतने लोगों के काम पर एक ही साथ कैसे नज़र

रक्खी जा सकती है? एक ही समय में सब पर दृष्टि रखना तो असम्भव सा प्रतीत होता है।

महाजन—ठीक है, किन्तु उसका एक बहुत ही सहज उपाय है। कार्यालय ऐसा होना चाहिए जिसमें बीच के कर्मचारियों के बैठ ने के लिए एक आयतक्षेत्राकार बड़ा कमरा रहे। उसमें योग्यतापन्न कर्मचारियों के बैठने की पूरी जगह हो। कर्मचारियों के बैठने का इस तरह से प्रबन्ध करना चाहिए जिस में कमरे के किसी एक प्रान्त में खड़े होने पर समस्त कर्मचारियों पर दृष्टि पड़ सके। कार्यालय के अध्यक्ष किंवा प्रधान कर्मचारी को अपने बैठने की जगह ऐसी निर्धारित करनी चाहिए जिसके पीछे किसी कर्मचारी के बैठने को जगह न रहे। सामान्य कर्मचारी स्वतन्त्र रूप से भिन्न भिन्न कमरों में बैठ कर काम कर सकते हैं। किन्तु आवश्यकता हो चाहे न हो, जो कार्यनिरीक्षक हैं उन्हें बीच बीच में उठ कर सभी कोठरियों में घूम फिर आना चाहिए। आँखों के सामने जितना काम सम्पन्न होता है, परोक्ष में उसका आधा होने में भी सन्देह है। वही तत्वावधायक (प्रबन्धकर्ता) अच्छे हैं जो अपने अधीन कर्मचारियों को प्रसन्न रख कर उनसे आशानुरूप काम लेना जानते हैं।

व्यवसाय का काम अच्छी तरह चलने से उसका परिणाम शीघ्र ही प्रकट हो जाता है, किन्तु व्यवसाय-सम्बन्धी ख़राबी का परिणाम देर से जाना जाता है। व्यवसाय का कौन सा काम बिगड़ रहा है, इसकी बराबर खोज ख़बर लेते रहना चाहिए।

जब किसी काम के बिगड़ने का ठीक ठीक पता लग लाय तब अपने अधीन योग्य कर्मचारियों के साथ खुद परिश्रम करके उसे सँभालना चाहिए। जो कर्मचारी जी लगा कर ईमानदारी के साथ काम करता हो उसकी तरक्की के लिए उसका नाम नोटबुक में लिख लेना चाहिए और यथासंभव उसकी वेतन-वृद्धि कर देनी चाहिए जिसमें उसका उत्साह दिन पर दिन बढ़ता जाय तथा वेतनवृद्धि के लालच से और कर्मचारी भी जी लगा कर काम करें। जिस कर्मचारी का काम बहुत ख़राब देखो, जिसे जिस काम के लायक़ समझो अथवा उसे वह काम पसन्द न हो तो ऐसे व्यक्तियों को उनके उपयुक्त काम देना चाहिए। यदि उसे भी वे ठीक ठीक न कर सकें तो उन्हें पदच्युत कर देना ही अच्छा है। कर्मचारियों के साथ वाद-विवाद या हँसी-दिल्लगी कभी न करना चाहिए। किन्तु सुजनता का बर्ताव हमेशा सभी के साथ रखना चाहिए जिसमें सब लोग तुम्हारी मीठी बातों और विशुद्ध आचरण से तुम पर प्रेम प्रकट करें।

ऋद्धि की प्राप्ति

शचीन्द्र झट पट स्नान-भोजन करके फिर महाजन के पास आकर बैठे। कुछ देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। तदनन्तर महाजन ने कहा—वाणिज्य-व्यवसाय नदी के प्रवाह की तरह चञ्चल है। नदी के प्रखर प्रवाह में विरुद्ध गति से तैर कर

किनारे लगना जैसा कठिन है वैसाही कठिन व्यवसाय-प्रवाह में गिरे हुए महाजनों को अपने ठिकाने की जगह पर आना है। धन बात की बात में हाथ से निकल जाता है, किन्तु जो धन नष्ट होगया है, जो सम्पत्ति हाथ से निकल गई है उसको दुबारा प्राप्त करना बड़ा ही कठिन होता है। बड़े बड़े महाजनों का दिमाग़ भी व्यवसाय के कठिन प्रश्नों का जवाब हल करने में चकरा जाता है तब साधारण लोगों की तो कुछ बात ही नहीं। इस व्यवसाय-क्षेत्र में असाधारण शक्ति, लगातार परिश्रम, अनान्य साधारण साहस और स्थिर-बुद्धि की बड़ी आवश्यकता है। व्यवसाय के कामों में ज़रा सी ढिलाई और घड़ी भर की ग़फ़लत से न मालूम कितनी बड़ी विपत्ति की आशंका आखड़ी होती है। तुम्हें इस बात का हमेशा स्मरण रखना होगा कि जो भार तुम्हें सौंपा गया है, उससे भारी प्रायः किसी काम का भार नहीं है। यह मनुष्यों की सेवा के लिए सर्वप्रधान क्षेत्र है, यही देवपूजा का उत्कृष्ट मंदिर है। किसी गणित-शास्त्र-विशारद या वैज्ञानिक को किसी गूढ़तम जटिल प्रश्न के विचारने में जो एकाग्रचित्त होकर मस्तिष्क की परिचालना करनी पड़ती है, उसकी अपेक्षा उन महाजनों को—जो सैकड़ों कर्मचारियों के तत्वावधायक हैं, सैकड़ों के भाग्यविधाता और अन्नदाता हैं—कुछ कम खोपड़ी नहीं खपानी पड़ती। यदि दो दिन भी उनके व्यवसाय का काम बन्द हो जाय या व्यवसाय-सम्बन्धी कोई काम उठा दिया जाय तो न मालूम कितने लोग निरुपाय होकर एक

मुट्ठी अन्न के लिए जहाँ तहाँ घूमने लग जायँ। निराश्रय होने पर प्रायः लोग चोरी, डकैती, लूट और हत्या आदि जघन्य वृत्तियों से पेट पालते हैं। महाजनी कारबार की ज़िम्मेवरी को सामान्य न समझो। जिन में यह ज़िम्मेवरी लेने की शक्ति न हो वे इस काम में न उलझें। कहो शचीन्द्र, मेरी बातों का मर्म तो तुम समझ रहे हो न ?

शचीन्द्र—जी हाँ; भली भाँति समझ रहा हूँ। तो क्या आप मुझे सम्पूर्ण भार सौंप कर निश्चिन्त होना चाहते हैं ? क्या आप कारबार का कुछ भी अंश अपने हाथ में न रक्खेंगे ?

महाजन—नहीं शचीन्द्र, हम अब कुछ न देखेंगे, न अपने हाथ में कुछ काम ही रक्खेंगे। हम केवल तुम्हारे भविष्य की आशा और तुम्हारी सन्तान की ही देखरेख करेंगे। हम उनकी शिक्षा का भार अपने हाथ में लेंगे। यह लो, कारबार के काग़ज़ात, कोठी की कुंजी और मेरी दिनचर्य्या-बही (डायरी)। यह बही तुम्हारे बड़े काम की। है इसमें तुम्हें व्यवसाय और उसके चलाने के अनेक संकेत मिलेंगे।

महाजन के पास जो ज़रूरी काग़ज़ात, कुंजियों के गुच्छे और पुस्तकें आदि मौजूद थीं सब शचीन्द्र के हाथ में दे दीं। शचीन्द्र का हाथ कुछ काँप उठा और उन अस्सी वर्ष के वृद्ध महाजन की दोनों आँखों से आँसू बह कर, उनकी ठोढ़ी तक लटकती हुई लम्बी सफ़ेद दाढ़ी पर होते हुए, नीचे टपकने लगे। महाजन ने बड़े स्नेह से शचीन्द्र का हाथ पकड़ कर कहा—"सुनो शचीन्द्र,

हमने तुम्हें परीक्षा की आग में भली भाँति आँच कर विशुद्ध कर लिया है तब आज तुम्हें इस अतुल सम्पत्ति के साथ व्यवसाय-सम्बन्धी कामों के उच्चासन पर बैठाया है। यदि इस काम में तुम अपनी अयोग्यता दिखलाओगे तो हमें अपनी भ्रांति स्वीकार करनी पड़ेगी और तुम्हारे पिता के चिर-संचित यश और प्रतिष्ठा में कलङ्क लग जायगा।" शचीन्द्र की आँखों में प्रेमाश्रु भर आये। उन्होंने कुछ कहना चाहा, किन्तु वृद्ध ने उनकी बातों को रोक कर कहा—शचीन्द्र, तुम मातृहीन अवश्य हो पर पितृहीन नहीं। हमने इतने दिनों तक तुम्हें अनाथ की तरह रख छोड़ा था, तुम्हारे सहस्रों क्लेशों को देख कर हमारा हृदय विदीर्ण होता था, किन्तु उनको मैं किसी तरह सह लेता था। तुम हमारे बाल्यबन्धु रामधन की रक्षा में थे सही, किन्तु हमारी दृष्टि हमेशा तुम पर थी। तुम्हारे ब्याह की घटना से भी हम अपरिचित नहीं हैं। यह काम भी हमारे मत से ही हुआ था। यदि हम पहले ही तुम्हें अपने यहाँ ले आते, यदि तुम्हें यह मालूम होता कि तुम एक धनी के लड़के हो, यदि तुम यह समझ लेते कि तुम्हें अपनी जीविका के लिए कोई चिन्ता न करनी होगी, यदि यह अतुल ऐश्वर्य पहले ही तुम्हारे हाथ में पड़ जाता तो जो तुम अभी हो वैसे कभी न हो सकते। धन्य जगदीश्वर! जिन्होंने तुम्हें योग्यता प्रदान कर हमारी कामना पूरी की। वत्स! अब जाओ, इस वृद्ध का आशीर्वाद लेकर कर्मक्षेत्र में प्रवेश करो। उस सर्वमङ्गलमय समस्त सिद्धि-ऋद्धि के देवता के चरण-कमलों में सिर नवाओ।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

पं० राम प्रसाद वाजपेयी के प्रबन्ध से कृष्ण प्रेस, प्रयाग में छपा।